प्रकाशक—कविराज श्री अमलकुमार चट्टोपाध्याय
इन्स्टीट्यूट आफ़ हिन्दु-केमिष्ट्री एण्ड आयुर्वेदिक रिसर्च
६।१।१, मूर एभिन्यू, रिजेण्ट पार्क,
कलकत्ता—४०

प्राप्तिस्थान

राजवैद्य आयुर्वेद भवन
१७२, बहूबाजार स्ट्रीट, कलकत्ता—१२
टेलीफोन : ३४-४०३९

इस पुस्तक में लिखी गई सभी औषधियाँ अति विशुद्ध रूप से उल्लिखित पते से मिल सकती हैं।

मुद्रक—
जेनरल प्रिण्टिङ्ग वर्क्स लिमिटेड
८३, पुराना चीनाबाजार स्ट्रीट,
कलकत्ता—१

उत्सर्ग पत्र

आयुर्वेद की गौरववृद्धि के लिये जिन्होंने आजीवन आप्राण परिश्रम किया है, आयुर्वेद की वर्त्तमान दुरवस्था को देखकर जो अन्तःकरण में असह्य यन्त्रणा अनुभव करते है, आयुर्वेद को पूर्व गौरव में प्रतिष्ठित कराने के लिये जो सदा आग्रहशील रहते है, आयुर्वेद की राष्ट्रीय स्वीकृति प्राप्त करने के लिये जिनकी चेष्टाओं का अन्त नहीं है, आयुर्वेद की गठनप्रणाली को सुसम्पन्न करने के लिये जो सर्वदा प्रयत्नशील हैं, आयुर्वेदीय रासायनिक गवेषणा को परिस्फुट करने में जिनके प्रयास सर्वजनविदित है, आयुर्वेद के पूर्ण गौरव को लोकचक्षु के समक्ष प्रदर्शित करने के लिये जिन्होंने अवर्णित आत्मत्याग किया है, उसी सज्जन भूषण, सौजन्यसुधासागर, पण्डिताग्रगण्य, राजस्थान के गौरव, **वैद्यरत्न डाक्टर श्री**

प्रतापसिंहजी महाराज, डी.एस-सी.

आयुर्वेदवृहस्पति के करकमलो में अपना लिखा हुआ "कैन्सररोगकी चिकित्सा" नामक ग्रन्थ भक्ति पुष्पाञ्जलि स्वरूप उत्सर्ग कर कृतार्थ हुआ।

विनीत,

ग्रन्थकार

* मंगलाचरणम् *

"ॐ नम श्चण्डिकायै नमः।

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा।
वलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥ १।४२

दुर्गे स्मृता हरसि भीतिमशेषजन्तोः
स्वस्थैः स्मृता मतिमतीव शुभां ददासि।
दारिद्र्यदुःखभयहारिणि का त्वदन्या
सर्व्वोपकारकरणाय सदार्द्रचित्ता ॥ ४।१६

सर्व्वमंगलमांगल्ये शिवे सर्व्वार्थसाधिके।
शरण्ये त्र्यम्बके गौरि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ११।६
शरणागतदीनार्त्तपरित्राणपरायणे।
सर्व्वस्यार्त्तिहरे देवि नारायणि नमोऽस्तु ते ॥ ११।११
सर्व्वस्वरूपे सर्व्वेशे सर्व्वशक्तिसमन्वि ते।
भयेभ्य स्त्राहि नो देवि दुर्गे देवि नमोऽस्तु ते ॥ ११।२३

रोगानशेषानपहंसि तुष्टा
रुष्टा तु कामान् सकलानभीष्टान्।
त्वामाश्रितानां न विपन्नराणां
त्वामाश्रिता ह्याश्रयतां प्रयान्ति ॥ ११।२८

सर्व्वाबाधाप्रशमनं त्रैलोक्यस्याखिलेश्वरि।
एवमेव त्वया कार्य्य मस्मद्वैरिविनाशनम् ॥ ११।३६

ॐ नम श्चण्डिकायै नमः।"

बंगलामें लिखित 'कैन्सर चिकित्सा' के सम्बन्ध में सज्जनों की सम्मतियां

(१) आयुर्वेद मार्तण्ड यादवजी त्रिकमजी की राय

"आपका ग्रन्थ वैद्यगणोंको कैन्सर रोग सम्बन्धमें ज्ञान प्राप्त करनेके लिये परम उपयोगी हुआ है। भूमिका में आयूर्वेद की वर्तमान अवस्था पर आपने जो आलोचना की है वह यथार्थ एवं उपादेय हुआ है।"

डा० विगास स्ट्रीट, बम्बई-२ आपका दर्शनाभिलाषी

श्री यादवजी आचार्य

(२) भिषककेसरी डा० गोवर्द्धन शर्मा छांगाणी

आयुर्वेदवृहस्पति (D. Sc)

अध्यक्ष, आयुर्वेद-यूनानी चिकित्सक बोर्ड, मध्यप्रदेश-शासन–

"आपकी बंग भाषामें लिखित कैन्सर-चिकित्सा विषयक अति उपादेय पुस्तक पाठ कर अत्यन्त आनन्दित हुआ हूँ। इसके लिये आप, इस अस्सी वर्षीय वृद्ध का आन्तरिक आशीर्वाद ग्रहण करिये। यह पुस्तक हिन्दी भाषामें प्रकाशित होनेपर समग्र भारतवर्षके लोग उपकृत होंगे। इति—"

श्रीमतां सेवक :

ता० १-९-५४ श्री गोवर्द्धनशर्मा छांगाणी

(३) वैद्यरत्न डा. प्रताप सिंह, डि. एस-सि (आयुर्वेद)

भूतपूर्व डाइरेक्टर, आयुर्वेद विभाग, राजस्थान गवर्नमेण्ट, वर्तमान अध्यक्ष, राजकुमार सिंह आयुर्वेद कालेज, इन्दौर, महाशय के विचार—

"आपकी कैन्सरचिकित्सा वंगभाषा में लिखित एक अद्वितीय अपूर्व सम्पद है। कैन्सर शब्द की जो आयुर्वेदीय संज्ञा आपने प्रदान किया है वह आयुर्वेद शास्त्रानुसार बहुत महत्वपूर्ण है। मेरी राय से यह पुस्तक भारतवर्ष के समस्त आयुर्वेद कालेजों में पाठ्यपुस्तक के रूप में निर्धारित होना चाहिये। यह पुस्तक संस्कृत और हिन्दी भाषा में अनुवादित होनेपर समस्त भारतवर्ष के सुधीजनों द्वारा समादृत होगा ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है एवं आशा करता हूं कि इसके द्वारा आयूर्वेदीय चिकित्सक समाजका एक बहुत दिनोंका अभाव पूर्ण होगा।

मैं आपको इस प्रकार का एक अति उत्कृष्ट दृष्टान्त परिपूर्ण सुललित ग्रन्थ प्रकाशित करनेके लिये बधाई देता हूं। इति—"

इन्दौर — भवदीय विश्वस्त

११।१।५४ — कविराज प्रताप सिंह

(४) गोण्डल रसशाला औषधाश्रमके प्रतिष्ठाता, अशेष शास्त्राध्यापक **राजवैद्य श्रीजीवराम कालीदास शास्त्री चरणतीर्थ महाराजजी** का आशीर्वाद पत्र—

"कैन्सरचिकित्सा विषयक पुस्तक, आपकी चिन्ताधारा एवं कार्यावली आयुर्वेदीय चिकित्सा जगतमें युगान्तर आनयन करेगा।"

(५) वैद्य जगन्नाथ प्रसाद शुक्ला, वाइस चांसलर, झांसी आयुर्वेद विश्वविद्यालय, झाँसी

"कैन्सर के सम्बन्धमें आपका लिखा हुआ पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। यह शिक्षक और विद्यार्थी दोनों के लिये परमावश्यक है।"

(६) वैद्य डा. घनानन्द पन्त, आयुर्वेद बृहस्पति,

आयुर्वेद महासम्मेलन पत्रिका की ओर से—

"पुस्तक बंगला अक्षरोंमें छपी है। इसमें गला, जिह्वा, दन्तमूल, गाल, तालु, ओष्ठ, नासिका, नेत्र, मस्तक, अन्नप्रणाली, स्तन, उदर, स्त्री जननेन्द्रिय, पुरुष जननेन्द्रिय, अण्डकोष, गुह्य प्रदेश, जानुसन्धि, पादांगुलि, चर्म, इन स्थानों के कैन्सरों का पूर्वरूप, रूप, निदान, उपशय, सम्प्राप्ति, चिकित्सा नानि विस्तारपूर्वक लिखी है।

गला, जिह्वा, गाल, मस्तक, इनके कैन्सरोंके चित्र भी दिये हैं, जिससे पाठकों को इस रोग के समझनेमें विशेष सुविधा होगी।

प्रत्येक स्थानके रोगकी प्रथमावस्था, मध्यमावस्था, अन्तिमावस्थाका वर्णन तथा इन अवस्थाओंके साथ होनेवाले उपद्रवों का सरल वर्णन, साथ में प्रत्येक उपद्रव की आयुर्वेदिक चिकित्सा भी दी गई है। इससे विदित होता है कि लेखकने पुस्तक इधर-उधर से संग्रह करके नहीं लिखी है, जैसा कि आजकल के लेखक करते हैं। किन्तु अन्वेषक लेखक कैन्सर का स्वयं चिकित्सक भी है। पुस्तक उत्तम व उपादेय है। इस विषय पर इतना विशद प्रकाशन आयुर्वेद में यह प्रथम है। वैद्यों तथा विद्यार्थियोंके लिये उपादेय है। प्रारम्भ में लम्बी भूमिका भी दी है। लेखक यदि उक्त पुस्तक को संस्कृतमें लिखते तो सारा भारत इससे लाभ उठाता।"

कैन्सर रोग की चिकित्सा का
सूचीपत्र

* ॐ नमो भगवते वासुदेवाय *

भूमिका

"स्तुवन्ति गुर्वीमभिधेयसम्पद विशुद्धिमुक्तेरपरे विपश्चितः ।
इति स्थितायां प्रतिपुरुषं रुचौ सुदुर्लभाः सर्वमनोरमा गिरः ॥"

भगवान वासुदेव की इच्छा से "कैन्सर चिकित्सा" प्रकाशित हुई। इतने दिनों तक भारत की किसी भी भाषामें कैन्सररोग की धारावाहिक चिकित्सा-पद्धति अर्थात् कैन्सररोग का पूर्वरूप, रूप, निदान, उपशय, सम्प्राप्ति एवं चिकित्सा सम्बन्धी कोई भी ग्रन्थ नहीं लिखे गये थे। सम्पूर्ण भारतवर्ष में कैन्सररोग की चिकित्सा के सम्बन्धमें यही सर्वप्रथम निदान और चिकित्सा सम्बन्धी विषयोंसे पूर्ण ग्रन्थ है। सब तरहके चिकित्सा-ग्रन्थोंकी आवश्यकता है। आवश्यकता न समझनेपर कोई भी किसी भी ग्रन्थके वक्तव्यको सुननेकी इच्छा नही रखता। विश्वविख्यात मीमांसाचार्य कुमारिल भट्टने इस विश्व-व्यनीन सत्यप्रकाशके प्रसगमें लिखा है,—

"सर्वस्यैव हि शास्त्रस्य कर्म्मणो वापि कस्यचित् ।
यावत् प्रयोजनं नोक्तं तावत् तत् केन गृह्यते ॥
ज्ञातार्थं ज्ञातसम्बन्धं श्रोतुं श्रोता प्रवर्त्तते ।
शास्त्रादौ तेन वक्तव्यः सम्बन्धः सप्रयोजनः ॥"

अर्थात् समस्त शास्त्रों एवं किसी भी कर्मके विषयमें जब तक उसका प्रयोजन नहीं कहा जाता तब तक उसे कोई ग्रहण नहीं करता। जिसका प्रयोजन एवं सम्बन्धज्ञान हुआ है, उसी शास्त्रको ही श्रवण करनेके लिये

श्रोता इच्छुक होते हैं। अतएव शास्त्रके आरम्भमें उस शास्त्रका प्रयोजन एवं प्रयोजन सहित उस शास्त्रका क्या सम्बन्ध है वही वक्तव्य है।

कैन्सररोग और उसकी चिकित्सापद्धतिके विषयमें चिकित्सकों एवं जनसमाजके भीतर नाना प्रकारकी भ्रान्त धारणाएँ प्रचलित हैं। उन्हीं भ्रान्त धारणाओं का निवारण करनेके लिये कैन्सररोग की चिकित्सा लिखी गई है।

रोगके साध्यत्व और असाध्यत्व का विचार

साधारण लोगोंकी यह धारणा है कि कैन्सर रोग आरोग्य नहीं होता। कैन्सर रोग हो जानेपर सभी रोगीके जीवनसे निराश हो जाते हैं। साधारणतः सभी चिकित्सक विशेष किसी भी प्रकार की चेष्टा न करके ही यह रोग अच्छा नहीं होगा, इस रोगके विषयमें आयुर्वेद शास्त्र में कुछ लिखा नहीं गया है, इसकी कोई चिकित्सा नहीं है, इस प्रकारका अशास्त्रीय मत व्यक्त करते हैं। आयुर्वेदीय चिकित्सकोंमें जो ये कहते हैं कि कैन्सर रोगकी चिकित्सा अथवा इसके विषयमें आयुर्वेदमें कहीं भी नहीं लिखा गया है, उनसे मेरा यही नम्र निवेदन है कि वे आयुर्वेद शास्त्रके मूल सूत्रोंसे अनभिज्ञ होकर ही इस प्रकारका मत व्यक्त करते हैं। आयुर्वेदके ऋषि श्री अग्निवेशने कहा है—

"विकाराणामकुशलो न जिह्रीयात् कदाचन ।
नहि सर्वविकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवास्थिति ॥
नास्ति रोगो विना दोषैर्यस्मात्तस्माच्चिकित्सकः ।
अनुक्तमपि दोषाणां लिङ्गैर्व्याधिमुपाचरेत् ॥"

सभी रोगोंके नामानुसार रोगोंका निर्णय न कर सकनेपर चिकित्सकको

लज्जित नहीं होना चाहिये क्योंकि सभी रोगोंका कोई विशेष नाम निर्धारित नहीं है। दोषोंके प्रकोपके बिना रोगोंकी उत्पत्ति नहीं होती। अतएव जिन सब रोगोंका नाम विशेषरूपसे निर्धारित नहीं हो सका है, उनकी चिकित्सा वायु, पित्त, कफ, इस त्रिदोषके कारणोंको विशेषरूपसे ध्यानमें रखकर करनी चाहिये।

आयुर्वेद के चिकित्साशास्त्रों के मूलसूत्रों की विशेषरूप से जानकारी होनेपर सभी प्रकार के जटिल रोगों की चिकित्सा सहजसाध्य होती है। मैं त्रिकालदर्शी ऋषिप्रणीत आयुर्वेदीय चिकित्साशास्त्रके मूलसूत्रों का अवलम्बन लेकर ही दुःसाध्य कैन्सर रोगके चिकित्सा सूत्रोंको निकालने की चेष्टा किया हूं।

रोगका स्वरूप

"रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यमरोगता।
रोगा दुःखस्य दातारः ज्वरप्रभृतयो हि ते॥
ते च स्वाभाविकाः केचित् केचिदागन्तवः स्मृताः।
मानसाः केचिदाख्याताः कथिताः केऽपि कायिकाः॥

तत्र स्वाभाविकाः शरीरस्वभावादेव जाताः क्षुत्पिपासासुषुप्सा च जरामृत्युप्रभृतयः। अथवा स्वस्वभावादुत्पत्तेर्जाताः स्वाभाविकाः सहजा इति यावत्; ते च जन्मान्धत्वादयः। आगन्तवोऽभिघातादिजनिताः अथवा जन्मोत्तरभाविनः। "मानसाः" कामक्रोधलोभमोहभयाभिमानदैन्यपैशुन्यशोकविषादेर्ष्यासूयामात्सर्यप्रभृतयः। अथवा उन्मादापस्मारमूर्च्छाभ्रमतमःसन्न्यासप्रभृतयः। "कायिकाः" पाण्डुरोगप्रभृतयः।"

कर्मज व्याधि

"कर्मजाः कथिताः केचिद्दोषजाः सन्ति चापरे ।

कर्मदोषोद्भवाश्चान्ये व्याधयस्त्रिविधाः स्मृताः ।

अत्र कर्मजा व्याधयः । यत् प्राक्तनदुष्कर्मप्रबलात्केवलभोगनाश्यम् । प्रायश्चित्तनाश्य वा ततो जाताः, न तु दुष्टवातादिदोषेण जनिता. ।

तथा च ।

यथाशास्त्रन्तु निर्णीतो यथा व्याधिश्चिकित्सितः ।

न शम याति यो व्याधिः स ज्ञेय. कर्मजो बुधैः ॥

"दोषजा" मिथ्याहारविहारप्रकुपितवातपित्तकफजाः ।

ननु मिथ्याहारविहारानामपि प्राक्तनसुकृतेन नैरुज्य दृश्यत एव । ततो दोषजेष्वपि प्राक्तन दुष्कर्मैव कारणम्, तत् कथ दोषजा इति ? उच्यते—दोषजेष्वपि वस्तुत आदिकारणं दुष्कर्म वर्त्तत एव । किन्तु तत्र मिथ्याहारविहारदुषिता दोषा हेतवो दृश्यन्त इति दोषजा इत्युच्यन्त इति समाधिः ।"

दोषोंकी विषमता ही रोग है एव उनकी समता ही आरोग्यता है । रोग दुःख देता है । ज्वर इत्यादिकी गणना रोगमें है । रोगका चार प्रकार होता है यथा,-स्वाभाविक, आगन्तुक, मानसिक, और कायिक । स्वभावज अथवा जन्मजात शारीरिक क्षुधा, तृष्णा, निद्रा, वार्द्धक्य, मृत्यु एवं जन्मान्धता आदि स्वाभाविक रोग हैं । अभिघातादि जनित वा जन्मग्रहणके बाद होने वाले रोगोंको आगन्तुक रोग कहते हैं । काम, क्रोध, लोभ, मोह, भय, अभिमान, दैन्य, क्रूरता, शोक, विषाद, ईर्ष्या, असूया, मात्सर्य्य प्रभृति या उन्माद, अपस्मार, मूर्च्छा, भ्रम, मोह और सन्यास आदि मानसिक रोग

हैं। ज्वर, पाण्डु इत्यादि कायिक रोग हैं। ये सभी रोग फिर कर्मज, दोपज और कर्मदोषजके भेदसे तीन प्रकारके होते हैं। पूर्वजन्मकृत प्रबल दुष्कर्मसे होने वाले जो सब रोग केवल भोग या प्रायश्चित्त द्वारा विनष्ट होते हैं उन्हें कर्मज व्याधि कहते हैं। यह कर्मज व्याधि वातादि दोषोंके प्रकोप होनेसे नहीं होती। शास्त्रनिर्दिष्ट विधिके अनुसार चिकित्सा करनेपर भी जो व्याधि प्रशमित नहीं होती उन्हें कर्मज व्याधि कहते हैं। अहित आहार विहारादि जनित प्रकुपित वायु, पित्त, कफ द्वारा जो व्याधियाँ उत्पन्न होती हैं उन्हें दोषज व्याधि कहते हैं। यहाँ प्रश्न यह हो सकता है कि अहित आहार विहार करनेपर भी पूर्वजन्मकृत सत्कर्मोंके कारण रोग उत्पन्न होना नहीं देखा जाता। अतएव दोषज व्याधिका कारण भी पूर्वजन्मकृत दुष्कर्म है, इसमें कोई सन्देह नहीं है। तब ऐसे स्थलोंमें उसे दोषज व्याधि किस तरह कह सकते हैं? इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि पूर्वजन्मकृत दुष्कर्म दोषज व्याधिका कारण होनेपर भी अहित आहारविहार जनित वातादि त्रिदोषोंका प्रकोप ही व्याधि समूहका कारण प्रत्यक्ष देखा जाता है, इसीलिये उन्हें दोषज व्याधि कहते हैं।

कर्मदोपज व्याधि

"स्वल्पदोषा गरीयांसस्ते ज्ञेया कर्मदोपजाः। अत्र कारण दुष्कर्मप्रबलम्। यतो दोषाल्पत्वेऽपि व्याधेर्गरीयस्त्वन्तत् कर्मक्षयादेव क्षीणं भवति। दोषाः स्वल्पा अपि निदानत्वेनोक्ता दृश्यन्त एवेति दोषाणां कारणता मन्यत इति कर्मदोषजाः।

कर्मक्षयात् कर्मकृता दोपजाः स्वस्वभेषजैः।
कर्मदोपोद्भवा यान्ति कर्मदोपक्षयात् क्षयम्॥

साध्या याप्या असाध्याश्च व्याधयस्त्रिविधाः स्मृताः ।
सुखसाध्यः कष्टसाध्यो द्विविधः साध्य उच्यते ॥"

याप्यव्याधि का स्वरूप

"यापनीयन्तु तं विद्यात् क्रिया धारयते हि यम् ।
क्रियायान्तु निवृत्तायां सद्यो यश्च विनश्यति ॥
प्राप्ता क्रिया धारयति सुश्विन्न याप्यमातुरम् ।
प्रपतिष्यदिवागारं स्तम्भो यत्नेन योजितः ॥
साध्या याप्यत्वमायान्ति याप्यश्चा साध्यतान्तथा ।
घ्नन्ति प्राणानसाध्यास्तु नराणामक्रियावनाम् ॥
"अक्रियावतां" चिकित्सारहितानाम् ।"

जो रोग दोष की प्रबलता कम रहने पर भी प्रबल भावसे उत्पन्न होता है उसे कर्मदोषज व्याधि कहते हैं। इसका कारण प्रबल दुष्कर्म है। चूंकि दोष की अल्पता रहनेपर भी ये सब रोग प्रबल होते हैं। इसलिये दुष्कर्म क्षयप्राप्त होनेपर ही रोगकी क्षयप्राप्ति होती है। फिर दोष की अल्पता भी रोगका कारण है। सुतरां दोष और कर्म, इन दोनों कारणोंके द्वारा उत्पन्न होता है बोलकर इन सब रोगोंको कर्मदोषज व्याधि कहते हैं। दुष्कर्मजात रोग दुष्कर्म क्षय होनेपर, दोषज व्याधि उपयुक्त औषध प्रयोग करनेपर एवं कर्मदोषज व्याधि दुष्कर्म और दोष के क्षय होने पर निवारित होते हैं।

साध्य, याप्य और असाध्य भेदसे व्याधि तीन प्रकारकी होती है। साध्य रोगमें भी दो प्रकार हैं, सुखसाध्य और कृच्छ्रसाध्य। चिकित्सा द्वारा जो रोग स्थगित रहता है एवं चिकित्सा नहीं होनेपर जो सहजमें ही प्राण

विनाश करता है, उसे याप्य रोग कहते हैं। गिरते हुए घरको ठीक समय में जिस प्रकार एक मजबूत खम्भेका सहारा देनेपर वह गिरनेसे बच जाता है, उसी प्रकार उपयुक्त औषध द्वारा यथासमय चिकित्सा करने पर याप्य रोगीके शरीरकी रक्षा होती है। चिकित्सा नहीं करनेपर साध्य रोग याप्य में बदल जाता है और याप्य रोग असाध्य हो जाता है एवं असाध्य रोग ही प्राण विनाश करता है।

वैद्यका कर्त्तव्य

"अप्राप्ते वा क्रियाकाले प्राप्ते वा न क्रिया कृता।
क्रियाहीनातिरिक्ता च साध्येष्वपि न सिध्यति॥

"काले" चिकित्साऽवसरे। "अप्राप्ते" अनागते। या "क्रिया" चिकित्सा। यथा ज्वरे जीर्णतामप्राप्ते तरुण एव कषायदानक्रिया न सिध्यति।

या च क्रिया चिकित्साऽवसरे प्राप्ते न कृता अर्थात् पश्चात् कृता। यथा दाहे कथञ्चिच्छान्ते पश्चाच्छीतलानुलेपनादिक्रिया। तथा हीनातिरिक्ता च क्रिया साध्येष्वपि न सिध्यति।"

उपयुक्त समयके पहले चिकित्सा करने पर,—जैसे ज्वरमें जीर्णता आने के पहले ही कषाय दान करना, या बाद में चिकित्सा करनेपर—जैसे दाह उपस्थित होनेके बहुत समय बाद शीतल अनुलेपनादि प्रयोग करना, अथवा स्वल्प रोगमें अतिरिक्त और प्रबल रोगमें अल्प चिकित्सा करने पर साध्यरोग भी प्रशमित नहीं हो पाता।

"विकारऽल्पे महत् कर्म क्रियालघ्वी गरीयसी।
द्वयमेतदकौशल्यं कौशल्यं यूक्तकर्मता॥

क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् ।
पूर्वस्यां शान्तवेगायां न क्रिया सङ्करो हितः ॥
भिन्नरूपाभिस्तु क्रियाभिः साङ्कर्य्यमपि न दोषाय ।
क्रियाभिस्तुल्यरूपाभिर्नक्रियासङ्करो हितः ।
नाभिस्तु भिन्नरूपाभिः साङ्कर्य्यन्नैव दुष्यति ॥
न चैकान्ते न निर्दिष्टे शास्त्रे निविशते बुधः ।
स्वयमप्यत्र भिषजा तर्कनीयं चिकित्सता ॥
उत्पद्यते च सावस्था दोषकालबलस्थिति ।
यस्यां कार्य्यमकार्यं स्यात् कर्मकार्य्यं विवर्जितम् ॥
विवर्जितं कर्म कर्त्तव्यं भवतीत्यर्थः ।"

स्वल्परोग में महत् क्रिया एवं महत् रोगमें लघु क्रिया ये दोनों ही दोष हैं। लघु रोगकी लघु क्रिया एव महत् रोगकी महत् क्रियाका अवलम्बन करना लाभदायक है। एक प्रकार की चिकित्सा द्वारा फल न होनेपर अगर दूसरी तरहकी चिकित्सापद्धति का सहारा लेना पड़े तो, पूर्ववर्ती चिकित्साका असर समाप्त कर देना ही ठीक है। इस प्रकार पूर्ववर्ती चिकित्साका असर प्रशमित करके दूसरी तरहकी चिकित्साप्रणालीका अवलम्बन करनेपर साङ्कर्य दोषकी उत्पत्ति नहीं होती। तुल्यरूप चिकित्सा ही साङ्कर्य दोषजनक और अहितकर है किन्तु विभिन्नरूपकी चिकित्साप्रणाली साङ्कर्य दोषजनक नहीं है।

विज्ञ चिकित्सकोंको चाहिए कि केवल शास्त्रोक्त विधिके अनुसार चिकित्सा न करके रोगकी अवस्थापर स्वयं विशेष प्रकारसे विचार करके यथोपयुक्त चिकित्सा करें। क्योंकि दोष, काल और बलकी अवस्थाके अनुसार

शास्त्रोक्त विधियोंसे भी नुकसान ही होता है और शास्त्र-निषिद्ध कार्योंसे भी लाभ होता है।

"आयुर्वेदोदितां युक्तिं कुर्व्वाणा विहिताश्च ये।
पुण्यायुर्वृद्धिसंयुक्ता नीरोगाश्च भवन्ति ते॥"

जो परोपकारके वशीभूत होकर और जो आयुर्वेदकी सम्मतिका सहारा लेकर चिकित्सा कार्य्य करते हैं, वे ही दीर्घायु होकर उत्तम स्वास्थ्य लाभ करते हैं।

"व्याधेस्तत्त्वपरिज्ञानं वेदनायश्च निग्रहः।
एतद्वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः॥

व्याधेः सम्यक् परिचयो व्यथाशान्तिकरणं वैद्यस्य कर्म। नतु वैद्य आयुषः प्रभुरित्यर्थः। अपरे त्वेवं व्याचक्षते। व्याधेस्तत्त्वतः परिचयो वेदनायाः शान्तिकरणञ्च, एतदेव वैद्यस्य वैद्यत्वं न, किन्तु वैद्य आयुषः प्रभुः आगन्तु मृत्युशतहरणात्। तथा च सुश्रुते धन्वन्तरिः।

एकोत्तरं मृत्युशतमथर्व्वाणः प्रचक्षते।
तत्रैकः कालसंयुक्तः शेषास्त्वागन्तवः स्मृताः॥

अथर्व्वाणः अथर्व्वतत्त्वत्वेनाथर्व्वतुल्याः मृत्युमेकोत्तरं शतं प्रचक्षते। तत्रैको मृत्युः कालसंयुक्तः। काल आयुषोऽन्ते शरीरिणामवश्यं संहर्त्ता। सर्व्वैरुपायैर्निवारयितुमशक्यः। स ब्रह्मादीनामायुषोऽन्ते संहरति। यत आह लिङ्गपुराने कार्त्तिकेयं प्रति महादेवः।"

"ममायुर्ग्रसते कालः कुतः पुत्र रसायनम्" इति। तेन कालेन संयुक्त। संहाराय नियुक्तः सोऽवश्यम्भावी। "शेषः" शतंमृत्यवः "आगन्तवः" आगन्तुरूपहेतुजन्मानः कार्यकारणयोरभेदोपचारात्। आगन्तवो हेतवो यथा।

विषभक्षणमजीर्णेऽत्यन्तभोजनञ्च दुर्देशजलपानम्, तथातिबलवैरिव्याघ्रवनमहिषमत्तयानङ्गादिभिर्युद्धम्, द्वन्द्वशूकेन क्रीडनमत्युच्च वृक्षाग्रारोहणम्, बाहुभ्यां महातरंगिणीतरणमेकाकिनो रात्रौ दुर्गे मार्गे गमनमित्यादि। आगन्तुहेतुजा मृत्यवो दुर्निमित्तर्मोचिभावनाबलवत्त्वादायुषि सत्यपि मारयन्ति। यथा मल्लिकातैलवर्त्तिवह्निषु विद्यमानेषु वात्या दीपं नाशयति।

तथा सत्यपितैलादौ दीप निर्व्वापयेन्मरुत्।
एवमायुष्यहीनेऽपि हिंसन्त्यागन्तुमृत्यव ॥
किन्तु आगन्तुनिमित्तानि निवारयितुञ्च शक्यते।
यत आह सुश्रुते धन्वन्तरिः॥
दोषागन्तुनिमित्तेभ्यो रसमन्त्रविशारदौ।
रक्षेतां नृपतिं नित्यं यत्नाद्वैद्यपुरोहितौ ॥

वैद्यमन्त्रिनौ नृपतिं नित्यं यत्नाद्रक्षेताम्। कुतः दोषागन्तुनिमित्तेभ्यः। "दोषा" निषिद्धाहारविहारदुषिता वातपित्तकफारोगोत्पादकाः।

"आगन्तव" निषिद्धा विहारा अतिबलवैरिविग्रहादयः, ते निमित्तानि येषान्तेभ्यः शतमृत्यवः। ननु वैद्यपुरोहितौ कथं शतं मृत्युं निवारयितुं शक्तौ? तत्राह यतस्तौ रसमन्त्रविशारदौ, प्रथमं वैद्येन दिनचर्य्यारात्रिचर्य्यर्तुचर्य्याहारविहाराभ्य वातपित्तकफधातुमलान् समानेव रक्षति। ततो रसज्ञत्वाद्रसैर्मृत्युञ्जयादिभिर्निषिद्धाहारविहारदुषित दोषजनितान् विकारान् मृत्युहेतूनपहरति। मन्त्री च सद्बुद्धिदानेन मृत्युहेतुभ्यो नृपति निवारयति। तत आगन्तुमृत्यवो निवारयितुं शक्या, न त्ववश्यम्भाविनः।"

रोगका निरूपण करना और उसका प्रतिकार करना ही चिकित्सककी साधना है। किन्तु चिकित्सक आयु प्रदान नहीं कर सकता। और यह

भी कहा जाता है कि केवल रोगका निर्णय करना और उसका प्रतिकार करना ही चिकित्सक का कर्म नहीं है वह आयु भी प्रदान कर सकता है। क्योंकि चिकित्सक १०० प्रकारके आगन्तुक मृत्युओं को दूर करनेकी क्षमता रखता है। अथर्व वेदके अनुसार मृत्युकी सख्या १०१ मानी जाती है। उनमें एक प्रकारकी मृत्यु कालमृत्यु एव शेष एक सौ प्रकार की मृत्यु आगन्तुक या अकाल मृत्यु कहे जाते हैं। कालमृत्यु निश्चितरूप से मनुष्य को मार डालती है। इसका किसी भी तरहसे निवारण नहीं किया जा सकता। कालमृत्यु ब्रह्मादि देवताओंका भी सहार करती है। लिग पुराणमें लिखा है कि महादेवने कार्तिकको सम्बोधित करके कहा, "हे पुत्र ! मुझे कालमृत्यु ग्रास कर रही है। रासायनिक औषधिया कहाँ है ? उनका प्रभाव क्या है ?" इससे यह समझा जाता है कि संहार के लिये कालमृत्यु अवश्यसम्भावी और अनिवार्य है। शेष १०० प्रकार की मृत्युएँ अकाल मृत्युएँ हैं। ये सब निवार्य हैं। कार्यकारणके अभेदत्त्व के कारण आगन्तुक मृत्यु आगन्तुक कारणोंसे ही सम्भव होता है। विषभक्षण, अजीर्ण होनेपर भी अत्यधिक भोजन, दूषित स्थानोंमें रहना, दूषित जलपान करना ; अतिरिक्त बलशाली शत्रु, बाघ, बनभैंसा, पागल हाथी आदि के साथ युद्ध करना, साँपोंके साथ खिलवाड करना, बहुत ऊँचे वृक्षोंके ऊपर चढना, वेगसे बहती हुई महानदी में तैरना और रात्रिमें अकेले दुर्गम पथमें चलना इत्यादि आगन्तुक मृत्युके कारण हैं। आगन्तुक कारण जनित मृत्यु परमायु रहने पर भी दुर्निमित्त उपसर्गके प्राबल्यके कारण प्राण सहार करती है, जैसे जलते हुए दीपकमे तेल और बत्तीके रहने पर भी वायुका झोंका उसे बुझा देता है। किन्तु

इस अकाल मृत्युओंका निवारण किया जा सकता है। सुश्रुतमें धन्वन्तरिने कहा है कि रसक्रिया-विशारद वैद्य एवं मन्त्रणा-विशारद मन्त्री, ये दोनों ही दोष-निमित्त एवं आगन्तु-निमित्त रोगसे राजा की सब समय रक्षा करें। "दोष" शब्दसे निषिद्ध आहारविहारजनित दूषित वायु, पित्त और कफ समझे जाते हैं। "आगन्तु" शब्दसे निषिद्ध विहार अर्थात् प्रबल शत्रुके साथ युद्ध-विग्रह आदि समझे जाते हैं। इस स्थानमें यह प्रश्न हो सकता है कि वैद्य और मन्त्री १०० प्रकारकी मृत्युओंका निवारण किस प्रकार कर सकते हैं? इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि वैद्य रसक्रिया विशारद एव मन्त्री मन्त्रणा विशारद हैं। वैद्य दिनचर्या, रात्रिचर्या और ऋतुचर्यामें कहे हुए आहारविहारोंके नियमानुकूल वात, पित्त, श्लेष्मा, धातु और मलों की समता रक्षा करके राजाके शरीर की रक्षा करे और निषिद्ध आहार-विहार आदि के द्वारा दूषित वायु, पित्त और श्लेष्मा द्वारा उत्पन्न सभी पीड़ाओं को रसज्ञता हेतु "मृत्युञ्जय" आदि रसके प्रयोगसे दूर करे। मन्त्रीको भी चाहिये कि अपनी समुचित मन्त्रणाओं से वह आनेवाले मृत्यु के कारणों तथा निषिद्ध आहार-विहारों अर्थात् युद्ध आदि विग्रहोंसे राजाको दूर रखे। इसलिये अकाल मृत्यु कभी भी अनिवार्य नहीं हो सकती। इसे अनायास से दूर किया जा सकता है।

"भिषगादौ परीक्षेत रुग्णस्यायुः प्रयत्नतः।
ततश्चायूषि विस्तीर्णे चिकित्सा सफला भवेत्॥"

चिकित्साके पहले रोगीकी आयु-परीक्षा अवश्य करनी चाहिए। क्योंकि परमायु रहने पर ही चिकित्सा सफल होती है।

"नन्वायूषि सति चिकित्सायाः साफल्यमुक्तम्, आयुश्चेदस्ति तदा तदेव

जीवनहेतुः। किं चिकित्साविधान ? तत्रोच्यते, आयुषि सति चिकित्सायाः फलं वेदनानिग्रहः। उक्तञ्च।

आयुष्मान् पुरुषो जीवेत् सव्यथो भेषजं विना।
भेषजेन पुनर्जीवेत् स एव हि निरामयः॥

किञ्च। आयूषि सत्यपि रोगी चिकित्सां विना उत्थातुं न शक्नोति। यत आह चरकः।

सति चायूषि नोपायं विनोत्थातुं क्षमोरुजः।
दर्शितश्चात्र दृष्टान्तः पङ्कलग्नो यथा गजः॥

किञ्च। चिकित्सां विनायूष्मानप्यवसीदति। यत आह स एव।

सति चायूषि नष्टः स्यादामयैश्चाचिकित्सितः।
यथा सत्यपि तैलादौ दीपो निर्वाति वात्यया॥

अतएवोक्तम्।

साध्या याप्यत्वमायान्ति याप्या गच्छन्त्यसाध्यताम्।
घ्नन्ति प्राणानसाध्यास्तु नराणामक्रियावतामिति॥"

इस स्थलमें यह प्रश्न उठ सकता है कि परमायु रहने पर यदि चिकित्सा द्वारा रोग अच्छा हो जाता है एवं आयुरहित होने पर रोग अच्छा नहीं होता, तो फिर चिकित्साका क्या प्रयोजन है ? इसके उत्तरमें यही कहा जा सकता है कि आयु रहने पर चिकित्सा द्वारा रोगका शमन किया जाता है और चिकित्सा न करने से व्याधियुक्त शरीरसे जीवित रहना पड़ता है। दलदलमें फँसा हुआ हाथी जिस प्रकार बिना किसी सहारे के नहीं निकल सकता, उसी तरह परमायुके रहने पर भी चिकित्सा न करने से रोगी उत्थानशक्तिरहित हो जाता है और कभी भी रोगसे छुटकारा नहीं पा

सकता। परन्तु आयुके रहते भी चिकित्सित न होने से रोगी मृत्युके शिकार होता है। जिस प्रकार तैल और वत्ती के रहने पर भी वायुके झोंके से दीपक बुझ जाता है, उसी प्रकार विना चिकित्साके आयु रहते हुए भी रोगी मृत्युको प्राप्त होता है। चिकित्साके अभावमें साध्य रोग कष्टसाध्य होता है और कष्टसाध्य रोग असाध्य हो जाता है और असाध्य रोग शीघ्र ही प्राणनाशक होता है।

"चिकित्सा तु अनिश्चितायुषोऽपि कर्त्तव्या।

यत आह।

तावत् प्रतिक्रिया कार्य्या यावच्छ्वसिति मानवः।
दाचिद्दक् दैवयोगेन दृष्टारिष्टोऽपि जीवति।

इति तु यस्यासाध्यत्वं सन्दिग्धं तं प्रत्युक्तम्। येषां त्वसाध्यता शास्त्रे-नानुभवेन विनिश्चितः, ते पुनर्न चिकित्स्याः।

यत उक्तं।

सद्वैद्यास्ते न ये साध्यानारभन्ते चिकित्सितुमिति।"

रोगी की परमायु के सम्बन्ध में कोई निश्चयता न रहने पर भी चिकित्सा करनी चाहिए एवं जब तक रोगी का श्वास-प्रश्वास प्रवाहित होता है तब तक चिकित्सा करनी चाहिए। कारण, अरिष्ट लक्षण अर्थात् मृत्युलक्षण उपस्थित होने पर भी कोई कोई जीवित रहते हैं। जिसकी असाध्यता के सम्बन्ध में सन्देह है उसके लिये यह विधि कहा गया है। किन्तु शास्त्र द्वारा या अनुभव द्वारा यदि रोग की असाध्यता के सम्बन्ध में निश्चित हो जाँय तो चिकित्सा वन्द कर देना ही उचित है। क्योंकि शास्त्र में भी कहा

गया है कि जो असाध्य रोग की चिकित्सा में प्रवृत्त होता है वह उत्तम वैद्य नहीं है ।

चरकसंहिता, जो कि कायचिकित्साका प्रधान ग्रन्थ है, के मतानुसार कैन्सररोग असाध्य है । आत्रेय सम्प्रदायभुक्त चिकित्सकों का उपदेश है,—'ये न कुर्व्वन्त्यसाध्यानां व्याधिनां चिकित्सां ते भिषग्वरा" । अर्थात् जो असाध्य व्याधिकी चिकित्सा नहीं करते हैं वे ही श्रेष्ठ चिकित्सक हैं । कारण, असाध्य व्याधि की चिकित्सा करने पर,—

"स्वार्थविद्यायशोहानिमुपक्रोशमसंग्रहम् ।
प्राप्नुयान्नियतं वैद्यो योऽसाध्यं समुपाचरेत् ॥"

अर्थात् जो चिकित्सक असाध्य व्याधि की चिकित्सा करते हैं उनके स्वार्थ, विद्या, यश और धन की हानि होती है ।

सुश्रुत-सहिता में लिखा हुआ है कि—"असिद्धिमाप्नुयाल्लोके प्रतिकुर्व्वन् गतायुषः" । अर्थात् असाध्य और अरिष्ट लक्षणयुक्त रोगी की चिकित्सा करने पर असिद्धि होती है अर्थात् यशहानि होती है । चरक संहितामें लिखा है,—'साधनं न तु असाध्यानां व्याधिनाम् उपदिश्यते", अर्थात् चरक असाध्य व्यावि की चिकित्सा के सम्बन्ध में चरक संहिता में कोई उपदेश प्रदान नहीं किए हैं । परन्तु वे लिखे हैं कि असाध्य व्याधि की चिकित्सा करने पर स्वार्थ, विद्या और यश की हानि होती है । लेकिन रसाचार्यों ने इस अनुशासन को नहीं माना । वे रसचिकित्सा के क्षेत्र में पारद, गन्धक, लौह, अभ्रक, स्वर्ण, चाँदी, ताम्र, दस्ता, बङ्ग आदि धातुओं को औषधरूप में व्यवहार करके चरकोक्त बहुत असाध्य व्याधियों को अच्छा

कर दिये थे। इसीलिए रसेन्द्रसार-संग्रह में महात्मा गोपालकृष्ण ने लिखा है,—

"साध्येषुभेषजं सर्वमीरितं तत्त्ववेदिना।
असाध्येष्वपिदातव्यो रसोऽतः श्रेष्ठ उच्यते॥"

अर्थात् तत्त्ववेदी पण्डित केवल साध्य रोगों में ही औषध की व्यवस्था किये हैं। किन्तु पारद पहले कहे हुए अनेक असाध्य रोगों में भी प्रयोग किया जाता है, इसलिए वह श्रेष्ठ है। इससे यह समझा जाता है कि पूर्वाचार्यों द्वारा कहे हुए विभिन्न प्रकारके असाध्य रोग परवर्ती आचार्यगणों की गवेषणा और अनुशीलन के द्वारा साध्य में परिणत हुए हैं। अतएव देखा जाता है कि चरक-सुश्रुतादि द्वारा कहे हुए असाध्य रोग परवर्ती रससिद्धगणों की रस-साधना द्वारा साध्यरूप में परिगणित हुए हैं। मनुष्य की गवेषणा-प्रवृत्ति ने ही विजय प्राप्त की है।

२५ वर्ष पहले जब मैं चरक-सुश्रुत-वाग्भटादि ग्रन्थों का अनुशीलन करके कैन्सर रोगकी चिकित्सा के विषयमें गवेषणा और अनुसन्धान करने को प्रवृत्त हुआ, तब बौद्धयुग के रसाचार्यगणोंका तथाकथित असाध्य रोग में भी रसौषधि प्रयोग से चिकित्सा करने का उपदेश ही मुझे उत्साहित किया था।

रसाचार्यगण स्वकीय कठोर अनुशीलन, अन्तर्दृष्टि और तपःप्रभाव से जो सब योग अर्थात् औषधि निर्माण करनेमें समर्थ हुए थे उनके द्वारा वे किसी भी प्रकार के दुरारोग्य रोगकी चिकित्सा करने में पीछे नहीं हटते थे। वे दोषकी कार्यकारिताके ऊपर निर्भर न करके विशिष्ट योगविशेष की कार्यकारिता के ऊपर अधिकतर निर्भरशील रहा करते थे। एवं इस प्रकार

की मननशीलताके फलस्वरूप ही मकरध्वज के समान सर्वगुणसम्पन्न और दोष, देश, काल एवं पात्र-निरपेक्ष महौषध का आविष्कार सम्भव हुआ था। मकरध्वज की अपेक्षा अधिक वीर्यवान औषधियाँ जैसे—मल्लसिन्दूर, समीरपन्नग रस, हरिताल भस्म, पारद भस्म, बसन्ततिलक रस, बसन्त-मालती रस, बसन्तकुसुमाकर रस, बृहत वातचिन्तामणि आदि औषधियोंका आविष्कार भी इस प्रकार की गवेषणा और मनोवृत्ति के कारण ही सम्भव हुआ है।

उपसंहार

विगत २५ वर्षों से मैंने यक्ष्मा और कैन्सर रोग की चिकित्सा के विषय में खोज की है। यक्ष्मा-चिकित्सा के विषय में मेरा वक्तव्य मैंने यक्ष्मा-चिकित्सा नामक पुस्तक के पहले और दूसरे खण्डमें पाठकोंसे निवेदन कर दिया है। कैन्सरके सम्बन्धमें मेरी २५ वर्ष की अभि-ज्ञतालब्ध ज्ञान "कैन्सर रोगकी चिकित्सा" नामक इस पुस्तकमें लिपिबद्ध किया हूँ। इस दुर्जय व्याधिके सम्बन्धमें मैंने जो कुछ व्यक्तिगत रूपसे प्रत्यक्ष किया है और अनुभवों द्वारा समझा है ठीक-ठीक उन्हीं विषयोंको चिकित्सकों, छात्रों और जनसाधारणोंके लिये लिख दिया है। जिन्हें अपनी आंखोंसे देखा नहीं अथवा अपने हाथोंसे सम्पादित नहीं किया है, उनके बारेमें मैंने कुछ नहीं लिखा है। हमारी यह पुस्तक किसी अंग्रेजी पुस्तकका न तो अनुवाद और न तो अपनी कपोलकल्पना द्वारा निर्मित मतोंका प्रतिपादन ही इसमें है। इसमें अपनी प्रत्यक्ष अनुभूति और व्यक्तिगत अभिज्ञताका विषय लिपिबद्ध किया है।

"कैन्सर रोगकी चिकित्सा' नामक ग्रन्थमें मैंने केवल कैन्सर चिकित्साके विषय में थोड़ा सा दिग्दर्शन ही कराया है। इसके द्वारा अगर एक भी वैद्य किसी भी एक कैन्सर रोगी को आरोग्य कर सकेगा, तो मैं अपने श्रम को सार्थक समझूंगा और इसके द्वारा आयुर्वेदीय चिकित्सा-शास्त्रकी ही जय-दुन्दुभी बजेगी। कैन्सर-चिकित्साके समान गुरुतर विषय पर मेरे जैसे क्षुद्र वैद्योंके ग्रन्थ रचना करने पर अनेक धुरन्धर वैद्योंका कटाक्ष करना स्वाभाविक है। क्योंकि, यह ग्रन्थ ऋषिप्रणीत प्राचीन-संहिता ग्रन्थ नहीं है। किन्तु ऋषिप्रणीत न होने से भी, किसी जटिल व्याधिकी चिकित्साके सम्बन्धमें यदि कोई आधुनिक चिकित्सक विशेष निष्ठाके साथ दीर्घकाल तक गवेषणा करके कोई ग्रन्थका निर्माण करे और वह सुभाषित हो तो वह अवश्य ही पठनीय है। इस प्रसङ्गमें बौद्धाचार्य महापण्डित वाग्भट्ट के उक्तियोंका उल्लेख किये विना नहीं रह सका—

"यदि चरकमधीते तद् ध्रुवं सुश्रुतादि
प्रणिगदितगदानां नाममात्रेऽपि बाह्यः।
अथ चरकविहीनः प्रक्रियायामखिन्नः
किमिह खलु करोतु व्याधितानां वराकः॥"

अर्थात्—"चरकादि ग्रन्थ अति विशाल होनेपर भी सब ग्रन्थोंमें ही सब विषय विस्तारके साथ वर्णित होंगे, ऐसी बात नहीं। सुश्रुतादि ग्रन्थके नेत्र रोगाधिकारमें वर्त्मगत, सन्धिगत, श्वेतमण्डलगत और कृष्णमण्डलादिगत सब तरहके आँखके रोग विशेषरूपसे वर्णित हैं लेकिन चरक ग्रन्थमें इन सब रोगोंका केवल नाम ही लिया गया है, हेतु, लक्षण और चिकित्साकी विशेष उक्ति नहीं है। चरकमें जिस तरह कास और श्वास आदि

रोगोंके विशेष वर्णन हैं, सुश्रुतमें वैसे नहीं हैं। अतएव जो केवल चरकका अध्ययन करते हैं, वे नेत्र रोगोंके सम्बन्धमें नाममात्र जानकारी प्राप्त करते हैं। वे रोगके हेतु, लक्षण और चिकित्सासे अनभिज्ञ रहते हैं। और जो चरकके अध्ययन किये बिना केवल सुश्रुतका अध्ययन करते हैं, वे सुश्रुतपाठसाध्य प्रक्रिया अर्थात् दोष, दुष्य, काल, शरीर, सत्त्व और सात्म्यादि लक्षणोंमें पारङ्गत होकर भी कास-श्वासादि रोगोंकी चिकित्सामें क्या कर सकते हैं? हमारे इस अष्टांग-हृदय ग्रन्थमें सब विषय सविस्तार वर्णित हुए हैं। अतएव जो इस ग्रन्थके अर्थों को समझ कर उसी के अनुसार कार्य करेंगे, वे अवश्य ही रोगको शान्त करने में सफल होंगे।"

'अभिनिवेशवशादभियुज्यते सुभनितेऽपि न यो दृढमूढकः।
पठतु यत्नपरः पुरुषायूषं स खलु वैद्यकमाद्यमणिर्व्वेदः॥"

अर्थात्—"जो मूर्ख आदि वैद्यक ग्रन्थोंके पक्षपाती होकर वर्त्तमान अच्छे ग्रन्थोंकी भी यत्न नहीं करते, वे समूचे जीवन यत्नपर और निर्वेदरहित होकर ब्रह्मोक्त सौ-हजार वैद्यक ग्रन्थोंका अध्ययन करें।" कहनेका तात्पर्य यह है कि चिरकाल तक पढ़ते-पढते अन्तमें जब उसकी बुद्धि, मेधा और जीवनी-शक्तिका ह्रास हो जायगा, तब फिर वह शास्त्रचिन्तन, अवबोधन और अनुष्ठान आदि कुछ भी नहीं कर सकेगा; अतएव दीर्घकालीन परिश्रम उसके लिये बेकार होगा।

"वाते पित्ते श्लेष्मशान्तौ च पथ्यं तैलं सर्पिर्माक्षिकञ्च क्रमेन।
एतद् ब्रह्मा भाषते ब्रह्मजो वा का निर्मन्त्रे वक्तृभेदोक्ति शक्तिः॥"

अर्थात्—"तेल स्वभावतः वातप्रशमक, घृत पित्तप्रशमक एवं मधु कफ-प्रशमक है, इस बातको चाहे ब्रह्मा कहें या ब्रह्मपुत्र सणत्कुमार आदि जो

कोई भी कहे, तेलादिकी जो वातादि प्रशमन करनेकी ऐसी स्वाभाविक शक्ति है, व्यक्तिविशेष के बोलने से इनका क्या यह गुण बदला जा सकता है?" ऐसा कभी भी नहीं होता, जिसकी जो स्वाभाविक शक्ति है, वह उसमें अवश्य ही रहती है। अतएव पहले के ऋषियों द्वारा लिखे हुए ग्रन्थ ही पठनीय हैं और आजके ग्रन्थ पठनीय नहीं हैं, ऐसा समझना समीचीन नहीं है।

"अभिधातृवशात् किम्बा द्रव्यशक्ति विशिष्यते।
अतो मत्सरमुत्सृज्यमाध्यस्थमवलम्ब्यताम्॥"

अर्थात्—"जब व्यक्तिविशेष के कहने से द्रव्यकी शक्तिमें कोई अन्तर नहीं होता तब मत्सर त्याग करके मध्यस्थता ग्रहण करनी चाहिए।" अर्थात्—प्राचीन वैद्यक ग्रन्थ ही पठनीय हैं और अर्वाचीन ग्रन्थ अपठनीय हैं, ऐसा कभी भी नहीं सोचना चाहिए। जो ग्रन्थ सुभाषित और अल्पायाससाध्य हैं, उन्हें अवश्य ही पढना चाहिये।

"ऋषिप्रणीते प्रीतिश्चेन्मुक्त्वा चरक सुश्रुतौ।
भेडाद्याः किं न पठ्यन्ते तस्माद् ग्राह्यं सुभाषितम्॥"

अर्थात्—"यदि ऋषिप्रणीत ग्रन्थमात्र ही पढना कर्त्तव्य है, तो क्यों वैद्यवृन्द केवल चरक, सुश्रुत कृत ग्रन्थ न पढकर भेड, जतुकर्णादि मुनिप्रणीत ग्रन्थोंका प्रीतिपूर्वक अध्ययन नहीं करते? सभी ग्रन्थ तो ऋषियों द्वारा लिखे गये हैं, किन्तु अच्छे ग्रन्थ कहकर वैद्यगण चरक और सुश्रुत के ग्रन्थों का जिस प्रकार अधिकतर रूपमें अध्ययन करते हैं, भेड-जतुकर्णादि मुनि-प्रणीतग्रन्थोंका अध्ययन उस तरह नहीं करते। अतएव जो ग्रन्थ अच्छे

हैं, वही आदरणीय हैं। ऋषिप्रणीत होने पर ही आदरणीय होगा, ऐसी बात नहीं है।"

महापण्डित वाग्भट्टकी आशा फलवती होनेपर भी मेरे जैसे क्षुद्र व्यक्ति के पक्षमें उसी प्रकार फल लाभ की आशा करना बावन होकर आसमान की चाँद को पकडने की चेष्टा करने के समान ही हास्यास्पद है।*

इस प्रसगमें महाकवि भवभूति की एक चिरस्मरणीय उक्तिका उल्लेख करके इस भूमिकाको समाप्त कर रहा हूं—

"ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञाम्।
जानन्तु ते किमपि तान् प्रति नैष यत्नः॥
उत्पत्स्यतेऽस्ति मम कोऽपि समानधर्मा।
कालोऽयं निरवधि विपुला च पृथ्वी॥"

—भवभूति

बगला भाषामें लिखित इस पुस्तकको पढकर आयुर्वेद पितामह आचार्य श्री यादवजी त्रिकमजी महाराज, आयुर्वेद-बृहस्पति कविराज श्रीगोवर्द्धन शर्मा छागाणी, वैद्यरत्न डा० प्रतापसिंह, डा० बलदेव शर्मा, राजवैद्य श्री जीवराम कालीदास शास्त्री चरणतीर्थ महाराज, वैद्यपंचानन श्री जगन्नाथ प्रसाद शुक्ल, आयुर्वेद-बृहस्पति डा० श्री घनानन्द पन्त इन महानुभावोंने इस पुस्तक को समस्त भारतके वैद्यों और विद्यार्थियोंकी सुविधा के लिये हिन्दी भाषा में प्रकाशित करनेका मुझे आदेश दिये थे। आयुर्वेदजगतके इन महारथि-

---

* "मन्द कवियशप्रार्थी गमिष्याम्युपहास्यताम्।
प्रांशु लभ्ये फले लोभात् उद्वाहुरिव वामनः॥"—कालिदास

गणोंकी आज्ञा एवं आशीर्वाद शिरोधार्यपूर्वक ग्रहण कर मैं "कैन्सर-चिकित्सा" का हिन्दी संस्करण निकाल रहा हूं। इस संस्करणके अनुवाद, पाण्डुलिपि प्रस्तुति और प्रूफ संशोधन कार्यमें मुझे श्री धर्मराज शर्मा, श्री देवकुमार चक्रवर्ती और श्री अनिलकुमार कुण्ड से यथेष्ट सहायता मिली है, इसलिये मैं उन्हें आशीर्वाद देता हूं। हिन्दी भाषाका जानकार अच्छी तरहसे न होने के कारण इस पुस्तकके अनुवादमें और प्रूफ संशोधनकार्यमें कुछ त्रुटियोंका रहना स्वाभाविक है। इसलिये सहृदय पाठकगणोंसे हमारी यह प्रार्थना है कि पढ़ते या पढ़ाते समय इस ग्रन्थके जिस स्थानमें त्रुटि जान पड़े उन्हें वे सुधार कर पढ़ लें और हमें सूचित करें, हम कृतज्ञतापूर्वक उन्हें स्वीकार कर आगामी संस्करणमें उनका संशोधन करने की चेष्टा करेंगे।

"अयुक्तं यदिह प्रोक्तं प्रमादेन भ्रमेण वा।
वचो मया दयावन्तः सन्तः संशोधयन्तु तत् ॥"

पूस पूर्णिमा, १८ जनवरी, १९५५ ई०
१७२ नं० बहूबाजार स्ट्रीट,
कलकत्ता—१२

विनीत—
श्री प्रभाकर चट्टोपाध्याय
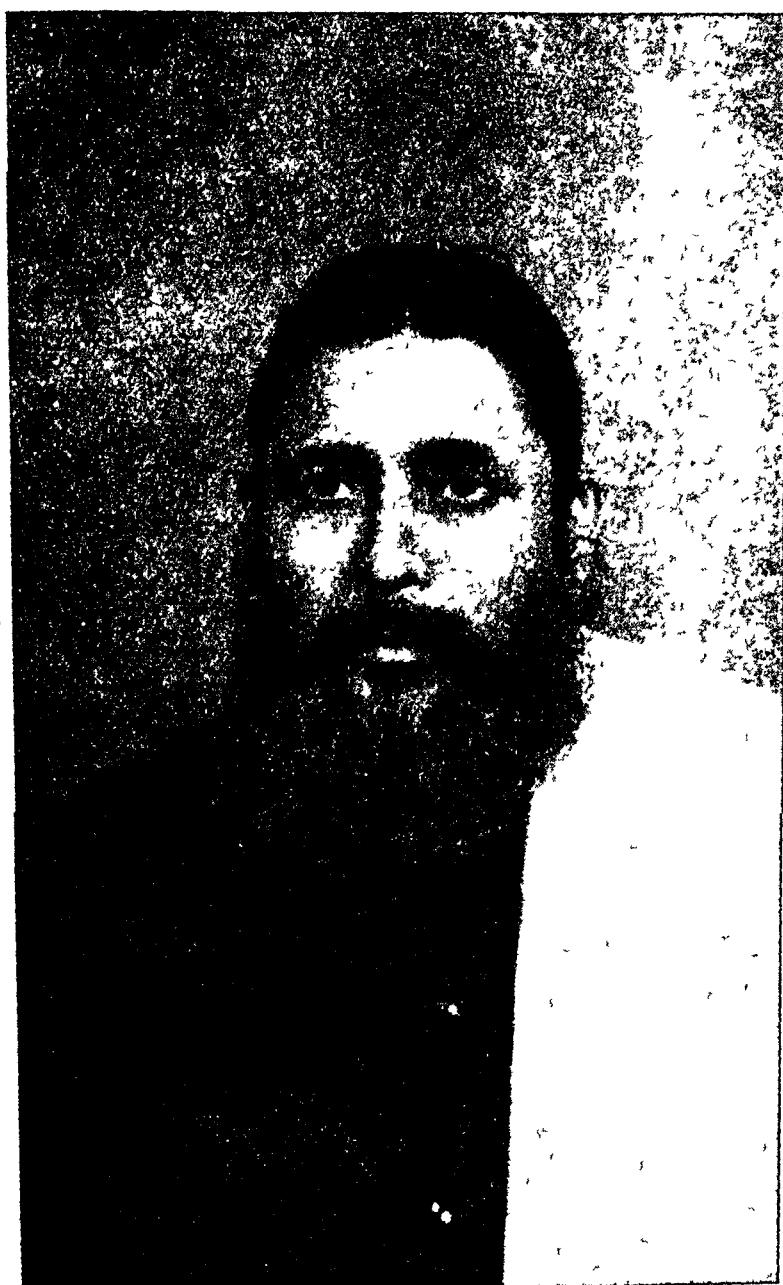
श्रीप्रभाकर चट्टोपाध्याय

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय

कैन्सर रोगकी चिकित्सा

प्रथम अध्याय

"न ह्यस्ति सुतरामायुर्वेदस्य पारम्। तस्मादप्रमत्तः शश्व
दभियोगोऽस्मिन् गच्छेत्। अमित्रस्यापि वचः यशस्यमायुष्यं
श्रोतव्यमनुविधोतव्यं च।" —इति चरके विमानस्थाने

गलेके कैन्सर रोगकी प्रथम अवस्था :—गलेमें कैन्सर रोगका अविर्भाव तरह-तरहका होता है। इस रोगके विषयमें पहलेके चिकित्सकोंकी यह धारणा थी कि कैन्सर रोग वृद्धावस्थावाले मनुष्योंको ही होता है, अल्पावस्थावालोंको यह रोग नहीं होता है। किन्तु, इस समय उन सब लोगों की यह धारणा बदल गयी है। वर्तमान समय में हम देखते हैं कि पाँच वर्षके छोटे बच्चेसे लेकर, अस्सी वर्षके वयोवृद्ध भी इस रोग के शिकार होते हैं। लेकिन, यह कहना कि चालीस वर्ष के पहले कैन्सर रोग नहीं होता, इसके प्रमाण में कोई वैज्ञानिक भित्ति नहीं मिलती। हाँ, यह बात जरूर है कि इस रोग के शिकार बालकों और नवजवानों की अपेक्षा वृद्ध ही अधिक होते हैं।

गलेमें मछलीके काँटेकी तरह वेदनाका अनुभव :—कैन्सर रोगकी प्रथम अवस्था में अधिकांश रोगियोंकी यही शिकायत होती है कि उन्हे

यह अनुभव होने लगता है कि गलेमें मछलीके काँटे निकल आये हैं। उसके बाद ही गलेमें खच-खच पीड़ा मालूम होने लगती है, आँखों में भी कष्ट बोध होने लगता है, और इस घटना के फलस्वरूप धीरे-धीरे भक्ष्य खाद्य पदार्थ खाना असम्भव हो जाता है। मुख से लगातार लार टपकने लगती है, और रोगी केवल तरल पदार्थ ही खाकर जीवन व्यतीत करने लगता है। इसके पश्चात् तरल पदार्थ जैसे दुग्ध और जलका पीना भी क्रमश बन्द हो जाता है। खानेके अभाव के कारण रोगीका शरीर क्रमशः सूखकर केवल खाका मात्र ही रह जाता है। शरीरका समस्त रस रक्त लारके रूपमें बाहर निकल जाता है, और अतमें रोगीको श्वास लेनेमें भी कष्ट होने लगता है, एव उसके प्राण पखेरू उड़ जाते हैं।

पहले जो गलेमें काँटों के उठनेकी बात कही गयी है, इसकी सत्यताके विषयमें विशेष अनुसन्धान करनेपर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि यह काँटा उठनेवाली बात कहीं-कहीं सत्य होनेपर भी अधिकाश स्थलोंमे इसकी कोई यथार्थ भित्ति नहीं है। प्रकुपित वायु, पित्त और श्लेष्माके सयोगसे गलेके भीतर जो ग्रन्थियाँ उत्पन्न होती हैं, वही क्रमशः वृद्धि प्राप्त कर हठात् एक दिन भोजन करने के उपरान्त काँटे उठने की धारणा अनुभूत होने लगती है। प्रायः अनेक समय पीड़ा बहुत कम ही मालूम होती है। इस-लिये अनेक रोगी इस रोगके सामान्य प्रारम्भावस्था की उपेक्षा कर जाते हैं और कोई-कोई डाक्टरोंसे परामर्श करते हैं। डाक्टर लोग भी अनेक समय इस मामूली शुरुआत की उपेक्षा करके, और "कुछ नहीं है" कह कर, कुल्ली करनेके लिए दो एक साधारण औषधि देकर निश्चिन्त हो जाते हैं। जब तक रोगीकी खाद्य ग्रहण करनेवाली शक्ति सम्पूर्ण लुप्त नहीं हो जाती है,

तब तक उसे विशेषज्ञ चिकित्सकोंके पास नहीं भेजा जाता है। कैन्सर रोग के रोगीका यह अत्यन्त दुर्भाग्य ही है कि जब उसका रोग कैन्सर निश्चत हो जाता है, तब अधिकांश क्षेत्रमें रोगीको अपनी आरोग्यता की आशा प्रायः नहीं ही रहती है।

रोगके प्रारम्भमें कन्सर रोग निर्णीत हो जानेपर उसकी चिकित्सा सहज एवं साध्य हो जाती है। रोगीकी यंत्रणा कम हो जाती है, चिकित्सक रोगी को आयु प्रदान नहीं कर सकता। वह केवल रोग निर्णीत करके रोग से उत्पन्न पीडा को कम करके अपने प्रकृत कर्मको भलीभांति पूर्ण कर सकता है। कैन्सर रोग की चिकित्साके क्षेत्रमें यदि सभी चिकित्सक भारतीय चिकित्सा शास्त्रके इस महान आदर्शको लक्ष्य बनाकर कार्य करें, तो कैन्सर जैसे दुरारोग्य की चिकित्सा का दुर्गम पथ भी सुगम हो जाय।

२. बहुत ही छोटी आकृतिकी विशिष्ठ ग्रन्थियोंका निकलनाः—हम अनेक समय देखते हैं कि कैन्सर रोगके प्रारम्भमें गलेके भीतर या बाहर एक सुपारीके बराबर अथवा उससे छोटी आकृति की, विशिष्ट रबड़ जैसी ग्रथियां उत्पन्न होती हैं।

ये क्षुद्राकृति टिउमार या अर्बुद गलेके विभिन्न स्थलों मे विभिन्न प्रकारसे उत्पन्न होते हैं। कर्णमूल के नीचे श्वांस नली के ऊपर, कण्ठनली के ऊपर, अन्न नली के प्रवेश पथ में, मुख विवर के पाश्चात्य भाग में, उपजिह्वा के नीचे, गलकोषके सम्मुख भागमें कभी कण्ठरन्ध्रके पार्श्वस्त पेशियोंके ऊपर इस प्रकार ये अर्बुद प्रथम अवस्था में उत्पन्न होते हैं। प्रथमावस्थामें ये अर्बुद विशेष यंत्रणाप्रद नहीं होते हैं। किसी को एक बार

भी पीडा नहीं मालूम होती है। कभी-कभी इस प्रकार एकाधिक संख्या में ये अर्बुद निकलते हैं। धीरे-धीरे ये बढ़ने लगते है। अर्बुदोंकी इस बढ़नेवाली अवस्थामें हमने देखा है कि कभी-कभी बहुतसे छोटे अर्बुद इकट्ठे होकर एक वाल्मीकि स्तूपकी तरह रूप ग्रहण कर लेते हैं। किसी-किसी क्षेत्रमें तो यह देखा गया है कि दस-बारह वर्ष तक तो ये किसी प्रकारकी यंत्रणा नहीं देते हैं और तीन-चार मासके भीतर प्रबल रूप से बढ़कर पत्थर से भी अधिक कड़े हो जाते हैं। इस अवस्थामें ये अर्बुद रोगीके शरीरके रस, रक्त, मज्जा आदिको शोषित करने लगते हैं। रोगीका शरीर क्रमश. जीर्ण-शीर्ण होने लगता है और शरीरमें वायु बढ जाती है। बढ़ा हुआ अर्बुद क्रमशः श्वांस रोकने की चेष्टा करता है। इस अवस्थामें क्रमश. रोगी को स्वरभग हो जाता है। किसी किसी के कण्ठ नलीमें अवरुद्धता उत्पन्न हो जाती है। रोगीकी खानेवाली शक्ति क्रमशः लोप होने लगती है। सख्त पदार्थका खाना बिलकुल असम्भव हो जाता है तथा रोगीके लिए केवल दुग्ध और जल ही जीवनका आधार रह जाता है। अनेक समय देखा गया है कि रोगी दुग्ध पी सकता है, लेकिन दुग्धके साथ थोड़ी भी दुग्ध की छाली गलेमें चले जानेपर रोगी दारुण यन्त्रणा पाता है। इस समय किसी-किसी को भोजन करते समय खाद्य द्रव्य नाक द्वारा बाहर हो जाता है। यकायक खूब खांसी आती है, और दोनों आँखें ऊपर तन जाती हैं। इस प्रकार रोगी अवर्णित पीडासे पीड़ित होकर काल यापन करता है।

इस समय यक्ष्मा रोगी की तरह रोगीके शरीरमें क्षयका लक्षण मिलने लगता है और रोगी ज्वरसे पीडित रहने लगता है। किसी-किसी को

यक्ष्मा रोगकी तरह, दिनके तीसरे पहर ज्वर हो जाता है, और समस्त रात्रि तक रहकर सबेरे उतर जाता है। किसी-किसी को स्वाभाविक यक्ष्मा की तरह सब-समय ज्वर बना रहता है। टिउमारकी उल्लिखित अवस्था प्राप्त हो जाने पर भी अनेक समय यह देखा गया है कि वह इंटकी तरह सख्त (कड़ा) हो जाता है। किसी-किसी समयमें यह देखा गया है कि रोगके अन्तिम क्षणोंमें ये अर्बुद पकने लगते हैं। जिस प्रकार साधारण घाव (जख्म) पकते हैं, उस प्रकार अर्बुद नहीं पकते। बहुत धीरे-धीरे ये नष्ट होते हैं। सर्वप्रथम अर्बुदोंके ऊपरी भागसे छोटे-छोटे टुकड़े उठते हैं और इसके ऊपर सादा पर्दा पड़ जाता है। क्षत स्थानसे रस गिरने लगता है और क्रमशः इस रसमें दुर्गन्ध आने लगती है। अनेक समय दुर्गन्धकी मात्रा इतनी बढ जाती है कि रोगीके घरमें प्रवेश करना कठिन हो जाता है। इस समय इस घावके ऊपर मृदु आघात करने अथवा स्पर्शमात्र करने से रक्त निकलने लगता है। कभी-कभी क्षत-स्थानसे प्रबल रूपमें रक्तपात होता है और रोगी मूर्च्छित हो जाता है।

३. स्वर भंग :—गलेके कैन्सर रोगके प्रारम्भमें अनेक समय यह देखा गया है कि यकायक उसका गला बैठ जाता है और रोगीको भ्रमवश यह अनुमान हो जाता है कि सर्दीके लगने से गलेका यह रूप हुआ है। इसी रूपमें जब रोगी को कुछ दिन व्यतीत करना पड़ता है और परिवर्त्तन का कोई जरिया नहीं दीखता, तो रोगी चिकित्सककी शरणमें जाता है। चिकित्सक रोगीके रोगकी चिकित्सा करने के लिये तैयार हो जाता है, और कैन्सर रोगके सूत्रपातकी पहचान न कर, अन्तमें स्वरभंगकी साधारण तौर से कोई औषधि देकर अपना कर्त्तव्य पूरा कर देता है।

इसके बाद जिस समय स्वरभंग हो जाने पर श्वांस लेनेमें पीड़ा और ज्वर उत्पन्न हो जाता है, उस समय रोगीकी प्रकृति देखकर रोगके निर्णय की चेष्टा होने लगती है। अनेक समय इसी प्रकार रोगीको दीर्घ समय तक स्वरभंग, श्वांस कष्ट, ज्वर तथा खाँसी देखकर अनेक मशहूर चिकित्सक इस रोगको यक्ष्मा बतलाकर सन्देहमें डाल देते हैं। सन्देहको दूर करने के लिए रोगीके कफ, रक्त और मूत्रादि की परीक्षा कर जब यक्ष्माका कोई चिह्न नहीं मिल पाता, तब चिकित्सकको दूसरे रास्ते पर अग्रसर होना पड़ता है। चिकित्साके क्षेत्रमें हमें दो रोगियोंकी कथा मालूम है, जिनके गलेमें कैन्सर रोग हुआ था और कलकत्ता तथा भारतके दो सुप्रसिद्ध यक्ष्माके चिकित्सकोंने उसे यक्ष्मा बतलाकर, उसीके अनुकूल दो वर्षों तक उन रोगियों की चिकित्सा की।

दो वर्षों तक उन लोगोंने अनेक प्रकारके इन्जेक्शन तथा अनेक प्रकार की औषधियोंका प्रयोग किया, लेकिन रोगमें किसी प्रकारकी कमी नहीं आयी; बल्कि और बढ़ने लगा और परिणाम यह हुआ कि श्वांस नलीके पार्श्वमें हठात् दो टिउमार अविर्भूत हो आये। तब उन लोगोंको अपने भ्रम को समझ जानेपर अत्यन्त दुःख हुआ।

अवश्य यह कहना पड़ेगा कि कैन्सर रोगकी यह शेष अवस्था यक्ष्मा रोगकी तरह क्षययुक्त हो जाती है। इस समय यक्ष्मा और कैन्सर रोगमें कोई पार्थक्य नहीं रहता, किन्तु प्रथमावस्थामें क्षयरोगके साथ कोई समता नहीं दीखती। स्वरभंग कैन्सर और यक्ष्माके बीचमें एक पार्थक्यका लक्षण है। यक्ष्मामें ज्वर ही प्रथम लक्षण है। राजयक्ष्मामें प्रायः सब स्थानमें ज्वरके साथ स्वरभंग भी रहता है। नाड़ीकी चाल बहुत ही तेज होती

है। हृत्पिण्डकी दुर्बलता, फुफ्फुसमें घाव, नाना प्रकारकी जटिलताएँ यक्ष्माके साथ जुड़ी रहती हैं। किन्तु; कैन्सर रोग के प्रारम्भमें जो स्वरभंग मिलता है, उसके साथ ज्वर नहीं रहता। यक्ष्माके स्वरभंगमें मृत्युके अन्तिमक्षण को छोड़कर शेष समयमें तकलीफ नहीं होती। रोगी तरल पदार्थ अनायास ही निगल सकता है; किन्तु कैन्सरके स्वरभंगमें रोगीको काफी तकलीफ होती है और वह तरल पदार्थ निगल नहीं सकता। तरल द्रव्य निगलते समय बहुधा वह पदार्थ नाकसे बाहर आ जाता है। कैन्सरमें यह अवस्था अत्यन्त कष्टदायक है।

हमने अधिकांश स्थानोंमें परीक्षा करके देखा है कि श्वाँसनलीमें और कण्ठनलीके भीतर धीरे-धीरे मांसकी वृद्धि होनेके कारण रोगी उल्लिखित स्वरभंगके जटिल रूपोंके द्वारा घिर जाता है। इस मांसकी वृद्धि इतनी धीरे-धीरे होती है कि कोई चिकित्सक बिना विशेष रूपसे चिकित्सा किये, इसे स्वरभंगका कारण नहीं मान सकता। अन्तमें जब रोगीके गलेके भीतर मांस वृद्धिके कारण स्वरभंग होने की धारणा चिकित्सक कर लेता है, तब देखा जाता है कि रोग बहुत दूर आगे बढ़ गया है और उस समय रोगी न तो निश्वास ले सकता है और न खाद्य द्रव्य ही निगल सकता है। इस अवस्थामें "ट्रेकोटोमी" करके उसके गलेमें एक छिद्र करके उसे मृत्युकी ओर अधिक आगे बढ़ा दिया जाता है।

४. कफके साथ-साथ अल्पमात्रामें खूनका गिरना :—गलेके कन्सरकी प्रथमावस्थामें देखा जाता है कि हठात् एक दिन प्रातःकाल मुँह धोनेके समय रोगी अपने थूकमें कुछ-कुछ खून देखता है इससे वह कल्पना करता है कि सम्भवतः दाँतके मसूड़ोंसे ऐसा हुआ है। कोई-कोई ऐसा

सोचता है कि गला फट गया है और उसीसे खून निकला है। इस प्रकार थोड़े दिनों के बाद पुनः एक दिन जब इसकी अपेक्षा अधिक रक्त गिरता है, तब भयभीत होकर यक्ष्माकी आकांक्षासे चिकित्सककी शरण लेता है। साधारण चिकित्सक रोगकी इस प्रथम अवस्थाकी उपेक्षा कर बैठते हैं। इसका कारण यही होता है कि सामान्य शुरुआतको कैन्सर जैसे भयङ्कर रोगके सूत्रपातकी कल्पना नहीं कर पाते। इस अवस्थामें रोगीके हृत्पिण्ड एवं फुफ्फुसकी परीक्षा करनेपर उसमें कोई दोष नहीं पाया जाता। विशेष प्रकार की परीक्षाके लिये खूनकी परीक्षा करने पर यक्ष्माके कीटाणु नहीं पाये जाते और तब रोगका निर्णय नहीं हो पाता। इस अवस्थाके अनुसार केवल अनुमानके ऊपर औषधि और इन्जेक्शन दिये जाते हैं। रोगकी प्रारम्भिक अवस्थामें जब कि गलेसे थोड़ा-थोड़ा खून निकलता है, उस समय गले रोगके विशेषज्ञ भी इसे कैन्सर रोगकी शुरुआत नहीं बता पाते। वे इसे साधारण गलेका रोग समझकर साधारण चिकित्सा करते हैं।

मैंने बहुतसे रोगियोंकी परीक्षा करके यह प्रामाणित कर लिया है कि इस प्रकार थोड़ी मात्रामें रक्तपात आरम्भ होकर गलेके भीतर एक क्षययुक्त घावकी सृष्टि कर देता है। क्रमशः यही घाव चारों तरफ बढ़कर गले की ग्रन्थियों पर आक्रमण करता है और यही एक कठिन कैन्सर रोगकी जटिल अवस्थाका रूप धारण कर लेता है।

गलेके कैन्सर रोगके प्रारम्भमें हमने अनेक बार देखा है कि हठात् रोगीके गलेमें कोई एक ग्रन्थि फूल उठती है। इस फूलनेके कारण किसी की आँखमें पीड़ा उत्पन्न हो जाती है और किसीको कुछ भी नहीं। इस प्रकारके फूलने पर प्रथम बार लोग उपेक्षा कर देते हैं। जो शीघ्रातिशीघ्र

रोगोंको मिटा देना चाहते हैं, वे साधारणतः इस रोगके लिये डाक्टरोंकी शरण लेते हैं। ये डाक्टर भी इस अवसरपर कैन्सर रोगकी शुरुआतका सन्देह नहीं कर पाते और मामूली सी कोई औषधि लगाने को दे देते हैं।

जिन रोगियोंकी ग्रन्थियोंमें कोई पीड़ा नहीं होती वह धीरे-धीरे बढ़-कर काफी सख्त हो जाती है। कभी-कभी ये ग्रन्थियाँ ईंटसे भी ज्यादा सख्त होती हैं। ग्रन्थियाँ जब बढ़ने लगती हैं, तो उस समय उसके अगल-बगलमें दो-एक छोटी आकृति की और ग्रन्थियाँ निकल आती हैं। धीरे-धीरे ये सभी ग्रन्थियाँ बन्द हो जाती हैं और ये आसानीसे नहीं पकतीं। किन्तु, ग्रन्थियोंके आसपास जितनी ग्रन्थियाँ निकलती हैं, उनमें से दो-एक पक जाती हैं। इस प्रकार घाव खूब सख्त हो जाता है। एक ग्रन्थि के पक जानेपर दूसरी ग्रन्थि उस स्थान पर पकने लगती है, और इस प्रकार एक के बाद एक की सृष्टि होनी शुरू हो जाती है। सबसे पहली ग्रन्थि बगलकी पेशियों पर हमला कर देती है। रोगी अपने धड़, पीठ और बगलमें पीड़ाका अनुभव करता है और धीरे-धीरे पीड़ा बढ़ती जाती है, परिणामस्वरूप धड़ और मुख टेढ़ा हो जाता है। बगलकी ग्रन्थियोंमें हमला होनेके कारण रोगी अपना हाथ उठानेमे असमर्थ हो जाता है। इस दशामें रोगीको प्रतिदिन ज्वर होता है। कभी-कभी हमेशा ज्वर आने लगता है और रोगीको स्वरभंग भी हो जाता है। रोगीकी निगलनेवाली शक्ति लुप्त हो जाती है। मुखसे सदैव दुर्गन्ध-लार गिरती है। यह कभी-कभी सख्त रस्सीकी तरह मोटी हो जाती है। किसीको लार कतई नहीं गिरती, बीचमें रह-रहकर खून गिरता है। खून गिर जानेसे दो एक दिन आराम रहता है। इसके बाद कर्णमूल, मस्तक, दोनों हाथों तथा सीने

आदि सभी अङ्गोंमें पीड़ा होती है। इस हालतमें रोगीको बैठनेमें कष्ट होता है और वह अच्छी तरह से सो भी नहीं पाता।

इसी हालतमें कृत्रिम उपायोंके द्वारा रोगीकी पीड़ा कम करनेके लिये उग्रवीर्य औषधि और इंजेक्शनका प्रयोग किया जाता है, जिसके कारण रोगीकी हालत और भी खराब हो जाती है एवं भयानक पेटकी अजीर्णता उत्पन्न हो जाती है। एक तो अनिन्द्रा, दूसरे भयानक अजीर्णता, पकी हुई ग्रंथियोंमें सूई चुभाने की तीव्र पीड़ा, स्वरभंग, खाद्यद्रव्य निगलनेकी शक्तिका लोप, बराबर पीव सहित दुर्गन्धयुक्त लार, रक्तपात, मज्जागत, ज्वर, गलेमें घड़घड़ शब्द और सबसे बढ़कर रोगीको श्वांस लेनेमें पीड़ा—इन सबके कारण रोगीकी दशा इतनी मर्मान्तक हो जाती है कि यह दृश्य देखा नहीं जाता। इतना होनेपर भी सबसे दुखका विषय यह है कि इस प्रकार हृदय विदारक पीड़ासे पीड़ित होकर भी रोगीका प्राण निकलना नहीं चाहता। इस तरह भयंकर पीड़ा से भोगनेपर भी रोगी ५ माहसे १ वर्ष तक जीवित रहते हुए देखा जाता है। देखनेसे तो यही प्रतीत होता है कि रोगी आज ही रातको मर जायगा, लेकिन वह रोगी इस मुमुर्षावस्था में भी ६ महीने या इससे भी अधिक दिन तक जीवित रहता है।

५. फूल गोभीके फूलकी तरह मांसांकुरकी वृद्धि:—रोगके प्रारम्भ में जीभके नीचे, श्वांस नली या कण्ठ नलीके बगलमें छोटी मटरके बराबर एक मांसपिण्ड दिखाई पड़ता है, और धीरे-धीरे यह बढ़ने लगता है। इस समय इसके चारों तरफ भी छोटे-बड़े कई मांसपिण्ड उत्पन्न हो जाते हैं। ये सभी बढ़कर फूल गोभी के फूलकी तरह हो जाते हैं।

बढ़नेके समय इस मांसपिण्डमें बहुत ही दुर्गन्धित रस निकलता है। इस

गंधमें ऐसी विशेषता है कि जो चिकित्सक नहीं भी हैं, वे भी घावके भीतर से कैन्सर रोगीको पहचान सकते हैं। यह गंध बड़ी ही तीव्र होती है। पहले कहा हुआ मांसपिण्ड बढ़नेके साथ ही कड़ा हो जाता है। इस हालत में हाथ द्वारा स्पर्श कर देनेसे ही इससे खून निकल पड़ता है। कभी-कभी रोगकी बढ़ी हुई हालत में भी ऐसा रक्त निकलता है।

धीरे-धीरे मांसपिण्ड बड़ा हो जाता है। रोगी बहुत ही कष्ट पाता है। शरीर कमजोर हो जाता है, थोड़ा-थोड़ा ज्वर हो जाता है और ज्वर के साथ-साथ अरुचि भी बढ़ जाती है।

ठीक तरह से दवा न होनेपर इस हालतमें मांसपिडके मूलसे लेकर शिराएँ और उपशिराएँ तक शिथिल पड़ जाती हैं और रोगी उठनेमें असमर्थ हो जाता है। अन्तमें मुखविवर अवरुद्ध हो जाता है। श्वांस लेनेमें कष्ट होता है, और अधिक तकलीफ के कारण रोगीके प्राण निकल जाते हैं।

किसी-किसी के आखिरी हालत में मांसपिण्ड गलने लगता है। इस समय रोगीको काफी तकलीफ होती है, क्योंकि रोगीके मुँहसे पीव तथा खून गिरता है। थोड़ा-थोड़ा गलके मांसपिण्ड बाहर निकलने लगता है। रोगी शक्तिहीन हो जाता है। लार और पीव हमेशा गिरती रहती है। जीवनशक्ति क्षीण हो जाती है। चेतना लुप्त हो जाती है। इसी हालतमें कुछ दिन व्यतीत करने पर रोगी मर जाता है।

किसी-किसी स्थान में फूलगोभीके आकारका मांसपिण्ड १६, १८ वर्ष तक बढ़ता है, और पूर्ण दशा में पहुँचकर गलने लगता है, एवं गलकर मुख से लार, पीव और खून निकलता है। इसके बाद रोगी फिर मर जाता है।

गलेका कैन्सर कभी-कभी आत्मगोपन कर शरीरमें छिपा पड़ा रहता है :—

गलेका कैन्सर रोग अनेक समय तक रोगीके शरीरमें, और यहाँ तक कि चिकित्सकके अनजानमें, अज्ञात रूपसे वास करता है। जिस प्रकार यक्ष्माके रोगका वीजाणु रोगीके शरीरमें प्रवेश करके अशान्ति पैदा कर देता है, और अपने प्रभावका असर दिखाये बिना नहीं रहता, उसी तरह कैन्सर का रोग भी। वास्तवमें यक्ष्मा और कैन्सरमें बहुत कम अन्तर देखनेको मिलता है। इन रोगोंकी प्रथमावस्थामें कुछ भेद अवश्य मालूम पड़ता है। बाकी वक्तमें बहुत कम अन्तर दीख पड़ता है। कभी-कभी तो ऐसा देखा गया है कि रोगीके एक अगमें यक्ष्मा है, तो एक अगमें कैन्सर। यक्ष्मा और कैन्सर बड़े भयंकर रोग हैं। ये मनुष्यके विभिन्न अगमें विभिन्न रूपसे अपना प्रभाव दिखलाते हैं।

किन्तु, इसका बाह्य लक्षण देखने पर इसे समझनेका कोई जरिया नहीं दीखता। रोगीके मल, मूत्र, कफ इत्यादिकी परीक्षा करनेसे भी पता नहीं चलता। यकायक देखनेको मिलता है कि रोगीका हाथ फूल गया, मुख फूल गया और जंघेमें असह्य वेदना हो उठी। आँख, मुँह और हाथमें फुला देखकर चिकित्सक इसे नेफ्राइटिस, वृक्कशोथ, फाइलेरिया सज्ञा देकर संदेह प्रकट करता है और इसी सन्देहमें गर्क होकर दवा देना शुरू कर देता है। लेकिन, कुछ दिनोंके बाद देखा जाता है कि रोगीका शरीर क्षीण हो रहा है और वह दिनों दिन दुबला होता जा रहा है। चिकित्सक तरह-तरहकी दवा देना शुरू कर देता है, परन्तु उस दवासे कोई लाभ नहीं दीखता। अचानक एक दिन देखा जाता है कि रोगीके गलेके नीचे एक अर्बुद बाहर

हुआ है। रोगीको धीम-धीमा ज्वर शुरू हो जाता है। रोगीका स्वर विकृत हो जाता है और शरीर सूखने लगता है। इस अवस्थामें चिकित्सकका पहला सिद्धान्त बदल जाता है, परन्तु रोग तब तक बहुत आगे बढ जाता है और रोगीके आरोग्य होनेकी कोई आशा नहीं दीखती।

बहुत दिनों तक किसी स्थानमें पीड़ाका होना कैन्सर रोगके विशेष दशाकी हालत बतलाता है।

रोग बहुत समयके बाद कैन्सर निश्चित होता है। किन्तु; पहले वक्ष-स्थल, स्कन्ध एवं सभी मुखमंडलमें शोथ उत्पन्न कर बहुत दिनों तक शरीर के अन्दर पड़ा रहता है। यही कैन्सर रोगका पहला रूप है। विशेष रूपसे पूरी ज्ञानकारी न होने पर चिकित्सकको इसे गलेका कैन्सर कहना कठिन हो जाता है।

कैन्सर रोगके चिकित्साके क्षेत्रमें और सबकी अपेक्षा सबसे दु.खका विषय यही है कि जब पहले पहल कैन्सरका स्वरूप ज्ञात होता है, तब उस समय रोग शरीरमें पूर्ण रूपसे व्याप्त हो जाता है।

द्वितीय अध्याय

"न हि कर्म्म महत् किंचित् फलम् यस्य न भूज्यते।
क्रियाघ्नाः कर्म्मजा रोगाः प्रशमं जान्ति तत्क्षयात्॥"

"चरके शारीरस्थाने"

गलेके कैन्सर रोगकी मध्यावस्था

अविरल रूपसे लार गिरना :—गले के कैन्सर रोगकी मध्यावस्थामें जब अर्बुद पूर्ण रूपसे बढी हुई अवस्थामें पहुँच गया हो या गलेके

बीचका घाव क्षय दशाको प्राप्त हो, तो इस समय रोगीके मुँहसे लार गिरती है। लार पहले बहुत सरल अवस्थामें गिरती है। किसी-किसीको खूब गाढ़ी-मोटी लार गिरती है। यह जल्दी बाहर गिरती नहीं है। अनेक समय यह ऐसी जकड़ लेती है कि हाथसे निकालने पर भी बाहर नहीं निकलती। लार, पीव बढ़कर ऐसी हालत हो जाती कि रोगी बात नहीं कर पाता, खाना बन्द हो जानेकी दशा हो जाती है। रोगी लार बाहर निकालनेके लिये हमेशा एक वर्त्तन हाथमें लिये रहता है। इस समय रोगीके शरीरका रस-रक्त लारके रूपमें बाहर हो जाता है, और रोगी दुर्बल होकर चारपाईसे मिल जाता है। इस प्रकार भी देखा गया है कि रोगी लारके ऊपर ही सोया है। बिछौनेके चारों तरफ लार ही लार है। दुर्गन्धके कारण रोगीके घर जाना दूसरोंके लिये कठिन काम है।

२. आक्रान्त अङ्गमें तीव्र पीड़ा—गलेके कैन्सर रोगके मध्यमें रोगीकी आक्रान्त ग्रन्थियोंमें तीव्र पीड़ा होती है। आक्रान्त स्थानसे पीड़ा शुरू होकर दूसरे अंगोंमें प्रवेश कर जाती है। गलेका कैन्सर होनेसे रोगी दोनों कानोंमें, मस्तकमें, बगलमें, पीठमें, और वक्षस्थलमें काफी पीड़ा अनुभव करता है। हाथ और बगलकी पीड़ा इतनी तेज होती है कि रोगी मरनेके करीब हो जाता है और हाथ उठानेसे उठता नहीं, या यों कहिये कि रोगीकी हाथ उठाने वाली ताकत लुप्त हो जाती है।

किसी-किसी क्षेत्रमें मूल ग्रंथि पकने, फूटने और गलनेसे प्रायः क्षत शुष्क हो जाता है। लेकिन, चारों दिशाओंमें बहुत दूर तक जानेवाला, अंग प्रत्यंगोंमें, कैन्सरका शिरा जाल बहुत फैला हुआ होता है। गोल आलूके बीज लगानेके बाद अंकुरोद्गम होनेके लिये कुछ समयके बाद जिस तरह

बीज सड़ जाता है, और जमीनके अन्दर विभिन्न दिशाओंमें, इसकी विभिन्न जड़ फैल जाती है, जिसपर अन्तमें पौधेका जन्म होता है। ठीक उसी तरह गलेका कैन्सर भी होता है। पहले जो ग्रन्थि निकलती है, कुछ समय बाद उसके मूल स्थानसे अगणित शिराएँ चारों तरफ मांसपेशियोंके ऊपर फैल जातीं हैं, और उसके ऊपर छोटी बड़ी बहुत-सी ग्रन्थियाँ दिखाई पड़ने लगती हैं। ये शिराएँ जितनी दूर तक फैलती हैं, उतनी दूर तक ग्रंथि निकलनेकी आशंका होती है। इसके अतिरिक्त शरीरके अन्य स्थानोंमें होने वाला कैन्सर भी इसी प्रकार अपना जाल फैलाता है। इसीलिए; गलेके कैन्सर रोगमें शास्त्रचिकित्सासे कोई स्थायी फायदा नहीं होता है। करवी फूलके पेड़को काट देनेपर. जिस प्रकार कुछ दिनके बाद वह असंख्य शाखाओंके साथ चारों ओरसे शक्ति सम्पन्न होकर बढ़ता है, उसी तरह कैन्सर रोग में दो एक शिराओंको काट देनेपर उसकी जड़ नष्ट नहीं हो जाती। कुछ दिनके लिए पीड़ा भले ही कम हो जाय, किन्तु इसका परिणाम बड़ा भयानक और शोचनीय हो जाता है।

मेरा यह अनुभव है कि कैन्सरका शिरा जाल जितना ही बढ़ेगा, उतनी ही पीड़ा रोगीको अधिक होती है। पीड़ाके कारण रोगीका भोजन बन्द हो जाता है। रोगी अत्यंत दुर्बल हो जाता है। ऐसी अवस्थामें रोगीको मालूम होता है कि जैसे एक विशाल बोझा कन्धे पर रखा गया है, जो कि इतना भारी है कि इसे उतार फेंकना बहुत मुश्किल है।

३. शोथोत्पत्तिः—गलेके कैन्सर रोग की मध्यावस्थामें आक्रांत स्थान में और उसके आसपास चारों तरफ सूज जाता है। कभी यह सूजन इतनी बढ़ जाती है कि धड़ और गला एक हो जाता है, और सूज जानेसे

रोगी गर्दन घुमा-फिरा नहीं सकता। यह सूजन सर्वाङ्गमें दिखाई पड़ती है। सूजनके भीतर तीव्र पीडा होती है। ऐसा मालूम होता है कि जैसे मूल अर्बुद के भीतर एक कीडा चल रहा हो, और बीच-बीचमें सुईके चुभाने जैसी पीड़ा होती है।

४. बीच-बीचमें ज्वरका होना:—गलेके कैन्सर रोगके मध्यमें ज्वर भी आता है। पहले ज्वर रुक-रुक कर होता है। कभी-कभी एक-दो सप्ताहके बाद ज्वर का होना बन्द हो जाता है। रोगीकी रोगसे लड़नेवाली क्षमता घट जाती है। पूर्ण शक्तिमें कमी आ जाती है। ज्वर अधिकतर श्लेष्मा और पित्तके प्रकोपसे होता है।

५. शोषण:—मध्यावस्थामें रोगीका शरीर क्षीण होता जाता है। इस समय रोगीके शरीरमें तनाव आ जाता है। वायु प्रकोपके कारण रोगीके शरीरका चमड़ा शुष्क हो जाता है और अर्बुदमें क्रमश: वृद्धि हो जाती है। अर्बुद वाल्मीकिके स्तूपकी तरह ऊंचा नीचा होकर धीरे-धीरे अधिकतर पीडा देने लगता है।

६. सूखी खाँसी:—रोगीके शरीरमें अधिक वायु हो जानेके कारण, कैन्सर रोग की मध्यावस्थामें रोगी कठिन सूखी खाँसीसे पीड़ित रहता है। खाँसीके कारण प्राय: रात्रिमें रोगी कतई सोने नहीं पाता। खाँसते-खांसते गले की ग्रंथिमें आघात पहुंचनेके कारण अनेक समय काफी मात्रामें खून गिरता है।

७. गलेकी निगलनेवाली शक्तिका ह्रास:—इस समय रोगीकी निगलनेवाली शक्ति कम हो जाती है। अनेक समय रोगी तरल द्रव्य भी नहीं खा पाता है, लेकिन इसके अपेक्षाकृत दृढ पदार्थ कम तकलीफसे खा सकता
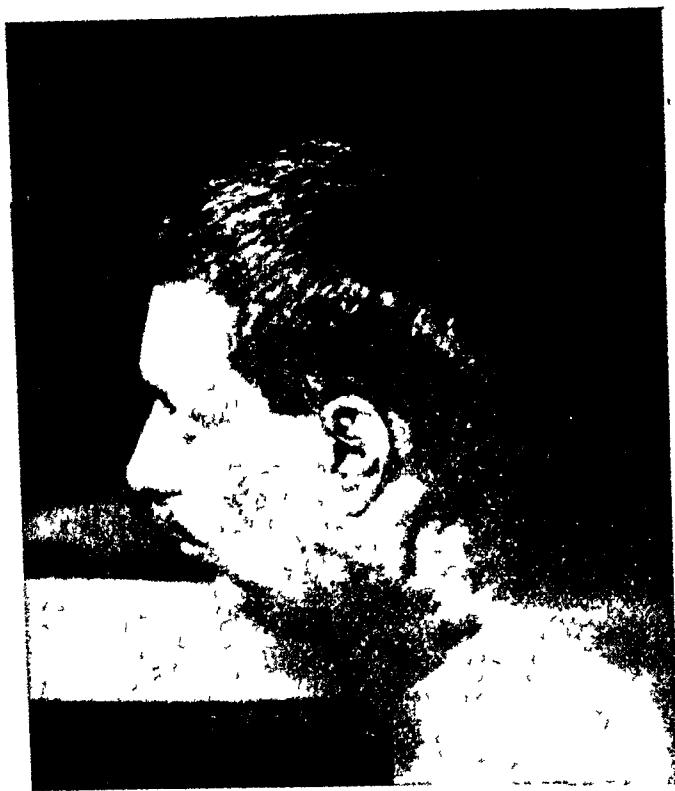
गलेके कैन्सर
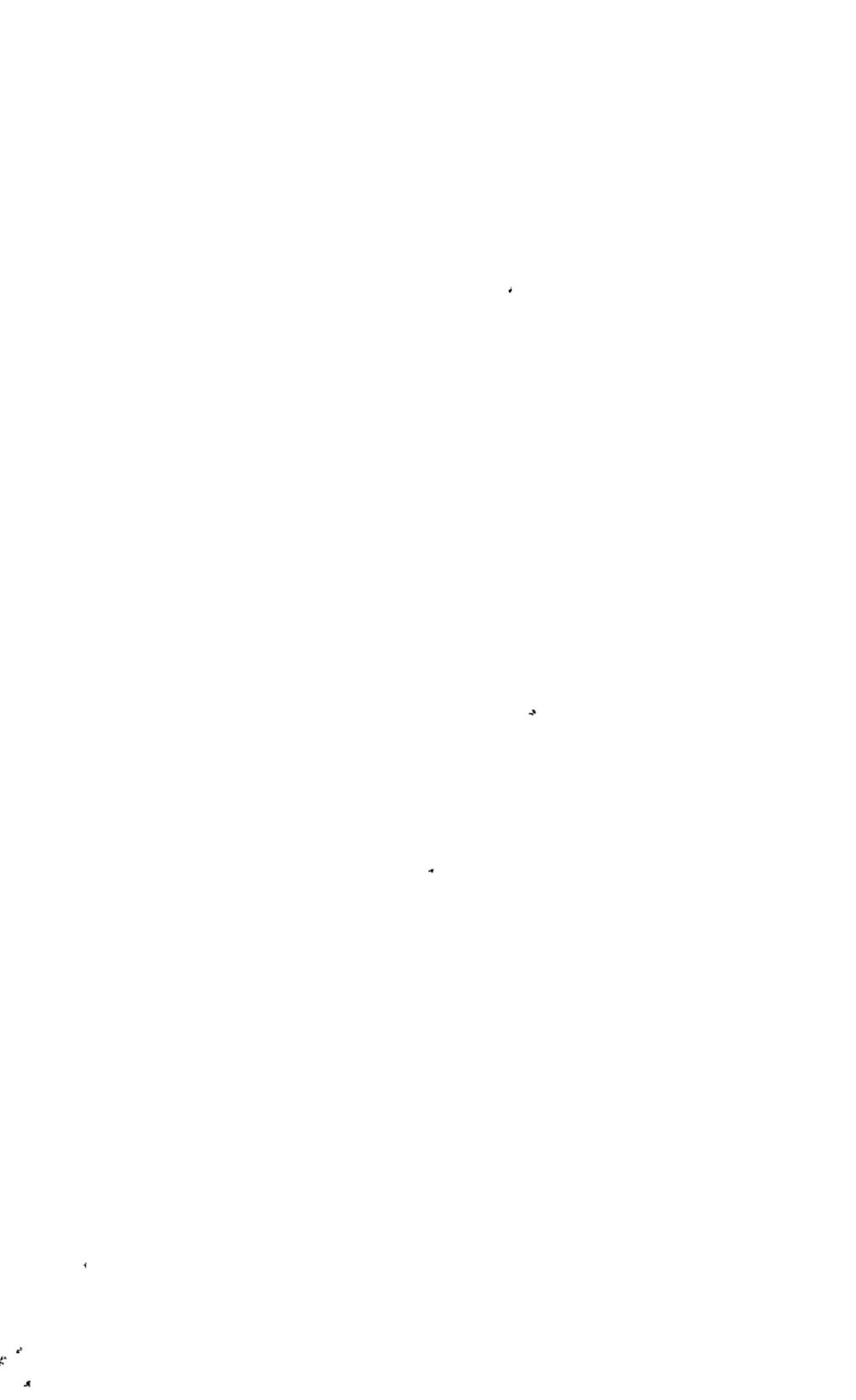
है। कभी-कभी जल पीते समय भी तकलीफ होती है, किन्तु रोगी दूध पी सकता है। निगलते समय तरल पदार्थ नाक द्वारा बाहर आ जाता है।

८. बीच-बीचमें तीव्राक्तस्रावः—इस हालतमें कुछ दिनके पश्चात् रोगीको कण्ठस्राव होता है। रक्त इतना अधिक गिरता है कि रोगीके बिछौने और वस्त्र इत्यादि भींग जाते हैं।

इतना अधिकै रक्तस्राव अधिकतर रेडियम चिकित्साके दुरुपयोग द्वारा होता है। चिकित्साके प्रसंगमें रेडियम प्रयोगके परिणामका विस्तृत विवेचन करूँगा।

९. आक्रांत ग्रंथियोंमें रक्तिम् आभाका होनाः—इस दशामें पूर्व की कही गई ग्रंथियोंमें ज्यादा मात्रामें रक्तिम आभा दिखाई पड़ती है। इसी अवस्थामें ग्रंथियों का स्तूप पाया जाता है, अथवा इस समय भी इसमें से काफी रक्त और पीव निकलती है। यथार्थमें यह ग्रंथियोंकी पकी हुई अवस्था नहीं होती। इन ग्रंथियोंमें काफी दिन बाद रक्तपात आरंभ होता है।

१०. एक से अधिक अंगोंमें रोगकी उत्पत्तिः—गलेके कैन्सरकी मध्यावस्थामें देखा जाता है कि गलेके ग्रन्थि की वृद्धि बन्द हो गई है। किन्तु, रोगीके लीवरके ऊपर पीड़ा होने लगती है।

इस वेदनासे लीवरके ऊपर और एक 'ग्रन्थिकी सृष्टि हो जाती है और यही यकृतके कैन्सरमें बदल जाता है। गले और यकृतमें एक साथ ही विभिन्न अगोंमें रोगोत्पत्ति होनेसे रोगीको अव्यक्त पीड़ा होती है। हृदयसे गले, जरायु और गलेमे, स्तन और गलेमे, स्तन और पीठमें कैन्सर होते देखा गया है। गलेमें ग्रन्थि होनेसे रोगी काफी समय तक कष्ट भोगता रहता है। अचानक एक दिन हृदयके सन्धिस्थानमें पीड़ा होने लगती है,

इसे देखकर अनेक समय सुविज्ञ चिकित्सक भी इसे वात वेदना कहकर भूल करते हैं ; किन्तु कुछ दिन बाद जब इसी स्थानमें एक और अर्बुद निकलता है और धीरे-धीरे बढ़कर रोगीकी चलनेवाली शक्ति बन्द कर देता है, तब चिकित्सक इसे एक और कैन्सर रोगकी सृष्टि बताते हैं। इसके बीचमें रोग बहुत आगे बढ़ जाता है और हड्डी चारों ओर से आक्रान्त हो उठती है। इस समय शास्त्र चिकित्सासे किसी प्रकार भी अर्बुद को चिकित्सा कर अच्छा करने की सम्भावना नहीं रहती है। सुतरां एकही समयमें रोगी को दो रोगोंकी यंत्रणा भोगनी पड़ती है।

११. क्षय :—इसी अवस्थामें यक्ष्मा रोगीकी तरह रोगीके शरीरमें क्षयकी उत्पत्ति होती है, जिसके कारण रोगीका शरीर शुष्क हो जाता है। सदैव मन्द-मन्द ज्वर होता है। श्वाँस, खाँसी, अरुचि, रक्तवमन, क्षुधामान्द्य, नैशघर्म आदि जटिल व्याधियाँ उत्पन्न हो जाती हैं और जीवन-शक्ति धीरे-धीरे क्षीण हो जाती है। एकही समयमें एक अंगोंसे अधिक अङ्गोंमें कन्सरकी उत्पत्तिकी एक घटना बता रहा हूँ। गलेके कैन्सर रोगमें ग्रन्थियों पर लेप देनेकी वजहसे गलेकी ग्रन्थि नीचे उतर कर जंघेमें आ गयी। इस समय कलकत्ता विश्व-विद्यालयके शास्त्र-विद्याके विख्यात डाक्टरको बुलाया गया, उन्होंने परीक्षा की। उसके बाद दो दिन बीतने पर उन्होंने ऑपरेशन करने की राय दी। रोगीने ऑपरेशनसे डरकर मुझे बुलाया। मैंने म्यालिगनेन्ट अर्बुद, अर्थात् दूसरे स्थान पर आक्रमण किया हुआ कैन्सरका अन्य रूप कहकर, ऑपरेशन करनेका मत नहीं दिया और फिर वही प्रलेप लगाने की राय व्यक्त की। अर्बुदादि प्रलेप लगानेके फलस्वरूप जंघेका अर्बुद पुनः उर्ध्वमुखी होकर गलेमें ही जाकर आश्रय लिया। ऑप-

रेशनके निश्चित दिनको डाक्टर बाबूने अर्बुदका चिह्नमात्र भी न देखकर आश्चर्य प्रगट किया।

तृतीय अध्याय

"व्याधेस्तत्वपरिज्ञानम् वेदनायश्च निग्रहः।
एतद्वैस्य वैदत्वं न वैद्यः प्रभूरायुसः ॥"

(इति भाव प्रकाशे)

गलेके कैन्सरकी अन्तिम अवस्था

१. ग्रन्थियोंका गलनाः—रोगकी अंन्तिम अवस्थामें, पहले वर्णित की हुई ग्रंथियोंके अन्दर से क्रमशः गलना आरम्भ होता है। गलित घाव के स्थानसे रस, रक्त और पीव निकलतो है। गलित ग्रन्थियोंसे कभी-कभी काफी रक्तपात होता है। रोगीका शरीर सादा पड जाता है। सदैव ग्रंथियों के गलनेसे एक दिन गलेमें सुराख हो जाता है, पर दशा वही कष्टप्रद और भयावह बनी रहती है। इस समय रोगीकी खानेवाली शक्ति समाप्त हो जाती है। खानेसे खाद्य द्रव्य गलेसे बाहर गिर जाता है। खांसनेसे थूक बाहर गिर जाता है। गलेका स्वर बन्द हो जाता है और रोगी को अपना मनोभाव बतलानेके लिये लिखना पड़ता है।

२. निद्राहीनताः—इस समम निद्राहीनता गलेके रोगीको अत्यन्त ही कष्टप्रद लगती है। प्रबल भूख होनेपर आहार ग्रहण करनेकी अक्षमता, शरीरमें दारुणशोथ उत्पन्न होनेसे रक्तहीनता, वायु प्रकोप, मद-मद ज्वर, निरन्तर लारका गिरना और अव्यक्त यन्त्रणाके कारण रोगीको दारुणनिद्रा-

हीनता उपस्थित होती है। नींद आनेके लिये अनेक औषधियोंका प्रयोग करनेपर भी रोगीको नींद नहीं आती।

३. वमनः—इस अवस्थामें हमेशा क्षय होनेकी दशा बनी रहती है। बिछौनेसे माथा उठानेपर प्रबल रूपसे क्षयका उपक्रम होने लगता है और यह अवस्था अत्यन्त ही कष्ट कर प्रतीत होती है।

४. अजस्रधारसे रक्तवमन और अर्ध गलित अर्बुद से रक्तका बहनाः—इस अवस्थामें अजस्र रूपसे रक्तपात होनेके कारण रोगीका शरीर दुर्बल हो जाता है और इस चक्र में फँस कर वह बर्बाद हो जाता है। गलेके कैन्सरके ऊपर रेडियम तैयार हो जाता है और रक्तस्रावकी मात्रा और भी अधिक बढ़ जाती है। रेडियमसे सहायतार्थ चिकित्सा प्रसंग की मैं विशेष रूपसे आलोचना करूंगा। कभी-कभी यह रक्तस्राव इतना होता है कि प्रचलित इंजेक्शन और रक्त वमन करनेकी सारी चेष्टाएं विफल हो जाती हैं। रक्तका रङ्ग भी काला और कभी अत्यन्त लाल दीखने लगता है।

प्राथमिक समयमें जिस प्रकार टिउमार क्रमशः वृद्धि करने लगता है और उसमें लालीपन आ जाती है, उसी प्रकार कुछ दिन बीतनेपर यकायक एक दिन तीव्र वेगसे रक्तस्राव आ जाता है। रक्तस्राव के इस रूपका निवारण करना अत्यन्त कठिन है। किसी प्रकार रक्तस्रावका निवारण एक बार हो जानेपर दूसरी बार उसके होनेकी आशंका बनी रहती है। इसके बाद रक्त टिउमारके भीतर जमा होकर सड़ने लगता है, और कुछ समय बाद पीब और रक्त बाहर निकलने लगते हैं।

५. आक्रान्त अंगमें चतुर्दिक शोथोत्पत्तिः—रोगकी मध्य अवस्थामें रोगीका शरीर सूखना आरम्भ हो जाता है, और शरीरके शेष अंगमें शोथोत्पत्ति हो जाती है। यह शोथ पहले हाथमें, फिर पांवमें, इसके बाद सारे शरीरमें व्याप्त हो जाता है। आक्रान्तके चारों ओर शोथ अधिक परिणाममें होता है। शोथकी वृद्धिके साथ-साथ हृत्पिण्डकी क्रिया दुर्बल हो जाती है और रोगी पूर्ण रूपसे दुखी हो जाता है।

६. कम्पनः—जिस स्थानमें शोथ नहीं होता, किन्तु शोषणकी अधिकता होती है, उस स्थानपर शेष समय में कम्पन अधिक मात्रामें होने लगता है, और इसके अतिरिक्त दुर्बलता एवं कमजोरी जटिल रूपसे दिखाई देने लगती है।

७. आहार ग्रहणकी क्षमताका लोपः—आहार ग्रहण करनेकी क्षमताका लोप होना, इस रोगका प्रधान लक्षण है। इस अवस्थामें रोगीको भूख लगती है, लेकिन खानेकी शक्ति बन्द हो जाती है। रोगी खाना नहीं खा सकता और क्रमशः मृत्युशय्याकी ओर अग्रसर होने लगता है। बहुत समय यह देखा गया है कि रोगी एक महीने तक भी जल ग्रहण नहीं किया, फिर भी वह जीवित रहता है। अनेक समय यह भी देखा गया है कि रोगीके गलेकी नाली और मुखगह्वर परिष्कृत है, किन्तु उसके खाने और निगलनेकी शक्ति लुप्त हो गई है।

८. वाक्यावरोध हो जाता है :—पहले हमने स्वरभंगकी बात कही है। यही स्वरभंग धीरे-धीरे बढ़कर रोगीकी बात करनेवाली शक्ति बंद कर देता है। रोगीको इस अवस्थामें अपने भावोंको लिखकरके या भाव भंगियों के द्वारा सकेत करके बतलाना पडता है। ग्रन्थियोंकी अत्याधिक वृद्धि, वायु

आदिसे गलेकी नलीके बीच श्लेष्माका रुकना एवं गलेके सुराखसे होकर अविरत लारका गिरना आदि कारणोंसे रोगीकी वाक्शक्ति बन्द हो जाती है। पहले कहे हुए मांसाकुरोंके बढ़ने एवं जिह्वाके शून्य हो जानेपर भी रोगी वाक्यहीन हो जाता है।

९. गलेमें सुराख हो जाता है:—अर्बुदोंका गलना प्रारम्भ होकर कैन्सर रोगकी अन्तिम दशामें गलेमें सुराख हो जाता है। अधिक मात्रामें रेडियमके प्रयोगके कारण भी कुछ दिन बाद चमड़ा खिसककर रोगीके गले में सुराख हो जाता है। यह हालत बड़ी ही दुखदायी होती है।

१०. श्वाँस लेनेमें कष्ट उत्पन्न हो जाता है :—गलेके कैन्सर रोगकी अन्तिम दशामें रोगीको बहुत ही यंत्रणाप्रद तीव्र श्वांस कष्ट उत्पन्न होता है। जिन रोगियोंके गले के भीतर मांसका पर्दा धीरे-धीरे बढ़कर गला बन्द कर देता है, उन्हें औरों की अपेक्षा श्वाँसकष्ट और अधिक होता है।

११. घावके भीतर कीड़े पड जाते हैं :—अर्बुदोंका जब पकना और गलना आरम्भ हो जाता है, उस समय अज्ञानतावश क्षत स्थानकी अच्छी तरह धुलाई न करनेके कारण लाई की तरह सफेद कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं। ये कीड़े एक बारमें ३०-४० की संख्यामें बाहर होते हैं।

१२ घावमें दुर्गन्धका उत्पन्न होना :—इस समय घावसे इतनी तीव्र गन्ध निकलती है कि स्वयं रोगी भी इसे बर्दाश्त नहीं कर सकता। इस समय सेवा सुश्रूषाके अभावमें बहुतसे रोगी शोचनीय हालतमें मर जाते हैं। दुर्गन्ध मिटानेके लिये तीव्र गन्ध नाशक औषधियोंका प्रयोग करनेपर भी दुर्गन्ध दूर नहीं होती। इसी कारण रोगीकी सेवा करनेवाला

रोगीके निकट बैठ नहीं पाता है और उचित सेवाके अभावके कारण रोगी को अत्यन्त कष्ट होता है।

१३. शोथोत्पत्ति :—गलेके कैन्सर रोगकी अन्तिम अवस्थामें अचानक मुँह, कान, नाक गला इत्यादिमें प्रबल रूपसे शोथ उत्पन्न हो जाता है। इससे रोगीको बड़ी पीड़ा होती है। रोगीकी खानेवाली शक्ति नहीं रह जाती और पीड़ा की प्रबलताके कारण रोगी ज्ञानहीन हो जाता है और वह कभी प्रलाप करता है। आँखोंकी दृष्टि दूसरे ढङ्ग की हो जाती है और आँख लाल हो जाती है।

१४. आँखोंमें अत्यधिक सूजन :—रोगीकी आँखोंमें अत्यधिक सूजन उत्पन्न हो जाती है। कभी-कभी एक अथवा दोनों आँखें बन्द हो जाती हैं और आँखों पर छाले पड़ने की तरहसे सूजन हो जाती है। इस समय रोगीके समग्र मस्तक, कपाल एवं कर्णमूलमें काफी वेदना होती है। अधिक वेदनाके कारण रोगी मूर्छित हो जाता है। वह अपना सिर नहीं उठा पाता है, जैसे कि माथेमें कोई भारी बोझ रखा हुआ हो। शोथकी अधिकताके कारण कभी धड़, गला, मुँह, आँख ये सब एक हो जाते हैं।

१५. रोगी मुँहसे लार फेंकनेमें असमर्थ हो जाता है :—इस समय रोगीके मुँहमें काफी मात्रामें लार उत्पन्न हो जाती है। यह लार खूब सख्त, गाढी और मोटी होती है। रोगी उसे मुँहसे बाहर फेंकनेकी चेष्टा करने पर भी बाहर नही फेंक पाता। मुँहके भीतर लार जम जाती है और बहुत ही सड़ी हुई दुर्गन्ध पैदा करती है, जिसके फल स्वरूप रोगी खा नहीं पाता। लारकी गन्धसे रोगी भी स्वय ऊब जाता है और सेवा करनेवाला भी पास नहीं रह पाता।

१६. विभिन्न अंगोंमें वातकी पीड़ा उत्पन्न हो जाती है :—इस रोगमें पहले से ही कान, मस्तक, धड़ और गलेमें तीव्र पीड़ा होती है। इसके अतिरिक्त समस्त शरीरकी गांठोंमें कनकन करके पीड़ा होती है। ज्यों-ज्यों रोगीका शरीर दुर्बल होता जाता है, त्यों-त्यों दर्द बढ़ता जाता है।

१७. जबड़ा बन्द हो जाता है :—गलेमें ग्रन्थियां बढ़कर गलेके भीतरमें फैल जाती हैं और बढ़ी हुई मूल ग्रन्थिसे विभिन्न शाखाएँ निकल कर गलेमें और जबड़ेके चारों तरफ फैलकर जबड़ेको बन्द कर देती हैं। इस अवस्थामें रोगी जम्हाई नहीं ले सकता है और वह बड़ी कठिनाई से थोड़ा-सा मुँह खोल पाता है। दूध और जलके अतिरिक्त वह और कुछ खा नहीं सकता।

१८. जिह्वाका सुन्न होना :—इस दशामें रोगीकी जीभ भीषण रूपसे जड़ताको प्राप्त कर चेतनहीन हो बात करनेके योग्य नहीं रह जाती। बहुत से रोगी स्वादका अनुभव नहीं कर पाते, अर्थात् मीठा या कड़ुवा स्वाद है, यह भी समझ नहीं पाते। धीरे-धीरे रोगीकी जीभकी गति बन्द हो जाती है और वह सर्वथा बातचीत करनेमें असमर्थ हो जाता है।

१९. जल मिश्रित रक्तका गिरना :—लार एवं पीव मिला हुआ रक्तस्राव होने लगता है। छोटे रूपमें जमा हुआ रक्त, खूब अल्पमात्रामें रुकरुककर गिरने लगता है। बीच-बीचमें इस प्रकारके रक्तस्राव होनेके कारण रोगीका शरीर पीला पड़ जाता है।

२०. अरुचि :—रोगीको इस दशामें अरुचि हो जाती है। रोगकी मध्यावस्थामें रोगीको खानेकी प्रबल इच्छा रहती है, लेकिन निगलने की

शक्ति कम होनेके कारण रोगी खा नहीं सकता। बहुत दिनों तक रुचिकर पदार्थ न खानेसे अन्तमें रोगीको एकदम अरुचि हो जाती है।

२५. अविच्छिन्न ज्वर:—इस दशामें अधिकतर रोगीको ज्वर होता है। यक्ष्मा रोगमें सन्ध्या समय ज्वरका ताप बढ़ जाता है और समस्त रात्रि रहकर प्रातःकाल उतर जाता है। नाड़ी की गति हमेशा चञ्चल रहती है।

२७. पिपासा:—किसी-किसी रोगीको इस दशामें अत्यन्त प्यास लगती है, किन्तु जल निगलनेमें भी किसी-किसीको तकलीफ होती है। इस प्रकार रोगी असह्य यंत्रणा पाता है।

२३ अतिसार:—इस समय बीच-बीचमें रोगीका पेट खराब हो जाता है। बार-बार पतली दस्त होती है। रोगीका क्षययुक्त शरीर और भी क्षीण होता जाता है। धीरे-धीरे यही तरलरूपमें परिवर्तित हो जाता है। साथ-साथ ज्वर और पीव स्रावसे रोगीकी दशा क्रमशः क्षीण होती जाती है।

२४. गलेकी नलीसे पाकस्थली तक सड़न:—गलेके कैन्सरकी इस दशामें गलेका घाव क्रमशः नीचेकी ओर बढ़कर पाकस्थली तक फैल जाता है। ऐसी हालतमें पीव और खून मिला हुआ दस्त रोगीको होने लगता है। इस समय लारका गिरना न रुकनेकी वजहसे रोगी एक पात्र हमेशा अपने निकट रखता है। खानेकी ताकत एक दम लुप्त हो जानेके कारण रोगीको सारी रात जगकर व्यतीत करना पड़ता है। किसी भी प्रकार यदि गलेकी नलीसे कुछ भी खाद्यांश भीतर जाता है, तो रोगीको असह्य जलन होती है।

२५. फुम्फुसों पर आक्रमण:—गलेका घाव क्रमशः बढ़कर फुफ्फुसों पर भी आक्रमण करते देखा गया है। इस समय भयानक श्वाँस कष्ट होता है और रोगी पीड़ाके कारण करवट नहीं ले पाता।

२६. खाद्य द्रव्य नाक द्वारा बाहर आ जाता है:—बहुत बार गलेकी ग्रंथियाँ बढ़कर, गलेकी नलीके बगलकी पेशियोंपर आक्रमण कर देती हैं, जिससे अन्न नली सकुचित हो जाती है और वायु उर्ध्वगत हो जाती है। इस समय कुछ खानेसे श्वाँस अटक जाती है। भीतरके अर्बुदपर दबाव देनेसे ही तीव्र रुपसे रक्तस्राव होता है और शीघ्र ही रक्तस्रावके न कम होने पर रोगी अत्यन्त ही दुर्बल हो जाता है।

२७. नाकका खना हो जाना :—इस समय बहुतोंको नाक खना हो जाता है, और रोगी नाक द्वारा बोलता है। किसी को बात करनेमें ही जड़ता आ जाती है। गलेका घाव उर्ध्वगामी होकर अनेक समय तालूमें छिद्र कर नासिकामें प्रवेश कर जाता है, एवं रोगीकी घ्राण शक्ति भी नष्ट हो जाती है।

२८. मस्तकमें तीव्र पीड़ा :—गलेके कैन्सर रोगकी अन्तिम हालतमें सिरकी पीड़ा अत्यन्त कष्ट कर होती है। ये सभी अर्बुद गलेके बाहर पैदा होकर, एक वाल्मीकि स्तूपकी तरह बढ़ने लगते हैं। इन सभी अर्बुदोंके नम्र होकर पकने-फटनेका कोई लक्षण नहीं मिलता और जो पत्थर की तरह सख्त हो गये हैं, वही सभीकी अपेक्षा अधिक यंत्रणाप्रद होते हैं।

यह पीड़ा सिर, दोनों कर्णमूल, गले एवं पीठ तक होती है। पीड़ाके आधिक्यसे रोगी अनेक बार आत्महत्या करनेके लिये प्रस्तुत हो जाता है।

इस समय पीड़ा दूर करनेके लिये तीव्र उग्रवीर्य औषधिके प्रयोगसे सामयिक लाभ होता है, किन्तु औषधिके प्रभावके दूर होते ही पीड़ा पहलेसे भी अधिक हो जाती है। ज्वर, श्वांस कष्ट, रक्तवमन, अरुचि, लालास्राव प्रभृति सहायक जटिल व्याधियां मिलकर रोगीकी हालत और भी भयावह कर देती हैं।

२९. थोड़ेसे भी आघातसे प्रबल रूपसे रक्तका गिरना :—कैन्सरके घावकी अन्तिम दशामें थोड़ा-सा भी आघात लगने पर घावसे प्रबल रूपसे खून गिरने लगता है। रोगीको थोड़ासा भी झुककर चलनेपर आक्रान्त स्थानसे तीव्र मात्रामें खून गिरने लगता है। गलित ग्रंथियोंका घाव धीरे-धीरे भीतरकी ओर बढ़ने लगता है। इस समय रोगी तनिक भी आराम नहीं पाता। निद्रा उसकी लुप्त हो जाती है और सदैव अस्थिरता बनी रहती है।

३०. गलेके भीतर पतला चमड़ा धीरे-धीरे बढ़ने लगता है, इस प्रकार जो कैन्सर होता है, उसकी अन्तिम अवस्था :—गलेके कैन्सर रोगकी प्रथम अवस्थाके वर्णनके प्रसंगमें स्वरभंगका उल्लेख हमने किया है। यह गलेके भीतरके मांसके पर्देकी वृद्धिके लिये ही होता है। उसका भी वर्णन हमने विस्तारपूर्वक किया है।

यह जातीय कैन्सर बड़ा ही भयानक होता है। इसका कारण यह है कि अनेक दिनों तक कैन्सर रोग रह कर नहीं निर्णीत हो पाता और क्रमशः बाधाविहीन बढ़कर समस्त गलेको घेर लेता है। अन्तमें रोगीकी खाद्य ग्रहण करने वाली शक्ति अचानक ही लुप्त हो जाती है। मुखसे लगातार लार बहती रहती है। बीच-बीचमें रक्तपात भी होता है। इस समय क्षयकी

तरह बराबर ज्वर बना रहता है। रक्तकी कमीके कारण शरीर सफेद दिखाई पड़ता है, और श्वांसकष्ट, रक्तवमन, अरुचि, तन्द्रा, मूर्च्छा आदिका आवेग हो जाता है।

३१. भोजन ग्रहण करनेकी क्षमताका लोप :—न खा सकनेके कारण मनुष्य किस प्रकार तिल-तिल गल कर, मृत्युकी ओर अग्रसर होता है, यह कैन्सर रोगमें प्रत्यक्ष ही देखा जाता है। रोगीको तीव्र भूख लगती है, भयानक प्याससे व्याकुलता आ जाती है, किन्तु कुछ भी खाने तथा जल पीनेकी शक्तिसे रोगी असमर्थ है।

मुखसे शरीरका रस लारके रूपमें बाहर निकल जाता है। गलेमें श्लेष्मा, उर्ध्वगन वायु एवं ग्रंथियोंकी अत्याधिक वृद्धिके कारण, गला बन्द होकर खाने की क्षमता एक बार ही लुप्त हो जाती है और धीरे-धीरे रोगी अन्तिम अवस्थामें आ जाता है।

३२. शरीरके अन्य अंगके कैन्सर द्वारा गलेके कैन्सरकी उत्पत्ति :—शरीरके अन्य अङ्गोंमें हुए कैन्सरसे पीड़ित होने पर कुछ समय बाद किसी रोगीको गलेमें भी हो जाता है। कभी-कभी रेडियम चिकित्सा के फलस्वरूप एक अङ्गका कैन्सर अन्य अङ्गमें स्थानान्तरित हो जाता है, जिसके कारण दूसरा स्थान बहुत प्रबल रूपसे आक्रांत हो जाता है।

'चतुर्थ अध्याय'

धीधृतिस्मृतिविभ्रष्टः कर्म्म यत् कुरुतेऽशुभम्।
प्रज्ञापराधं तं विद्यात् सर्व्वदोषप्रकोपणम्॥

उदीरणं गतिमतामुदीर्णानाञ्च निग्रहः ।
सेवनं साहसानाञ्च नारीणाञ्चति सेवनम् ॥
कर्म्मकालातिपातश्च मिथ्यारम्भश्च कर्म्मणाम ।
विनयाचार लोपश्च पूज्यानाञ्चाभिधर्षणम ॥
ज्ञातानां स्वयमर्थानामूहितानां निषेवणम् ।
परमौन्मादिकानाञ्च प्रत्ययानां निषेवणम् ॥
अकालादेशसञ्चारो मैत्री संक्लिष्टकर्म्मभि ।
इन्द्रियोपक्रमोक्तस्य सद्वृत्तस्य च वर्ज्जनम् ॥
इर्स्यामानभयक्रोधः लोभमोहमदभ्रमाः ।
तज्जं व कर्म्म यत् क्लिष्टं क्लिष्टं यद्देहकर्म्म च ॥
यच्चान्यदीदृशं कर्म्म रजोमोहसमुत्थितम् ।
प्रज्ञापराधं तं शिष्टाब्रुवते व्याधिकारणम ॥
(इति शरीर स्थाने चरके)

गलेके कैन्सर रोगकी अन्तिम अवस्था

१. अविरल वमन :—गलेके कैन्सर रोगकी अन्तिम दशामें कष्टकर उपव्याधियोंके भीतर अनवरत रूपसे वमन होकर, एक नई कष्ट कर उपव्याधिका आरम्भ होता है। इस समय रोगीकी निगलनेवाली शक्तिकी असमर्थताके कारण रोगी जो कुछ भी खानेकी चेष्टा करता है, वह सब बाहर आ जाता है। खानेकी असमर्थता एवं अविरल वमनके कारण रोगी जो कुछ भी खानेकी चेष्टा करता है, वह सब बाहर आ जाता है। खानेकी असमर्थता एवं अविरल वमनके कारण रोगी क्रमशः मौतके समीप आता जाता है।

२. इसके अतिरिक्त लारका गिरना :—अविरल लारका गिरना अंतिम अवस्थाका विशेष लक्षण है। अधिक लारके गिरनेके कारण रोगी बात नहीं कर पाता। लार लसदार एवं अत्यन्त दुर्गन्धित हो जाती है। लम्बी अवधि तक रोगके भोगने बाद भी जो जीवनशक्ति बची रहती है, वह भी इस लारके कारण समाप्त होने लगती है। इस समय औषधि द्वारा लार बन्द करनेकी चेष्टा करनेपर सिर, कान, एव गलेमें कठिन पीड़ा हो जाती है। पीड़ाकी अधिकताके कारण कभी-कभी रोगी संज्ञाहीन हो जाता है।

३. पीवका गिरना:—पहले हमने कहा है कि कैन्सरके घावसे साधारणतः पीव नहीं होती। पीवकी उत्पत्ति हो जानेपर यह रोग असाध्य हो जाता है। रोगीकी अन्तिम अवस्थामें अतिशय दुर्गन्धयुक्त पीव निकलती है और घावमें बड़े-बड़े कीड़े पड जाते हैं।

४. सदैव रक्तस्राव:—गलेके कैन्सर रोगमें आखिरी दशामें प्रबल रक्तस्राव एक उल्लेखनीय उपसर्ग है।

५. दारुण अवसन्नता एवं सदैव तन्द्राका रहना इस अवस्थाका विशेष लक्षण है।

६. कोई-कोई रोगी इस अवस्थामें मूर्छित हो जाता है और कुछ क्षयके बाद संज्ञा लाभ करता है।

७. रोगी कभी-कभी प्रलाप करता है, कभी पुकारने पर बोलता है और कभी नहीं।

८. कभी-कभी इसकी अन्तिम अवस्थामें रोगीको अतिसार हो जाता है, जिसके कारण रोगी दुर्बल हो जाता है।

९. अन्तमें रोगीकी दृष्टिशक्ति लुप्त हो जाती है। इस संज्ञाहीन दशा में रोगी कभी-कभी अनेक दिनतक पड़ा रहता है। कैन्सर रोगमें रोगी मृदुभाव से मृत्युकी ओर अग्रसर होता जाता है, और पीड़ा वर्णनातीत रूप से सहन करता है।

पंचम अध्याय

नह्य विशेषविद्रोगानामोषधविदपि भिषक् प्रशमन समर्थ इति।

गलेके रोगका शास्त्रीय निदान :—प्राचीन आयुर्वेदके ग्रंथोंमें कैन्सर अथवा सज्ञा वाचक कर्कट रोगोंका कोई उल्लेख नही पाया जाता है। यह रक्तगत द्वन्द्वज या त्रिदोषज व्याधियाँ हैं। गलेके कैन्सर रोगके साथ आयुर्वेदमें रोहिणी रोगका बहुत सादृश्य है, वास्तवमें गलेके कैन्सर रोग और रोहिणी रोगमें बड़ी मित्रता है। कैन्सर रोगका आयुर्वेदीय नाम विसर्पित रक्तार्बुद है।

निदान :- वायु, पित्त और कफ इनमेंसे एक-एक अथवा निम्नलिखित क्रियाकी तरह बढ़कर रक्त और मांसके सहारे कण्ठ देशमें मांसाकुर उत्पादन करते हैं। यही मांसाकुर बढ़कर रोगीके प्राण ले लेते हैं। गलेके कैन्सरका यही निदान है।

आयुर्वेदमें गलेकी रोहिणी पांच प्रकारकी होती है, इसके सिवाय और भी १३ प्रकारके गलेके रोग हैं। इनमें पांचों रोहिणी और गलेके कैन्सर रोगमें एक मात्र नामकी विभिन्नताके अतिरिक्त और कोई विभिन्नता नहीं है।

पाँच प्रकारकी रोहिणी:—वातजा, पित्तजा, श्लेष्मजा, सन्निपातजा एवं रक्त जा।

वातजा, रोहिणीमें जिह्वाके चारों ओर मांसांकुरोंकी उत्पत्ति होती है। यह बड़ा ही कष्टदायक होता है और यह कण्ठका अवरोध भी कर देता है।

पित्तजा रोहिणीमें मांसांकुर शीघ्राति शीघ्र उत्पन्न होते रहते हैं और ये सभी पक जाते हैं। इससे दाह और ज्वर आदि होते हैं।

श्लेष्मा रोहिणीके अंकुर समूह कण्ठरोधक और कठिन होते हैं। यह प्रायः पकते नहीं।

सन्निपातजा और त्रिदोषजा रोहिणी रोगमें मांसांकुर गभीरपाकी और दुर्निवार्य होते हैं।

रक्तजा रोहिणी पित्तजा रोहिणीकी तरह लक्षण क्रान्त होते हैं। इसमें मांसांकुर साधारणतः स्फोटक द्वारा फैलते हैं।

उल्लिखित पाँच प्रकारके रोहिणीके अलावा जिन १३ प्रकारके गलेके रोगोंका वर्णन शास्त्रोंमें है, उसका वर्णन भी कर रहा हूँ।

गलेके रोगोंका भेद:—कंठ शालुक, अधिजिह्व, वलय, वलास, एक-वृन्द, वृन्द, शतघ्नी, गिलायु, कण्ठ विद्रधि, गलोय, स्वरघ्न, मांसतान और विदारी आदि १३ प्रकारके गलेके रोग हैं।

१. कंठ शालुक:—श्लेष्माके प्रकोपसे कण्ठदेशके किनारे आंठीकी तरह आकृति विशिष्ट, कठिन एव खरस्पर्श ग्रन्थि उत्पन्न होती है। यह कंटकवत् वेदना देती है। यह व्याधि शास्त्र साध्य है।

२. अधिजिह्व:—श्लेष्मासे कुपित होकर रक्तगत होनेसे जीभके पीछे, जिह्वाके अग्र भागकी तरह एक तरहका शोथ उत्पन्न होता है। यह पक जानेपर असाध्य हो जाता है।

३. वलय :—दूषित कफ, कण्ठदेश में वलयकी आकृतिकी तरह एक प्रकारका ऊँचा शोथ उत्पन्न करता है। इस रोगको वलय रोग कहते हैं। वलय रोगमें अन्नवह नली अवरुद्ध हो जाती है।

४. एक वृन्द :—दूषित कफ रक्तके साथ मिलकर ऊँचा गोलाकार शोथ उत्पन्न करता है। इसमें खुजलाहट और जलन होती है और पक भी जाता है।

५. वृन्द :—पित्तके प्रकोपसे रक्त कुपित होकर, कंठदेशमें ऊँचा गोलाकार एक तरहके शोथकी भी सृष्टि करता है। इसमें दाह और तीव्र ज्वर होता है।

६. शतघ्नी :—वातादि मिश्रित त्रिदोषके प्रकोपसे गलेके भीतर बातीके समान एक प्रकारका मांसांकुर उत्पन्न होता है। इसमें खुजलाहट, दाह आदि वेदना होती है। यह व्याधि साधारणतः मारात्मक होती है।

७. गिलायु :—श्लेष्मा प्रकुपित होकर रक्तके सहारे गलेमें आमलेके औठीकी तरह कठिन और अल्पवेदनायुक्त जो शोथ उत्पन्न होता है, उसे गिलायु कहते हैं। इसमें आहार गलेमें रुक जाता है।

८. गलविद्रधि :—वातादि त्रिदोषोंके प्रकोपसे कण्ठदेशमें जुड़ी हुई पूर्वोक्त सन्निपातिक रोहिणीके लक्षणाक्रान्त शोथको गलविद्रधि कहते हैं। यह मारात्मक होती है।

९. गलौघ :—दूषित श्लेष्मा रक्तगत होकर गलेके मध्य बड़ी एक तरहकी सूजन पैदा करती है। इससे अन्नजल और उदरवायुकी गति रुक जाती है और रोगी ज्वरसे पीड़ित हो जाता है।

१०. स्वरघ्न :—वातके प्रकोपसे स्वरघ्न नामक गलेका रोग होता है। इससे श्वास-नली रुक जाती है। रोगीको मूर्च्छा आती है। रोगी लंबी निश्वासे लेने लगता है। कंठ शुष्क और स्वर भेद हो जाता है।

११. मांसतान :—त्रिदोषके प्रकोपसे विस्तृत और अतिशय कष्ट-प्रद, एक आकृतिकी तरह सूजन गलेके भीतर उत्पन्न होकर धीरे-धीरे कंठ-रोध करती है। इसका नाम मांसतान है।

१२. विदारी :—पित्तके प्रकोपसे कण्ठदेशमें दाह एव वेदनायुक्त एक प्रकारका शोथ उत्पन्न होता है। सूजनके सड़नेसे दुर्गन्ध निकलती है और वहां का मांस गिर पड़ता है। जिस तरफ सोनेका अभ्यास साधारणतः होता है, उसी तरफ यह रोग उत्पन्न होता है।

छठवाँ अध्याय

"प्रियोपकरणाभावाद्दौरात्म्याद्वैद्यदोषतः।
अकर्मतश्च साध्यत्वं कश्चिद्रोगोऽतिवर्तते॥"

(इति चरके)

" गलेके कैन्सर रोगकी प्रथमावस्थाकी चिकित्सा :—सभी तरहके कैन्सर रोग, प्रथमावस्थामें, अधिकांशतः ग्रन्थियोंके रूपमें ही होते हैं। कभी-कभी इसकी संख्या एक से अधिक भी होती है। ये अर्बुद पहले विशेष दोष सम्पन्न नहीं होते। एक दोष या द्विदोष जन्य ग्रन्थियां पहले विशेष कष्टदायी नहीं होतीं। इस प्रकार इन अर्बुदों की पहले उपेक्षा की जाती है। अर्बुदोंमें पीड़ा न उत्पन्न होने तक कोई भी इसका प्रतिकार नहीं करना चाहता।

दोषहीन अर्बुद क्यों शरीरमें उत्पन्न होते हैं? यह प्रश्न स्वाभाविक है। पृथ्वीके अन्यान्य चिकित्सक चाहे जो कुछ कहें, किन्तु आयुर्वेदीय चिकित्सकोंका मत है कि ये अर्बुद कफ एवं पित्तकी विकृतिके कारण होते हैं। अधिकांश क्षेत्रोंमें कफकी अधिकताके कारण आमरसकी वृद्धि, रक्तकी कमी, अजीर्ण दोष, पित्तकी अल्पता या वृद्धि, जीवन-शक्तिका ह्रास, अस्थि-क्षय, मेददुष्टि, खूनके आगन्तुक दोषका आविर्भाव एवं बहुत समयसे रक्तके आगन्तुक दोषोंके जमा करनेके कारण मानव शरीरमें अर्बुद निकलते हैं। इसके सिवाय देहकी दुर्बलता भी रोगकी उत्पत्तिका एक उत्कृष्ट कारण है।

अर्बुदों की उत्पत्ति की प्रथमावस्था में चिकित्सा :—

१. आदित्यरस :—प्रातः ७ बजे। अनुपान—अदरकके रस एवं शहदके साथ सेवन करना चाहिए। इसके सेवनसे यदि वमन होने की क्रिया आरम्भ हो, तो नीबूके रसके सेवनसे यह बन्द हो जाता है।

२. रौद्ररस :—१० बजे। अनुपान—सफेद पुनर्नवाके रस अथवा पानका रस और शहदके साथ सेवन करना चाहिए।

३. सारिवाद्यासव :—दोनों समय भोजनके बाद शीतल जलके साथ सेवन करना चाहिए। मात्रा—४ ड्राम।

४. प्रवालयोग :—४ बजे। अनुपान—शहदके साथ मलकर अच्छी तरह घोंटा हुआ दूधके साथ सेवन करना चाहिए।

५. उदयभास्कर :—सन्ध्या ७ बजे। अनुपान—आम और अदरक का रस शहदके साथ सेवन करना चाहिए।

पथ्यापथ्य :—प्रातः दुग्ध और सन्देश, दोपहर को भात, दाल,

तरकारी , तीसरे पहर पका फल, रातको पूड़ी-तरकारी, मिष्ठान्न प्रभृति निरामिष पथ्य सेवन करना चाहिए।

निषिद्ध :—साग, अम्ल और दुष्पाच्य खाद्य, दिनमें सोना, रातमें जगना, मद्यपान एवं स्त्री सम्भोग।

दोषयुक्त अर्बुदों की चिकित्सा :—दोषहीन ग्रन्थियां कुछ दिनोंके बाद आहार-विहारकी विषमताके कारण समयानुसार दोषयुक्त हो जाती हैं। तब ये बढ़ती हैं, कड़ी होती हैं, एव क्रमशः आक्रान्त स्थानमें पीड़ाप्रद हो जाती हैं। कभी-कभी ज्वाला होती है, सुई चुभाने जैसी पीड़ा, लालस्राव एव रक्तस्राव भी होता है। इससे घाव पैदा होता है और वह सड़ने लगता है। ज्यादा रक्त गिरनेके कारण नीचे खिसक जाता है। इस समय निम्न-लिखित व्यवस्था द्वारा इस औषधिका प्रयोग करना चाहिए।

१. माणिक्यरस :—प्रातः ७ बजे। अनुपान—आम, अदरकका रस एव मधु। इसके बाद निम्न-लिखित क्वाथ सेवन करना चाहिए। जैसे—हर्रे, सोंठ, एरण्डमूल, कचनारकी छाल, सब आधा-आधा तोला, आधा सेर पानीमें पकाकर आधा पाव रहने पर उतारकर मात्राके अनुसार शुद्ध गुग्गुलका प्रक्षेप देकर सेवन करना चाहिए।

२. बृहत् लोकनाथ रस :—प्रातः १० बजे। अनुपान—अदरकके रसके साथ शहद मिलाकर सेवन करना चाहिए।

३. सारिवाद्यासव :—दोनों समय भोजनके बाद बराबर जल मिलाकर सेवन करना चाहिए। मात्रा—४ ड्राम।

४. महाभल्लातक:—समय ४ बजे। गर्म दूधके साथ चीनी मिलाकर लेना चाहिए। मात्रा—आधा तोला।

४. महालक्ष्मीविलासः—सन्ध्या ७ बजे। अनुपान—मधुके साथ मिलाकर थोड़ा गर्म दूधके साथ सेवन करें।

द्वितीय व्यवस्था पत्र

१. वंशपत्रहरितालभस्मः—प्रातः ७ बजे। गायका घी १० बूँद लेकर दवामें मिला सेवन करें।

२. द्राक्षारिष्टः—दोनों समय भोजनोपरान्त शीतल जलके साथ सेवन करना चाहिए।

३. पंचतिक्तघृतगुग्गुलुः—समय ५ बजे थोड़े गर्म दूधके साथ सेवन करना चाहिए।

४. महालक्ष्मीविलासरसः—रातको थोड़े गर्म दूधके साथ सेवन करना चाहिए।

पथ्यः—गायके घी द्वारा बना अन्न सेवन करना चाहिए। तेल, मछली, और मांस नहीं खाना चाहिए। घी १ छटांककी मात्रामें लेना चाहिए।

ऊपर लिखे हुए उपायों द्वारा ग्रंथियोंकी वृद्धि रुक जाती है। ग्रन्थियोंके विशेष दोषयुक्त होनेपर अर्थात् (त्रिदोषयुक्त) होनेसे किसी निर्दिष्ट समयपर ग्रन्थियोंमें पीड़ा आरंभ हो जाती है। ग्रंथियों द्वारा आक्रान्त स्थान कड़ी ईंटकी तरह हो जाता है। लार गिरती है। ज्वर होता है और प्रतिदिन एक निर्दिष्ट समयपर पीड़ा होती है। ग्रथियों के चारों तरफकी शिराएँ एवं पेशियाँ आक्रान्त तथा पीड़ायुक्त और विस्तृत होती हैं। इस प्रकार पीड़ाकी शीघ्र शान्तिके लिये निम्नलिखित लेपके प्रयोग करनेसे उपकार होता है।

अदरकका रस, सहिजन की छालका रस, धतूरेके पत्तेका रस, मनचामिज का रस, आकन्दके पत्तेका रस, तैफ़्यामिज का रस—सब १ तोला। अफीम १ आना, गुलराज ५ तोला, समुद्रफेन १ तोला, सबको एक साथ मिलाकर लेप करना होता है।

अस्थियोंकी वृद्धिकी दशामें निम्नलिखित व्यवस्था पत्रके अनुसार औषधि व्यवहार करनेसे लाभ होता है।

१. सोमनाथ ताम्र—प्रातः ७ बजे से अदरक का रस और शहदके साथ सेवन करना चाहिए।

२. खदिरारिष्ट—दोनों समय भोजनोपरान्त शीतल जलके साथ खाना चाहिए।

३. रौद्ररसः - २ बजे पानके रसमें शहद मिलाकर सेवन करना चाहिए।

४. कैसरगुग्गुलु—५ बजे महारास्नादि पाचन क्वाथके साथ सेवन करना चाहिए।

५. महातालेश्वर रसः—८ बजेसे सोमराजीके बीजका चूर्ण मधुके साथ सेवन करना चाहिए।

अर्बुद बढ़कर एक बार ही गर्दन और गले तक पहुंचकर बहुत ही सूजनयुक्त हो जाता है। ऐसी दशामें नमक और जल बन्द करके, पर्पटी के सम्पूर्ण नियमोंका पालन करे और रस पर्पटी एवं ताम्र पर्पटीका सेवन करे तो पूर्ण लाभ होता है। इस समय कैन्सरके अर्बुदों की कठिन पीड़ा निवारण करनेके लिए कुब्जकुठार तैलकी मालिससे रोगी भयंकर वेदनासे मुक्ति पाता है।

कुब्जकुठार तैल बनानेकी विधिः—कडुआ तेल ४ सेर।

काढ़ेकी वस्तुएँ:—कुचिला १ सेर, धतूरेका बीज १ सेर, मीठा विष १ सेर, दोख्ता तंबाकूका पत्ता आधा सेर, काली मिर्च आधा सेर, जल ६४ सेर—शेष १६ सेर काढ़ा बनानेपर बचना चाहिए।

स्नेहार्थ—धतूरेके पत्तेका रस २ सेर, आकन्द के पत्तेका रस २ सेर।

कल्क करनेके लिये :—(१) रसून, (२) स्वेत धुना, (३) मुसब्बर, (४) मनः शिला, (५) मल्लातक, (६) सेंधा नमक, (७) आलकुशी बीज, (८) निसिन्दा पत्र, (९) कपूर, (१०) अफीम, (११) गांजा, (१२) भांग, (१३) सोंठ, (१४) नागबला, (१५) गुडची, (१६) गनियारी, इन सबको एक-एक छटांक लेकर, १ सेर जलमें मिलाकर, मलकर, १६ सेर काढ़ेके जलमें डालकर पकाना होगा। यह तैल पकाकर प्रयोग करनेसे कैंसर की दुर्जय पीड़ा बन्द हो जाती है।

किसी भी निर्दिष्ट समयमें उत्पन्न पीड़ा मिटानेके लिये निम्नलिखित रसोनादि काढ़ा फायदा करता है। विशेष करके जहाँ आमवातकी शिकायत होती है, वहां यह काफी लाभ पहुंचाता है।

(१) रसोन ११ आना भर, सोंठ ११ आना भर, निसिन्दा पत्र ११ आना भर जल आधा सेर, शेषआधा पाव प्रातः लेना चाहिए। निम्नलिखित वेदनानाशक गोली अर्बुदों की दुर्निवार वेदनाके लिये लाभकारी है। (१) अमृत, (२) धतूर बीज, (३) रसोन, (४) कुचिला, (५) भांग, (६) अफीम, (७) पारद, (८) गन्धक, (९) हींग, (१०) मनःशीला, (११) निषिन्दा पत्र, (१२) आलकुशी बीज, (१३) भाँगका बीज, (१४) मल्लातक मज्जार (१५) सोंठ, सभी बराबर लेकर गांजा के भींगे

हुए पानीसे मलकर २ रत्तीके बराबर गोली बनानी चाहिए। अनुपान गरम जल।

अर्बुदोंकी दारुण वृद्धि की दशामें निम्नलिखित रूपसे औषधि प्रयोग करनेपर पूर्ण लाभ होता है।

१. महाकालेश्वर रसः—प्रातः ७ बजे। अनुपान—आम, अदरकके रस के साथ शहद मिलाकर।

२. सोमनाथताम्रः—समय १० बजे। अदरक के रसमें शहद मिलाकर।

३. खदिरारिष्टः—मात्रा ४ ड्राम। दोनों समय भोजनके बाद बराबर ठंडा जल मिलाकर सेवन करना चाहिए।

४. शीतारि रसः—समय ४ बजे गर्म गायके घीके साथ और काली मिर्चका चूर्ण मिलाकर सेवन करना चाहिए। पंचतिक्तघृतगुग्गुलु रात ७ बजे गर्म दूधके साथ सेवन करना चाहिए।

पथ्यः—अधिक मात्रामें गायका घी और दूध सेवन करे। गायके घी में भोजन बनाकर सेवन करें। अर्बुदोंके क्षय या गलनेकी दशामें निम्न-लिखित रूपसे प्रयोग करना चाहिए।

१. श्वेताभ्रपुटदग्ध—हरिताल, आम अदरकके रसमें मधुके साथ सेवन करें।

२. उदयभास्कर रसः—अदरकके रस और मधुके साथ। तत्पश्चात् मध्यम मंजिष्ठादि पाचनका सेवन करें।

३. खदिरारिष्ट—दोनों समय भोजनके बाद, शीतल जलके साथ सेवन करना चाहिए।

४ गलितकुष्ठारिरसः—सोमराजी बीजका चूर्णको मधुके साथ सेवन करे।

५. पंचतिक्तघृतगुग्गुलुः—संध्याके ७ बजे गरम दूधके साथ सेवन करे। पथ्यः—गायके घी और दूध अधिक मात्रामें सेवन करे।

विशेष द्रष्टव्यः—इन सभी औषधियोंकी विधि हमारे लिखे ग्रन्थ 'रस चिकित्सा' के दूसरे और तीसरे खण्डमें देखना चाहिए।

रक्तस्रावयुक्त गलनेवाले अर्बुदों पर निम्नलिखित रूपसे औषधि प्रयोग करना चाहिए।

१. वंशपत्रहरतालभस्मः—($\frac{1}{8}$ रत्ती की मात्रा) घी और मधु के साथ सेव्य है। पश्चात् बासक पत्तेका रस २ तोला और मधु २ तोला सेवन करना चाहिए।

२. शोधितहिंगुलः—(२ रत्ती मात्रा) पालताके रसमें मधु और चीनी मिलाकर सेवन करना चाहिए।

३. द्राक्षारिष्टः—दोनों समय भोजनके बाद ठंडे जलके साथ।

४. प्रवालयोग :—आयापानके रसमें मधु मिलाकर तीसरे पहर सेवन करे।

५. महातिक्तघृतः—संध्या समय कुछ गर्म दुग्धके साथ।

पथ्यः—गर्म गायका घी, मिश्रित दूध और मीठे फलोंका रस।

सप्तम अध्याय

सर्व्वरोगविशेषज्ञः सर्व्वौषधविशेषवित्।
भिषक् सर्व्वामयान् हन्ति न च मोहं नियच्छति ॥

प्रयोगः समयेद्व्याधिं यो ह्न्यमन्यमुदीरयेत्।
नासो विशुद्धः शुद्धस्तु समयेद् यो न कोपयेत्॥"

इति चरके।

गलेके कैन्सरकी उपव्याधियोंकी चिकित्सा :—इस रोगमें साधारणतः निम्नलिखित उपव्याधियाँ पाई जाती हैं।

(१) मांस वृद्धि, (२) स्वर भंग, (३) वेदना, (४) लारका गिरना, (५) ज्वर, (६) रक्तस्राव, (७) वमन, (८) अरुचि, (९) श्वांस, (१०) शुष्कता, (११) कोष्ठबद्धता, (१२) पीव, (१३) सूजन, (१४) अतिसार, (१५) आक्षेप, (१६) घावमें कीड़ोंका पड़ना, (१७) वाक्यस्तम्भन, (१८) निद्राहीनता, (१९) गलेका बन्द होना, (२०) प्रलाप।

मांस वृद्धिकी चिकित्सा:—कैन्सरकी मांस वृद्धिके लिये निम्नलिखित औषधियोंका प्रयोग करना चाहिए।

१. ताम्रप्रयोगः—प्रातः ७ बजे दो रत्तीकी मात्रा में। (रस और गंधकके योग द्वारा भस्मीकृत ताम्र) अदरकके रस और शहदके साथ सेवन करना चाहिए।

२. जतुप्रयोगः—१० बजे १ आना भर की मात्रामें स्वर्ण या लौह या ताम्र या शिलाजीत भस्म, घृत और मधुके साथ मिलाकर कुठ और गोखरूके काढ़ेके साथ सेवन करना चाहिए।

३. खदिरारिष्टः—दोनों समय भोजनके बाद बराबर का ठंडा जल मिलाकर पीना चाहिए। मात्रा—१ छटांक।

४. रौद्ररसः—समय ४ बजे सफेद पुनर्नवाके रस और शहदके साथ सेवन करें।

५. अमृतभल्लातकघृतः—रात ७ बजे दूध और चीनीके साथ मिलाकर खावें।

पथ्यः—घृत द्वारा पका अन्न, व्यंजनादि और प्रचुर मात्रामें दूध सेवन करें।

निषिद्धः—मछली, मांस, शाक और अम्ल पदार्थ।

द्वितीय प्रकारकी व्यवस्थाः—रोगकी दशामें वृद्धि होनेसे निम्नलिखित रूपसे औषधियोंके सेवन करने पर लाभ होता है।

१. कुष्ठान्त पर्पटीः—ताम्रपर्पटी या लौहपर्पटीके सेवनके नियमानुकूल सेवन करनेसे मांस वृद्धि बन्द हो जाती है।

तृतीय व्यवस्था पत्र :—पर्पटी सेवन यदि संभव न हो तो सालसारादिके काढ़ेके साथ कान्त लौह भस्म २ रत्तीकी मात्रामें सेवन करनेसे अच्छा लाभ होता है।

२ स्वर भंग चिकित्सा

मांस वृद्धिके कारण स्वरभंग

१. नं० व्यवस्था पत्र :—(१) अमृतीकृत ताम्रभस्म (रस और भस्मके योग द्वारा भस्म) प्रातः अदरकके रस और मधु के साथ।

२. त्र्यम्बकाभ्ररसः—१० बजे सोंठके चूर्ण चीनी और शहदके साथ सेवन करना चाहिए।

३. द्राक्षारिष्टः—दोनों समय आहारके बाद शीतल जलसे सेवन करना चाहिए।

४. निदिग्धकावलेहः—४ बजे गर्म दूध के साथ सेवन करें।

(भाव प्रकाश से)

दर्दके दूर करनेमें कठिनाई होती है। आयुर्वेदमें सब तरहसे वेदनासे मुक्ति पानेके लिये ताम्रपर्पटी एक मात्र महौषधि है। शरीरके किसी भी स्थान में किसी भी तरहकी पीड़ा क्यों न हो, किन्तु पर्पटी नियमानुसार सेवन करनेसे, क्रमशः मात्रामें बढ़ाते हुए ताम्रपर्पटीके सेवन करनेसे निश्चय ही दर्द कम हो जाता है।

स्वर्णपर्पटी, विजयपर्पटी नहीं रहनेसे भी रसपर्पटीके द्वारा उक्त फल प्राप्त होता है। रसपर्पटीके प्रयोगसे यदि अधिक शुष्कता महसूस हो, तो घी और मधुके साथ ½ रत्ती स्वर्ण भस्मके सेवनसे बढ़ी हुई वायुका प्रकोप कम हो जाता है यह और रोगीको सहायता पहुंचाता है।

कैन्सरकी कठिन वेदना यदि डीप—ऐक्सरे एवं रेडियमके प्रयोगसे अच्छी न हो, तो ताम्र पर्पटीके सेवनसे से यह दूर हो जाती है। पर्पटी सेवनसे दूर न होनेपर निम्नलिखित औषधिका प्रयोग करना चाहिए।

(१) ताम्रभस्म २ रत्ती प्रातः ७ बजे। अदरकका रस २ तोला, नीबूका रस १ तोला, शहद आधा तोला, विशुद्ध घी में तला हुआ हींग १ रत्ती, सेवन करना चाहिए।

(२) वातगजेन्द्रसिंह, १० बजे। रसौनादि लहसून, सोंठ, निषिन्दा कसायके साथ सेवन करना चाहिए।

(३) दशमूलारिष्ट या अश्वगन्धारिष्ट। दोनों समय भोजनके बाद बराबर मात्रामें ठंढे पानीके साथ सेवन करना चाहिए। मात्रा—१ कच्चा।

(४) शीतारिरस, ४ बजे। गोलमिर्च चूर्ण एक आना, गर्म्म गायके घी के साथ सेवन करना चाहिए।

१. वेदनाके स्थानपर कुब्जकुठार तेलकी मालिश करनेसे कठिनतम वेदना दूर होती है।

२. वेदनाके स्थानपर प्रलेप :—मीठा विप, लांगली विप, करवीं मूल, आकन्द मूल, घुस्तर मूल, विच्छूटी मूल, निषिन्दा पत्र, आलकुशी बीज, एरन्ड बीज, श्वेत सर्सप, क्चितील, तीसी, श्वेत पुर्न्नवा, सजना बीज, सन बीज, मूली बीज, सैन्धक लवण, लहसून, मुसब्बर, सारजीखार, गोधूम, आतप चावल, अर्जुन छाल, एरण्ड मूल, मनः शिला, सिद्धि पत्र, भल्लातक, सोंठ—इन सब द्रव्योंको एकत्र कर आम्ल दधि (खट्टी दहि) के साथ पीसकर अर्बुदके ऊपर लेप करनेसे अर्बुदकी वेदना कम हो जाती है।

३. कपडेकी पोटली बांधकर भांगके पत्तेके साथ सेंक देनेसे अर्बुदकी कठिन वेदना दूर होती है।

४. बृहत्-सैन्धवाद्य तैल या कुब्जप्रसारिणी तैल या बहुत पुराना घी मालिश करनेसे तथा सैन्धक लवण और छिलकावाली उड़द दालकी पोटली बांधकर, काठके कोयलेकी तेज आगपर सेंक देनेसे अर्बुदकी तीव्र वेदना दूर होकर रहती है।

५. पूर्व कथित वेदना नाशक गोली थोड़ा गरम पानीके साथ सेवन करनेसे वेदना दूर होकर ही रहती है।

४ लालास्राव

लालास्राव कैन्सर रोगोंके बीचकी अवस्थामें एक कठिन उपसर्ग है। लालास्राव शुरु होनेपर मानना होगा कि रोग बहुत दूर तक आगे बढ़ गया है और रोगीके शरीरसे सार वस्तु लाल आकारसे निकल कर, रोगीको क्रमशः दुर्बल बना देता है। लालास्रावके कुछ दिन हो जानेके बाद, और

रोगीके शरीरमें घाव उत्पन्न हो जानेपर, शरीर अत्यन्त शुष्क हो जाता है।

निम्नलिखित व्यवस्थाका अवलम्बन करनेपर लालास्रावका कठिन रूप दूर होकर ही रहना है।

१. हरिताल भस्मः—$\frac{१}{१६}$ रत्तीकी मात्रामें, गव्य घृत आधा तोलाके साथ। पथ्य;—गव्य घृत आधा पाव से लेकर १ पाव, एवं गरम दूध १ सेर प्रातःकाल सेवन करना होगा। इसके अतिरिक्त गव्य घृत द्वारा अन्य व्यंजनादि सेवन करने योग्य है। सुमधुर पका फलका रस सेवनीय है। गलेमें अर्बुदके बढ़ जाने पर खाते समय निगलनेमे कष्ट होनेसे गरम गाय दूधके साथ सेवन करना चाहिए।

२. द्राक्षारिष्टः—दोनों समय भोजनके बाद शीतल जलके साथ। मात्रा—१ कच्चा।

३. मौक्तिकयोगः—संध्या समय ४ बजे साधारण गरम दूधके साथ सेवन करना चाहिए। प्रस्तुत विधि यथाः—प्रवाल, मुक्ता, शख, शुक्ति, कड़ी, मकरध्वज,—प्रत्येक बराबर भागमें लेकर ७ दिन अम्ल दहि में मिलाकर ६ रत्ती की गोली बना लेनी चाहिए।

४. नारदीयलक्ष्मीविलास रसः—रात्रिके ७ बजे साधारण गरम दूधके साथ। उल्लिखित व्यवस्थाका अवलम्बन करनेसे लाल बन्द होकर ही रहता है। जीवनशक्ति हीन होने पर लालास्रावकी मात्रामें वृद्धि होने लगती है। बृहचन्द्रोदयमकरध्वज, बृहच्छ्रङ्गाराभ्र रस, बसंततिलकरस और बसतकूसूमाकररसके सेवनसे, अनेक क्षेत्रमे, लालास्राव बन्द होता है।

५. गलेके कैन्सरमें ज्वरकी चिकित्साः—कैन्सर रोगकी मध्य अवस्थामें ज्वर आने लगता है। उसके बाद ज्वर नही होता, ऐसी कोई बात

नहीं है। किन्तु, कैन्सरके क्रमशः वृद्धिकी अवस्थामें, क्षय रोगकी तरह ज्वर आने लगता है। किसी-किसी क्षेत्रमें रोगीको बीच बीचमें कुछ दिन ज्वर से कष्ट मिलने लगता है। इसके बाद ज्वर छूट जाता है। जिस तरह सब रोगोंकी वृद्धि देखी जाती है, उसी तरह प्रत्येक क्षेत्रमें, प्रत्येक बार ज्वरसे पीड़ित होनेपर, रोगी क्रमशः दुर्बल होने लगता है। इस तरह कुछ दिनके अन्तरसे ज्वर कई बार आनेपर, रोगीको यक्ष्मा रोगकी तरह प्रातः-सायंकाल ज्वर आने लगता है, एवं कुछ दिन रहकर रात्रिके समय छोड़ देता है। किसी-किसी क्षेत्रमें अविच्छेदीय ज्वर होते देखा जाता है। ऐसी अवस्था सब क्षेत्रोंमें नहीं होती। गलेके कैन्सरमें जो ज्वर होता है, उसमें अधिकांश क्षेत्रमें कफ की अधिकता देखी जाती है। कफके कम जानेपर साधारणतः ज्वर छूट जाता है। रोगके बढ़नेकी हालतमें, दोष अधिक होनेपर ज्वर होने लगता है। रोगके खूब अधिक दूरी तक बढ जानेपर रोगीके शरीरमें जो क्षय उत्पन्न हो जाता है, बहुत समय उसीसे भी ज्वर होने लगता है। इस स्थितिमें क्षय पूरा न होनेपर, ज्वर छूटता नहीं।

कैन्सर रोगकी प्रथमावस्थामें जो ज्वर होता है, उसे देखकर, अवस्था समझकर, अर्थात् वातश्लेष्मज है या पित्त श्लेष्मज, यह निर्धारित कर, उसके अनुसार औषधिका प्रयोग करनेसे ज्वर छूट जाता है।

गलेके कैन्सर की प्रथमावस्थामें कभी-कभी रोगी इन्फ्लुएन्जा अर्थात् वातश्लेष्मज ज्वरसे आक्रान्त होनेपर, निम्नलिखित व्यवस्था करनेसे वह मुक्ति पा सकता है।

१. मृत्युञ्जयरसः—प्रातः काल ७ बजे आदीके रस और शहदके साथ सेवन करना चाहिए।

२. वात-गजांकुश :—१० बजे, एरण्डमूल रस और मधुके साथ सेवन करना चाहिए।

३. त्रिपुरारिरस :—१ बजे, आदीके रस और मधुके साथ सेवन करना चाहिए।

४. महालक्ष्मीविलास रस :—४ बजे, आदी और पानके रस और मधुके साथ सेवन करना चाहिए।

रोगीको पित्त श्लेष्मज ज्वर होनेपर

१. ज्वरांकुश :—प्रातःकाल ७ बजे, आदीके रस और मधुके साथ सेवन करना चाहिए।

२. हिंगुलेश्वररस :—१० बजे, परवलके पत्ते का रस और मधुके साथ मिलाकर सेवन करना चाहिए।

३. त्रिपुरारिरस :—सन्ध्याके ४ बजे, आदीके रस और मधुके साथ।

४. महालक्ष्मीविलास रस :—सन्ध्या समय ७ बजे, आदीके रस, पानके रस और मधुके साथ सेवन करना चाहिए।

गलेके कैन्सर रोगकी मध्य अवस्थामें ज्वर होनेपर निम्नलिखित व्यवस्थाका पालन करनेपर ज्वर अच्छा हो जाता है।

१. श्वेताभ्रपुटदग्ध हरिताल:—प्रातःकाल ७ बजे। मात्रा—२ रत्ती। आदीके रस और मधुके साथ सेवन करना चाहिए।

२. शोधित हिंगुल :—१० बजे। २ रत्तीकी मात्रामें परवलके पत्ते का रस और मधुके साथ सेवनीय है।

३. मौक्तिक योग :—१ बजे, आदीके रस और मधुके साथ।

४. सिद्धमकरध्वज :—४ बजे, $\frac{१}{४}$ रत्तीकी मात्रामें, तुलसीके पत्तेका रस और मधुके साथ।

रोगकी शेष अवस्थामें हमेशा ज्वर रहने पर निम्नलिखित व्यवस्थाका अवलम्बन करना चाहिए।

१. हरिताल भस्म :—$\frac{१}{१६}$ रत्ती, प्रातःकाल ७ बजे १० बूंद गायके घी के साथ सेवन करना चाहिए।

२. राजमृगाङ्क :—२ रत्ती। १० बजे घी और गोलमरीच चूर्ण १ आना भर के साथ।

३. दशमूलारिष्ट :— दोनों समय भोजन के बाद बराबर मात्रा में शीतल जल के साथ। मात्रा—४ ड्राम।

४. बृहद्द्राक्षादि घृत :—सन्ध्याके ४ बजे, अल्प गर्म दुधके साथ।

५. गले के कैन्सर की वमन-चिकित्सा :—

१. केवल अमृतीकृत ताम्र, १ रत्तीसे लेकर २ रत्ती, आदीके रस और मधुके साथ सेवन करने से, सब प्रकारके वमनका निवारण होता है।

२. गुरुच के क्वाथ के साथ वमनामृत रस, सुधानिधि रस, वृषध्वज रस के सेवन से वमन का निवारण होता है। कुष्ठरोगाधिकारोक्त अमृतादि कषाय वमनके निवारण में बड़ा उपकारी है।

६. रक्तस्राव की चिकित्सा :—

निम्नलिखित व्यवस्थापत्र अनुयायी औषधि सेवन करने से गले का कैन्सर अन्न या अर्बुदसे रक्तस्राव बन्द होता है।

१. शोधित हिंगुल :—२ रत्ती, प्रातःकाल ७ बजे परवलके पत्ते का रस, शक्कर और मधु के साथ सेवन करना चाहिए।

२. बहुपुटीत लौहभस्म :—१ बजे। वासक पत्तों के रस एवं मधु के साथ। (बहुपुटित वारितर लौहभस्म)

३. हरितालभस्म :—४ बजे १० बूंद गाय घी के साथ। उसके बाद गांदा फूल के पत्तोके रस मधु के साथ सेवनीय।

४. रक्त चन्दन १ तोला, मौलेठी १ तोला और जल आधा सेर, एक साथ पका कर शेष आधा पाव उतार कर पीना।

५. गलेके बाहर अर्बुदसे पिचकारीके मुताबिक रक्तस्राव होनेपर केले के जड़ के रस से सिचन करने पर रक्तस्राव बन्द होता है।

बाहरका अर्बुद में व्रनोत्पत्ति होकर घाव होनेपर एवं उससे रक्तस्राव होनेपर निम्न-लिखित कषाय के द्वारा धोने से रक्तस्राव बन्द होता है।

(क) हर्रा, आमलकी, बहेड़ा, नीम का पत्ता, बेर का पत्ता, सोंदाल का पत्ता, आम की छाल, जाम की छाल, बावलाकी छाल, वकुल का छाल, बड़ का छाल, अश्वत्थ छाल, पाकुड छाल, डूमर छाल, आकन्दमूल, धुस्तूरमूल, कदम्ब छाल, करवीर मूल, कुड़ची छाल और अर्जुन छाल, इन सबको १-१ तोला की मात्रामें लेकर ५ सेर जलमें पकाकर, १½ सेर हो जाने पर, उसे उतार कर, पीड़ित स्थान को धोनेसे व्रण से रक्तस्राव बन्द होता है और व्रण विशोधित होता है।

(ख) आमलकी (आंवला), हर्रा, बहेड़ा, नीम की पत्ती, हरिद्रा, हीराकस, रसांजन, खूनखराप, दारुहरिद्रा—इन सबको, प्रत्येक का २ तोला लेकर कुटके ८ सेर पानीमें पकाकर, दो सेर रह जानेपर उतारके उसी जलके द्वारा घाववाले स्थान को धोने से, अर्बुद का रक्तस्राव बन्द हो जाता है, एवं उसके द्वारा घावकी पचन क्रिया निवारित होती है।

६ प्रवाल भस्म—कुकुरौंधाका रस अथवा विशल्यकरणीका रस और मधु के साथ सेवन करने से गले के भीतर का रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

७. डूमर पत्ते के रस से अवलेह तैयार कर शीतल जल के साथ सेवन करने से रक्तस्राव का निवारण होता है।

उक्त अवलेह अर्बुद के बाहरी हिस्से के ऊपर प्रलेप करने से रक्तस्राव बन्द होता है।

८. गलेके कैन्सरमें अरुचिकी चिकित्सा :—

(१) आदित्य रस :—आदी के रस और मधु के साथ। यह सब प्रकार की अरुचि को विनष्ट कर देता है।

(२) आदी के रस और गर्म गाय के घी को मिलाकर सेवन करने से अरुचि नष्ट हो जाती है।

(३) पंचतिक्तघृतगुग्गुल :—गर्म दुग्ध के साथ सेवन करनेसे अरुचि नष्ट हो जाती है।

९. गलेके कैन्सरमें श्वास उपसर्गकी चिकित्सा :—

(१) हरिताल भस्म $\frac{1}{16}$ रत्ती, गर्म गव्य घृत १ तोला अथवा आदीका रस एवं गव्य घृत वा गव्य घृत एवं गर्म दुग्धके साथ सेवन करना चाहिए।

इस औषधि के सेवन करने के बाद रोगी को शीतल जलसे स्नान कराना चाहिए, एवं कई एक बार साधारण गर्म दुधके साथ गव्य घृत सेवन कराना चाहिए।

(२) गला बन्द होकर श्वास लेने से कष्ट होनेपर निम्नलिखित द्रव्य के साथ गर्म जल का वाष्प लेने-से श्वासका कष्ट दूर हो जाता है।

गोल मिर्च चूर्ण १ तोला, हरिद्रा चूर्ण १ तोला, कर्पूर १ तोला,

८ सेर जलवाले बर्तन में खौलाकर, कागज की नली उसमें डालकर भाप लेने से गला साफ हो जाता है। वाक-यंत्र की सहायता से भाप लेनेसे उपकार होता है।

३. आशशेवड़ाके फल का चूर्ण १ भाग, गोलमिर्च चूर्ण १ भाग, गाय का घी १ भाग, तम्बाकू की तरह सजाकर धूम्रपान करने से उपकार होता है।

४. निम्न-लिखित "मुक्ताद्य चूर्ण" नामक औषधि गले के कैन्सर की श्वासोपसर्ग के लिये एक महान औषधि है। इसे मधु या गव्य घृत के साथ मर्द्दन कर, साधारण गर्म दुग्ध के साथ मिश्रित कर सेवन करना चाहिए। इसके बावजूद गर्म जल के साथ भी सेवन करने से काम चल सकता है।

मुक्ताद्य चूर्णकी प्रस्तुत विधिः—मुक्ता, प्रवाल, वेदुर्यमणि, शख, स्फटिक, रसांजन, ससारकांचमणि (दृढ़ कॉंच), गन्धक, आकन्द मूल, छोटी लायची, सैन्धव, सोवर्च लवण, इन सबका चूर्ण एवं जारित ताम्र, लौह एव रोप्य चूर्ण, कट्ठ लल्क फूल, केसर, जायफल, शनबीज एवं आपांबीज, इन सबको समान भागमें लेकर मिश्रित कर लेना चाहिए। यही मिश्रित चूर्ण सब जगह मुक्ताद्य चूर्णके नामसे विख्यात है।

१० गलेके कैन्सरके शोष या शुष्कता की चिकित्सा :—कैन्सर रोगकी बढ़ती अवस्थामें शोष होने लगता है। घावकी असह्य पीडा, रक्त-स्राव, भोजन ग्रहण करनेकी असमर्थता, लालास्राव प्रभृति बहुत तरहके कारणसे शोषकी उत्पत्ति होता है।

इस अवस्थामें स्निग्ध, दीपन, स्वादु, शीतल, अम्ल यूष और मांस रस द्वारा चिकित्सा करनेका प्रयोजन है।

व्यवस्था पत्र

१ द्राक्षादि घृतः—साधारण गर्म दुध के साथ ७ वजे।

२. शूलहरण योग—साधारण गर्म दुधके साथ १० वजे।

३. द्राक्षारिष्टः—दोनों समय भोजनके बाद बराबर मात्रामें शीतल जलके साथ १२ वजे और रात्रिके ९ वजे सेवन करना चाहिए।

४. वसन्तमालती रसः—घृत और शहदके साथ संन्ध्याके ४ वजे।

५. बृहतअश्वगन्धा तैलः—सब अंगमें मालिश करना चाहिए।

२ नं० व्यवस्था पत्र

१. वसन्तकुसुमाकर रसः—घृत और मधु के साथ प्रातः ७ वजे।

२. अश्वगन्धारिष्टः—दोनों समय भोजनके बाद शीतल जलके साथ।

३. बृहत्‌शतावरी घृतः—साधारण गर्म दुधके साथ ५ वजे।

४. पल्लवसारतैलः—सब अगमें मालिश करना चाहिए।

पथ्यः—एक माह लगातार घी द्वारा पका हुआ मांसका झोल (रसा) व्यवहार करना चाहिए इसके अलावा घृत, दुध, माखन सेवन करना चाहिए।

११ कैन्सरकी कोष्ठवद्धताकी चिकित्सा

(क). रोगी अधिक दुर्वल न होनेपर निम्नलिखित पाचन प्रयोग करनेपर कोष्ठवद्धता दूर होती है।

आमलकी, हर्रा, वहेड़ा, त्रिवि , दन्ती, कुटकी, सोंठ, सोन्दाल, सोनामुखी, एरण्डमूल, मुनक्का—प्रत्येक ३ आनेके वरावर लेकर आधा सेर

जलमें खौलाकर, आध पाव रह जानेसे, छानकर सेवन करनेसे रोगीकी कोष्ठबद्धता दूर होती है।

(ख) रोगीका कोष्ठ अपेक्षाकृत मृदु होनेपर निम्नलिखित जुलाब हितकर है।

सोनामुखी आधा तोला, हरीतकी १ तोला और मुनक्का आधा तोला, आधा सेर जलमें खौलाकर, आधा पाव रह जानेपर सेवन करना चाहिए।

(ग) रोगकी प्रथमावस्थामें रोगीका स्वास्थ्य अपेक्षाकृत अच्छा रहनेपर देहकी शुद्धताके लिये, जुलाबकी आवश्यकता होनेपर रसेन्द्रसार सग्रहका विरेचन अधिकारमें लिखा हुआ "सर्वाङ्गसुन्दर रस" शक्कर घुला हुआ पानीके साथ सेवन करना चाहिए।

कोष्ठ अत्यन्त कुटिल होनेपर एवं किसी-किसी स्थानमें वेदनासे-निवृत्ति पानेके लिये विरेचन की आवश्यकता होनेपर "इच्छाभेदी रस" व्यवहार करना चाहिए। यह आवश्यक है कि जुलाब देते समय हमेशा रोगीके शारीरिक स्थितिका ध्यान रखें। रोगीकी शक्ति और मांसका ह्रास होनेपर तीव्र जुलाब नहीं देना चाहिए। रोगीका शरीर अत्यन्त दुर्बल होने पर भी, यदि दस्त करानेकी आवश्यकता पड़े तो उसे मुनक्का सिद्ध दुग्ध दिया जा सकता है। इस अवस्थामें संतरा रस, अनारस का रस, अंगूरका रस, सेव, खजूर औंटाकर विरेचन (दस्त) होनेके लिये देना उचित है। रोगीके कोष्ठ में आम संचित रहनेपर गर्म जल या दुधके साथ एरण्ड तेल (रेड़ीका तैल) आधा औंस की मात्रामें देना उचित है।

चिकित्सा क्षेत्रमें जिस जिस स्थान पर ताम्र भस्म का व्यवहार किया जाता है, उस उस स्थानपर प्रायः जुलाब लेनेकी आवश्यकता नहीं होती।

यदि ताम्रके प्रयोगसे कोष्ठबद्धता रह जाती है, तो ऊपर लिखी जुलाबें निर्भय होकर व्यवहार की जा सकती है।

१२. गलेके कैन्सरमें घाव होनेपर पीव स्रावकी चिकित्सा:—बाहरके घावसे पीव बहते वक्त निम्नलिखित क्वाथ द्वारा घाव धोनेपर पीवस्राव का निवारण होता है।

१ आम छाल, जामुन छाल, बबुल छाल, बकुल छाल, बड़ गाछ की छाल, अश्वत्थ छाल, यज्ञ डुमरकी छाल, नीम छाल, बेरगाछकी छाल, कदम्ब छाल, कुड़ची छाल, कड़वी छाल, आकन्द छाल, धतूरेकी जड़, रसांजन, सून खराप, हीराकस, फिटकिरी, गेरु मिट्टी, आमलकी, हरीतकी, बहेड़ा, रक्तचन्दन, श्वेतचन्दन, एरण्डमूल, असरुद की छाल, नारियलका जड़, अनारका जड़ या खोसा, प्रत्येकका १ तोला वजनमें लेकर, ८ सेर पानीमें खौलाकर, २ सेर रहनेपर घावके स्थानको धोनेसे कैन्सरके बाहरके घावके पीवका निवारण हो जाता है।

२. व्रणराक्षस तैलके लगानेसे भी शीघ्र उपकार होने लगता है।

३. घावमें रसकी वृद्धि अति मात्रामें हो जानेपर निम्नलिखित व्यवस्था पत्रके अनुसार औषधि सेवन करनी चाहिए।

१ ताम्र भस्मः—आदीके रस और मधुके साथ सेव्य है।

२. खदिरारिष्टः—दोनों समय भोजनके बाद शीतल जलके साथ सेव्य है।

३ पंचतिक्तघृतगुग्गुल :—मात्रा ¼ तोला, संध्याके ४ बजे, साधारण गर्म दुधके साथ सेवन करना चाहिए।

४ महाभल्लातक :—सन्ध्याके ७ बजे, चीनीके शर्बतके साथ सेवन

करना चाहिए। इसके सिवाय शाखोट तैल, कड़वीराय तैल, महासिन्दुराय तैल, कृष्णसर्पतैल, कैन्सरके घावमें प्रयोग करनेपर, पीवका बहना बन्द होता है।

१३. कैन्सर की शोथ चिकित्सा:—कैन्सर रोगसे, कुछ दिन भोगनेपर रोगीको शोथ उत्पन्न होता है। साधारणतः यकृत, हृद-पिंड और वृक्ककी दुर्बलता से शोथ उत्पन्न होती है। सब स्थानोंमें एक साथ ही तीन यन्त्रोंमें दोषोंकी उत्पत्ति नहीं होती है। मानव शरीरमें उल्लिखित तीन यंत्रोंमें से यदि एक भी खराब हो जाय, तो शोथका होना अवश्यम्भावी हैं। तीनों खराब हो जानेपर तो कोई बात ही नहीं।

शोथ एक कठिन और भयंकर उपसर्ग है। यह प्रायः अमंगलकारी है इसलिए शोथ उत्पन्न होते ही उचित चिकित्सा करनी चाहिए।

गलेका कैन्सर किन किन व्यक्तियोंको हो सकता है ?

१. चिकित्साके प्रसंगमें हमने प्रत्यक्ष देखा है कि जो लोग कम उम्रमें ही आमवात (गाउट रिउमेटिज्म और आर्थराइटिज) से भोगते रहते हैं, भविष्यमें वे ही लोग प्रायः प्रमेहके शिकार हो जाते हैं। प्रमेह होनेपर मूत्रमें 'एलबुमिन' हो जाता है। एलबूमिन सयुक्त प्रमेह, अर्थात् लालामेह, भविष्यमें क्षय रोगका ही रूप धारण कर लेता है। जैसे, कैन्सर, टी० बी० गैंग्रीन प्रभृति अनेक प्रकारके दुःसाध्य रोगोंके आविर्भाव की सूचना दे देता है।

२. जो लोग पहले अजीर्ण रोगग्रस्त हैं, उन लोगोंको भविष्यमें आमवात हो जाता है, एव उसके होनेके बाद स्रोत बन्द होकर दुःसाध्य अर्बुदकी सृष्टि हो जाती है।

३. जिस व्यक्तिको पहले प्रबल कफ अधिक रहना है, एवं क्रमशः जीवनशक्ति क्षीण होने लगती है, उसको कुछ ही दिन के बाद, कफके साथ आम संयुक्त होनेपर स्रोत विबद्ध होकर आम कफज अर्बुद हो जाता है। यही अर्बुद कैन्सर में परिणत हो जाता है।

४. अनेक स्थानोंपर बहिरागत विष अर्थात् सिफिलिस और गनौरिया का विष शरीरमें बहुत दिन रहनेपर अन्तमें कठिन अर्बुद की सृष्टि कर देता है। बादमें यही अर्बुद कैन्सरमें परिवर्तित हो जाता है।

५. जो लोग किडनी अर्थात् वृक्ककी विकारके कारण में बहुमूत्र रोग द्वारा बहुत दिनसे भोगते रहते हैं, उन लोगोंके गलेमें कैन्सर रोग होते हुए देखा गया है।

६. जिन लोगोंके दांतके मसूड़े, टान्सिल, छोटा जीव, तालू आदि फूलते हों और गलेके नीचे की ग्रन्थियाँ (ग्लैण्ड) आदि फूल जाता हो, उन लोगोंको भी अन्तिम उम्रमें गलेका कैन्सर रोग होते देखा जाता है। यह अनेक जगह देखा गया है कि जिस क्षेत्रमें मां, बापको कोढकी बीमारी हुई हो और उनके बच्चे अगर इस रोगके शिकार नहीं भी हुए हों, तो उन्हें कैन्सर रोग हो जाता है। इसके बावजूद यह भी देखा गया है कि एक अंगमें कोढ है, और दूसरे अंगमें कैन्सर हुआ है।

सब तरहकी शोथ दूर करनेके लिये रसपर्पटी महौषधि है। रोगी पर्पटी सेवनमें असमर्थ होनेपर पुनर्नवाष्टक पाचन, पुनर्नवाद्यरिष्ट, शोथोदरारि लौह, पंचामृतलौह, पुनर्नवामण्डूर, पाण्डुपंचाननरस, प्रभृति औषधि विवेचनापूर्वक प्रयोग करनी चाहिए।

वृक्ककी शिकायत रहनेपर पुनर्नवाष्टक पाचन, सारिवाद्यारिष्ट, प्रमेह-मिहिर तैलकी मालिश, बृहत शुष्कमूलादि तैल, बृहत् शतावरीघृत, बृहत् छागलाद्य घृत प्रभृति औषधियां प्रयोग करने योग्य है।

हृतपिण्डमें दोष होनेसे पुनर्नवाद्यरिष्ट, अर्जुनघृत, प्रभाकरगोली, हृदयार्णवरस, दशमूल तैल आदिके प्रयोगसे विशेष लाभ होता है। यकृतके विकारके कारण शोथ उत्पन्न होनेसे पंचामृत लौह, तालमखना (कोकिलाक्ष) का रस और शहदके साथ सेवन करना चाहिए तथा इसके साथ पुनर्नवामण्डूर ऊपरके अनुपानसे सेवनीय है।

सूजनके साथ पेटमें जल होनेसे शोथोदरारिलौह, प्राणवल्लभरस, लौहपर्पटी आदि औषधियां सेवन करने योग्य हैं।

भविष्यमें अनिष्ट करने लायक यदि शोथ दिखाई देता है, तो विजय-पर्पटी उस समय एकमात्र औषधि हैं।

१४. कैन्सर से उत्पन्न अतिसारकी चिकित्सा:—यक्ष्मा रोगकी तरह कैन्सर रोग में भी अतिसार होनेसे हालत बड़ी खराब हो जाती है। कैन्सर रोगमें क्षय आरम्भ होनेकी अवस्थामें, यक्ष्मा की तरह सबसे पहले रोगीके बलकी रक्षा करनी आवश्यक हो जाती है। क्योंकि, बल और मांसके क्षय हो जानेसे रोगीके आराम होनेकी कोई आशा नहीं पायी जाती।

गलेके कैन्सर रोगमें उत्पन्न अतिसारको दूर करनेके लिये अफीम मिश्रित औषधिका प्रयोग करना चाहिए। इससे रोगी का अतिसार सहज ही में अच्छा हो जाता है एवं तत्संग कैन्सर की घोर पीड़ा यथेष्ट परि-माणमें घट जाती है। जातिफल रस, कर्पूर रस, श्री मदनानन्द मोदक, कुटज रसक्रिया, कुटजारिष्ट, अहिफेनासव, मृगमदासव, मृतसंजीवनी सुराका

प्रयोग करना चाहिए। इन सब औषधियोंके प्रयोग करनेसे यदि अतिसार कम नहीं होता है, तो स्वर्णपर्पटी का व्यवहार करना चाहिए।

पथ्यः—बकरी के दुधके साथ बार्ली, जला हुआ कच्चा बेल, सिद्ध किया कच्चा केला।

१५. गलेके कैन्सर रोगका आक्षेपः—गलेके कैन्सरकी अन्तिम दशायें रोगीके शरीरमें प्रबल आक्षेप उत्पन्न हो जाता है। इस समय वात-व्याधिकी चिकित्सा करनेसे लाभ होता है। इस दशामें वातारि रस, वृहद्-वातचिन्तामणि रस, योगेन्द्र रस, खल्ली तैल, प्रसारणी तैल, एवं पुरातन घी को मालिश करनेसे फायदा होता है।

निम्नलिखित "आक्षेप निवर्तक" नामक औषधि कैन्सर रोगके आक्षेप निवारण करनेमें विशेष फायदा पहुंचाती है। आँवला ४ आना, हरीतकी ८ आना, बहेड़ा ४ आना, निशादल ४ आना, कर्पूर १ आना, हिंग २ आना, बिडङ्ग ४ आना, जटामांसी ४ आना—इन सबको जलमें पीसकर, तीन रत्ती की गोली बनावे। अनुपान—गर्म दुध।

निम्नलिखित आक्षेप निवारक तैल मालिश करनेसे कैन्सरका आक्षेप दूर होता है।

आक्षेप निवारक तैलः—सरसोंका तैल ४ सेर, गोमूत्र १६ सेर, बिम्बी पत्तोका रस ८ सेर, कल्कार्थ जटामांसी १ सेर—नियमपूर्वक तैल तैयार करके इसके नस्य लेने तथा मालिश करनेसे आक्षेप दूर होता है।

१६. गलेके कैन्सर रोगके घावमें कीड़ा पड़ जानेपर उसकी चिकित्साः—१, धतूरेका पत्ता, आकन्दका पत्ता, निपिन्दाका पत्ता—इन सब

को १-१ छटांक लेकर ८ सेर जलमें पका ले और जब २ सेर रह जाय तो उस पानीके द्वारा घाव धोनेपर कीड़े मर जाते हैं।

२. नीमकी पत्ती और त्रिफलाके पके हुए जलसे धुलाई करनेपर और बृहद् सोमराजी तैल, व्रणराक्षस तैल, महाखदगुडुच्यादि तैलके व्यवहार करनेसे घावके कीड़े नष्ट हो जाते हैं।

१७. गलेके कैन्सर रोगोंमें वाकस्तम्भकी चिकित्सा।

(१) हरिताल भस्म $\frac{1}{16}$ रत्तीकी मात्रामें गायके घी के साथ मिलाकर सेवन करनेसे फायदा होता है।

(२) उड़द, आलकुशी बीज, एरण्ड मुल और नागवला, इन सबको आधा आधा तोला लेकर, आधा सेर जलमें पकावे और जब आधा पाव रह जाय, तो उसे उतारकर घी सहित भुनी हुई हींग २ रत्ती, सेंधा नमक १ माशा प्रक्षेप देकर व्यवहार करनेसे वाकस्तम्भ दूर होता है।

(३) कल्याणावलेह आधा तोला, थोड़े गर्म दुधके साथ सेवन करनेसे वाकस्तंभ दूर होता है।

(४) प्रातः सोमनाथ ताम्र, आदीके रस और मधुके साथ। दोपहरको बृहद्वातचिन्तामणि, शतमूलीके रस के साथ– तीसरे पहर चतुर्भुज रस, ब्राह्मी, शाकके रस और मधुके साथ सेवन करनेसे एवं मस्तक पर महानारायण तैलकी मालिश करनेसे वाकस्तम्भ दूर होता है।

(५) तृषती प्रसारिणी और महामाष तैल की मालिश और बृहद् वातारि रस, सोंठ और एरण्ड मूलके कढ़ेके साथ, तीसरे पहर सेवन करनेसे दुर्जय वाकस्तम्भ निश्चित रुपसे आरोग्य होता है।

१८. गलेके कैन्सर रोगमें निद्राहीनताकी चिकित्सा।

कैन्सर रोगकी अन्तिम अवस्थामें रोगीके शरीरमें शोषण और सर्वांगीण शुष्कता अत्याधिक रुपमें बढ़ जाती है। इस दशामें अत्याधिक वायुवृद्धि के द्वारा उत्पन्न निद्राहीनतासे रोगी अत्यन्त कष्ट पाता है। इसके लिये निम्नलिखित व्यवस्था करनी चाहिए।

(१) रोगीको भैंसका दुध पीनेको देना चाहिए।

(२) विष्णु तैल, मध्यमनारायण तैल, वृहत् शतावरी तैल, पल्लवसार तैल, महानारायण तैल आदि पुष्टिकर तैलों द्वारा सर्वांग मालिश करनेसे रोगीको नींद आ जाती है।

(३) वृहत् शतावरी घृत, सामान्य गरम दूधके साथ पीनेसे रोगीको निद्रा आ जाती है।

(४) उडद्का यूप, शुपुनी शाक का यूष, मागर मछली का यूष, भैंसके दुधकी लस्सी, जूट शाकका यूप, रोगीको अवस्था समझकर देनेसे रोगीको नींद आती है।

(५) अतिशुद्ध स्वर्ण सिन्दूर, चौथाई रत्तीकी मात्रामें लेकर, चावलके धोवनके साथ या शतावरके रस से सेवन करनेसे नीद आती है।

(६) वायुछायासुरेन्द्रतैल:—सर्वाङ्गमें मालिश करनेसे रोगीको नींद आ जाती है।

(७) रोगीका वल और मांस यदि क्षीण नहीं हुआ है, तो मृदु विरेचन के बाद कच्चा केला, परवल और मागर मछलीका यूप एवं घोल और साली चावलका भात ग्रहण करनेसे नींद आती है।

(८) भांग को भूनकर चूर्ण बनाकर रातमें मधुके साथ सेवन करनेसे नींद खूब आती है।

(९) पीपलमूलका चूर्ण गुड़के साथ मिलाकर खानेसे बहुत दिनकी नष्ट निद्रा पहलेकी तरह आने लगती है।

(१०) काकजंघाकी जड़ अथवा काकमाछीकी जड़ सिरमें बांधकर रखनेसे नींद आती है।

(११) काकमाछी की जड़ और त्वक सिद्ध करके पान करनेसे नींद आती है।

(१२) जिस मनुष्यको नींद नहीं आती है, उसे दुध, दही, मांस रस, मदिरा पीना चाहिए।

(१३) अभ्यंग, उद्वर्तन, स्नान, नेत्र तर्पण, कर्ण तर्पण और मूर्ध तर्पण करनेसे अच्छी नींद आती है।

(१४) मांस रसमें, शाकमें, रसामें, घीमें प्याज मिश्रित करके सेवन करनेसे अच्छी नींद आती है।

१६. गलेके कैन्सरमें गला बन्द हो जानेपर उसकी चिकित्साः—

गलेके कैन्सरमें अनेक कारणोंसे गला बन्द हो जाता है, जिसके फलस्वरुप रोगीको सांस लेनेमें तकलीफ होती है। शीघ्र ही, इसका प्रतिकार न करनेसे रोगीकी मृत्यु हो जाती है।

निम्नलिखित उपाय द्वारा इसकी चिकित्सा करनी चाहिए।

(१) चिकित्सा करके रोग अच्छा करनेका यदि समय नहीं है, तो उस समय "ट्रेकिओटामी" द्वारा चिकित्सा करनी चाहिए।

(२) इस दशामें कृष्णसर्पके विष द्वारा बना हुआ स्वल्पशुचिकाभरण रसका प्रयोग करनेसे विशेष उपकार होता है। शुचिकाभरणके व्यवहार करनेके बाद शास्त्रानुकूल शीतक्रिया करनी आवश्यक है।

(३) आघासेवड़ाकी (साखोट) जड़का चूर्ण, गोलमिर्चका चूर्ण, गायके घृतके साथ धूम्रपान करनेकी विधि जो पहले लिखी जा चुकी है, उसी तरहसे पीनेसे विशेष फायदा होता है।

४—पूर्वकथित हल्दीका चूर्ण, चूना, काली मिर्च, और कर्पूरके भाप लेनेसे उपकार होता है।

५—धतूरेका बीज, मीठा विष एवं स्वर्णघटित नारदीय महालक्ष्मी-विलास बटी, कांचनारगुग्गुल, सोमनाथ ताम्र, ताम्रभस्म प्रभृति औषधियों का उपयोग करनेसे विशेष लाभ होता है।

२०. गलेके कैन्सर रोगमें प्रलापकी चिकित्सा।

प्रायः रोगकी अन्तिम अवस्थामें रोगी प्रलाप करता है। इस अवस्था में रोगीकी गर्दन और गला फूलकर एक हो जाते हैं, एवं रोगी यन्त्रणासे बेहोश हो जाता है, तथा रोगी बीच-बीचमें प्रलाप करने लगता है। इस अवस्थामें रोगीके अपने आदमियोंसे अनुमति लेकर वृहत् सूचिकाभरण रस प्रयोग करें। इसके प्रयोगसे रोगीको संज्ञा लाभ होगा। अनेक क्षेत्रमें रोगी इस दवाके द्वारा बहुत प्रकारके कष्टसे निवृत्ति पाते हैं।

इसके अलावा चतुर्भुज रस, वृहत्‌वातचिन्तामणि रसका प्रयोग करनेसे इस अवस्थामें विशेष लाभ होता है।

१—गलेमें वात-प्रधान कैन्सरका लक्षण :—(क) दुर्जय वेदना, (ख) सर्वाङ्गव्यापी शोष व शुष्कता (ग) शूल वेदना (घ) स्वरभंग (ङ) श्वास कष्ट प्रभृति।

२. गलेमें पित्त-प्रधान कैन्सरका लक्षण :—(१) ज्वर, (२) दाह, (३) रक्त वमन, (४) अतिसार, (५) घावमें पचन प्रभृति।

३. गलेमें कफ-प्रधान कैन्सरका लक्षण—(१) अरुचि, (२) खांसी, (३) मस्तक परिपूर्णता, (४) ग्रन्थिवृद्धि, (५) शोथ प्रभृति ।

गलेके त्रिदोषजनित कैन्सरमें उल्लिखित लक्षणें प्रायः सभी अल्पाधिक मात्रामें विद्यमान रहती हैं ।

अष्टम अध्याय

साध्येषु भेषजं सर्वमीरितं तत्त्ववेदिना ।
असाध्येष्वपि दातव्यो रसोऽतः श्रेष्ठ उच्यते ॥
(इति रसेन्द्रसारसंग्रहे)

गलेके कैन्सरकी विष-चिकित्सा

भारतवर्षमें वैदिक-युगसे अनेक प्रकारके स्थावर और जंगम विषोंका औषधिरूपमें व्यवहार होते आरहा है । शास्त्रमें लिखानुसार अच्छी तरह उपयोग करनेपर तीक्ष्ण विष उत्तम औषधिमें परिणत होती है, एवं दुरुपयोग करनेसे उत्तम औषधि भी तीक्ष्ण विषमें परिणत हो जाती है ।

अति प्राचीन कालसे आयुर्वेदमें अनेक प्रकारके स्थावर, जंगम विषका व्यवहार होते आ रहा है, एवं इससे स्थायी लाभ भी होते आ रहा है । यह रसायनगुणयुक्त अर्थात् विषसेवन करके मनुष्य शरीरको बली-पलित-जरा-व्याधि आदिसे मुक्त करके कान्ति पैदा करनेवाला तथा नीरोग रखकर स्वस्थ और वीर्यवान बनानेवाला है । मीठा विष, लांगली विष, कृष्णसर्प विष प्रभृति नानाप्रकारके विष गलेके कैन्सरके लिये व्यवहृत होते हैं । विषघटित औषधि जल्द लाभदायक होते हैं, एवं इसका फल स्थायी होता है । मेरी लिखी हुई

"रस चिकित्सा" नामक पुस्तकके प्रथम खण्डमें विपके प्रसंगमें विभिन्न प्रकार विप प्रयोग-विधिके सम्बन्धमें विस्तृतरूपसे आलोचना की गई है। विपके प्रयोगसे कैन्सरकी भयकर यंत्रणा निवारित होती है एवं कैन्सर द्वारा ग्रसित मानव-शरीरकी स्नायु, तन्तु, सिरा, धमनी इत्यादि मृत पदार्थको पुनर्जीवित करके दिव्यकान्ति उत्पन्न करता है।

गलेके कैन्सरका पथ्यापथ्य

पथ्य :—स्वेदन, विरेचन, वमन, गण्डुपधारण, प्रतिसारन, कवल-ग्रहण, रक्तमोक्षण, नस्य, धूम, शस्त्रक्रिया, अग्निकर्म, तृणधान्य, जौ, मूंग, उडदकी दाल, जांगल मांसका यूष, बड़ा पूटी माछ (सरल पुटी), करैला, पटवल, कच्ची मूली, कर्पूरसे वास किया जल, गर्म जल, खदिर, घृत, कटु द्रव्य, तिक्त द्रव्य, ये सब सुपथ्य हैं।

अपथ्य :—दन्तकाष्ठ, स्नान, अम्ल द्रव्य, मत्स्य, आनूप मांस, दही, दुध, गुड़, उडदकी दाल, रूक्ष अन्न, कठिन भोजन, अधोमुख कर सोना, गुरु और कषाय द्रव्य—ये गलेके कैन्सरके लिये अपथ्य हैं।

गलेके कैन्सर रोगमें शस्त्र-चिकित्सा

रोगके प्रारम्भ होते ही, शस्त्रचिकित्सा कैन्सररोगमें विशेष लाभ करती है तथा इसके द्वारा कैन्सररोगका रोगी मुक्ति लाभ करता है। अर्बुद जिस समय दोषशून्य रहता है, अर्थात् चारों ओरसे शिराजाल न फैलकर केवल उद्भुत हुआ रहता है, उस समय शस्त्रचिकित्साके द्वारा जड़से उखाड़ देना सब तरहसे समीचीन व्यवस्था है। शस्त्रचिकित्सा करते समय आयुर्वेदीय पूर्वकर्म और पश्चातकर्म दोनोंके प्रति ध्यान रखना

आवश्यक है। अर्थात् जिस दोषके कारण कैन्सर उत्पन्न होता है, उसी दोषको दूर करना ही सदा कर्त्तव्य है। इसमें आपरेशन करनेपर स्थानीय दोषजनित व्याधिका निराकरण तो हो जाता है, लेकिन इसके दूसरे आक्रमणसे रोगी बच नहीं सकता। केवलमात्र दोष अर्थात् वायुपित्तकफकी विकृति निराकृत होनेपर व्याधिका दूसरा आक्रमण नहीं होता। इस दोषके निराकरणके लिये कायचिकित्साका प्रयोजन है।

गलेके कैन्सरकी रस-चिकित्साः—चरक, सुश्रुत, वाग्भट् प्रभृति पूर्व आचार्यगण मानव-शरीरके विभिन्न अंगोंमे उत्पन्न विभिन्न प्रकारके कैन्सर रोगके वर्णनके प्रसगमें उन सबोंको असाध्य घोषित किये हैं एवं उन सबों की चिकित्सा-विधि धारावाहिकरूपसे नही लिखे हैं। अधिकाँशक्षेत्रमें केवल रोगके नाम या साधारणरूपमें वर्णन कर उन आचार्योंने अपने कर्त्तव्यका शेष समझा है। परवर्त्ती तांत्रिक युगके रसचिकित्साचार्यगण, यथा, आदिम, चन्द्रसेन, मन्थान भैरव, नागार्जुन प्रभृति सिद्धवैद्यगण चरक-सुश्रुत में कथित बहुत ही असाध्य व्याधिमें रसौषधि प्रयोग करके सफलता प्राप्त किये हैं। बहुतथाकथित असाध्य व्याधियाँ भी उनके अपूर्व चिकित्साप्रणाली एव रसौषधिके गहरे प्रभावसे निराकृत हो जाती थी। जिन सब रोगोंका मूलो-च्छेदन नहीं होता था वे भी रसचिकित्साके प्रभावसे बहुत दिनोंतक स्थिर रह कर रोगीको कर्म्मशक्ति ठीक रूपसे रखे हैं। रोगीकी दुःखदायी रोगयन्त्रणा हर तरहसे निराकृत हुई एवं अनेक क्षेत्रोंमें बहुत तरहकी व्याधियां सम्पूर्ण रूपसे दूर हुई थीं। चरक आदि पूर्व आचार्यों द्वारा बनीहुई औषधिया कैन्सर चिकित्साके क्षेत्रमें बिलकुल कोई फल नही दे पाती, ऐसी कोई बात नहीं है। अपितु उनलोगोंकी सहायतासे रसौषधि प्रयोगमें अपूर्व सफलता प्राप्त होती है।

कैन्सररोग में डिप-एक्सरेकी चिकित्सा:—आधुनिक विज्ञानसे आविष्कृत डिपएक्सरे द्वारा अनेक चिकित्सक कैन्सर रोगकी चिकित्सा करते हैं। कैन्सर रोगमें अर्बुदकी वृद्धि और यंत्रणाको कम करनेके लिये साधारणतः डिप-एक्सरे का प्रयोग किया जाता है। इसके द्वारा सब क्षेत्रोंमें सन्तोषजनक लाभ हो, ऐसी बात नहीं। साधारणतः कैन्सर रोग को एक स्थानीय रोग मानकर डिप-एक्सरेके जरिये स्थानीय चिकि-त्सा होती है और इसके द्वारा कुछ दिनों तक अर्बुदवृद्धि का ह्रास तथा यंत्रणाकी निवृत्ति होती है, परन्तु इसके द्वारा आन्तरिक दोष दूर नहीं होता। बल्कि परिणाम यह होता है कि कुछ दिनके बाद अर्बुद और प्रबल रूप धारण कर लेता है और रोगी जिन्दगीसे हाथ धो बैठता है।

हमारे देशके Radiologist के अज्ञानताके कारण ही हो अथवा जिस रोगको दूर करनेके लिये वे रेडियमका प्रयोग करते हैं उस रोगके निदान, स्वरूप, विवृद्धि, पूर्ववर्त्ती अवस्था, परवर्त्ती अवस्थाके विषयमें उन्हें विशेष ज्ञान न होनेकी वजहसे ही हो, किस क्षेत्रमें कितना डिप-एक्सरे का प्रयोग करना होगा निर्धारित नहीं करके चिकित्साका एक Course जैसे २२, ३२, ४२, बार तकका प्रयोग करते हैं और उसका परिणाम ईश्वरके ऊपर छोड़ देते हैं। अच्छे ढगसे प्रयोग करनेपर किसी-किसी स्थानमें १-२ वर्ष तक रोगीको शारीरिक स्वस्थताका बोध होता है। इसके बाद फिर रोग तीव्र वेगसे रोगीपर आक्रमण करता है और इस मरतबे यह आक्रमण प्रायः दुःसाध्य हो जाता है। डिप-एक्सरेका प्रयोग ठीक तरह से न होनेपर, कोर्स खतम होनेके पहले ही, अर्थात् २२, ३२, ४२ बार,

प्रयोगके शेष होनेके आगे ही, रोगीको रोगकी यंत्रणासे पुनः पीड़ित होना पड़ना है और यह वेदना निरन्तर बढ़ती ही जाती है।

गलेके कैन्सरमें डिप एक्सरे का प्रयोग करना उचित है या नहीं? पहले हमने कहा है कि ठीक तरहसे प्रयोग करनेपर किसी किसी क्षेत्रमें डिप-एक्सरे द्वारा कैन्सर रोगकी यंत्रणा शीघ्र ही दूर हो जाती है, उसके बाद यह यंत्रणा निश्चित रूपसे पुनः आरम्भ होती है। किन्तु कैन्सर रोगकी यंत्रणा इतनी तीव्र होती है, कि अधिकांश क्षेत्रमें रोगी की सहनशीलताके बाहर हो जाती है। उन सब क्षेत्रोंमें रोगकी तीव्र यत्रणा जल्द ही दूर करनेके लिये डिप-एक्सरेका प्रयोग करना आवश्यक है। लेकिन इसका प्रयोग सीमाबद्ध होना चाहिए। रोगकी पीड़ा शीघ्र ही दूर हो जानेपर इसका प्रयोग बन्द कर देना चाहिए। किसी-किसी समय कैन्सर रोग के वाह्य अर्बुदोंके असाधारण वृद्धिको दूर करनेके लिये डिप-एक्सरे का प्रयोग किया जाता है एवं जब तक अर्बुद नष्ट नहीं हो जाते, तब तक चलता है। इस प्रकार अधिकांश क्षेत्र में ही Exposure अर्थात् डिप-एक्सरेके स्थानीय प्रयोग की मात्रा अत्याधिक हो जाती है। परिणाम-स्वरूप आक्रान्त स्थान जल जाता है और थोड़े दिन बाद प्रबल रक्तस्रावके साथ वहांका मांस नीचे गिर पड़ता है और चौगुनी पीड़ा बढ़ जाती है। इस समय Radiologist लोग डिप-एक्सरेके प्रयोगसे कुछ फल नहीं होनेका मत प्रकाशित करते है और डिप-एक्सरेके बदले रेडियम का प्रयोग करते हैं। अब बात यह है कि कैन्सरमें डिप एक्सरे चिकित्सा का प्रयोग करना चाहिए या नहीं? चिकित्सा करते करते यदि यह समझा जाय कि वमन, विरेचनादि पंचकर्म, पूर्वकर्म और पश्चात्कर्मके

साथ शस्त्रप्रयोग, घृत, तैल, मोदक, आसव, अरिष्ट, वटी, चूर्ण, अवलेह, विविध प्रकारको धातु भस्म आदिके प्रयोग करनेसे भी यदि रोगकी पीड़ामें कुछ कमी नहीं हुई तो उस समय डिप-एक्सरेकी सहायता लिया जा सकता है और २-१ प्रयोग करनेके बाद उसका फलाफल देखकर प्रयोग चलाना चाहिए। यंत्रणा दूर होते ही प्रयोग बन्द कर देना चाहिए एव मूल रोग को दूर करनेके लिये औषधिका प्रयोग करना चाहिए। जिन सभी कारणोंके कारण रोग उत्पन्न हुआ है, सर्वप्रथम उन्हीं कारणोंका मूलोच्छेदन करना चाहिए।

कारण न जानने पर रोगी को नाडी, रोग का स्वरूप अर्थात् आकृति, लक्षण इत्यादि देखकर दोषका स्वरूप समझ कर इन-उन दोषोंकी चिकित्सा करनेसे रोगी रोगमुक्त होता है। रोगके तत्त्व का निर्णय एव रोगीकी रोगयंत्रणाका निवारण करना ही चिकित्सक का कर्त्तव्य है। वैद्य आयु प्रदान नहीं कर सकता। यह पीडा दूर करने के लिये डिप-एक्सरेकी जितनी सहायताकी आवश्यकता है, उतना ही ठीक लेना चाहिये। जिद्‌वश, यह हमारे चिकित्साशास्त्रमें नहीं है, ऐसा कह अग्राह्य करना नहीं चल सकता। लेकिन इसे ग्रहण करते समय रोगीके स्वास्थ्य, ग्रहण करनेकी क्षमता प्रभृति विषयोंका ध्यान करके डिप-एक्सरेका प्रयोग करना आवश्यक है। इस प्रकार डिप-एक्सरे के प्रयोगसे चिकित्सक का कोई दोष नहीं होगा। रोगीके स्वास्थ्य, रोगकी उग्रता, रोगीकी सहनशक्ति एवं ग्रहणशक्ति आदि विषयों को समझ कर डिप-एक्सरे अथवा रेडियमका प्रयोग करना आवश्यक है। आयुर्वेद की चिकित्सा चलते रहने पर भी इसके प्रयोगमें कोई आपत्ति नहीं है। कारण आयुर्वेद-

ऋषियोंने कहा है :—"तदेवयुक्तं भैषज्यम् यदारोग्याय कल्पते," वही श्रेष्ठ औषधि है, जो स्वास्थ्य होने में सहायता प्रदान करें। आयुर्वेद की इस उदार दृष्टि द्वारा देखनेसे यह मालूम होगा कि पृथ्वीका कोईभी देश क्यों न हो, जहाँ किसी नये आविष्कारसे मनुष्यमात्रका कल्याण होता हो, आयुर्वेद उसे सहर्ष अपना लेता है। अर्थात्, आयुर्वेदका त्रिदोष विज्ञान, द्रव्योंका रस, वीर्य, विपाक और प्रभाव, प्रभृति आयुर्वेदीय चिकित्सा-सूत्रोंके मापदण्डों द्वारा तौल कर आयुर्वेदशास्त्रकी देह पुष्टता के लिये प्रयोजनीय समझ कर इसे अवश्य ही ग्रहण करना होगा। आयुर्वेद के इतिहास की आलोचना करने पर हम देखते हैं कि अनादि कालसे आयुर्वेद ऐसा करता चला आ रहा है। आयुर्वेदके वैदिक त्रिदोषविज्ञानके साथ तांत्रिक नाड़ीविज्ञान और रस–चिकित्सा का एकीकरण इस उक्तिके लिये यथार्थ प्रमाण है।

किन्तु यह कहकर युक्ति-विरुद्ध विषयों को ग्रहण नहीं किया जा सकता। "तस्मात् न भिषजा युक्तं युक्तिवाह्येन भैषजम्"। डिप-एक्सरे अथवा रेडियमका प्रयोग करना यदि उचित समझा जाय, तब रोगी की अवस्था समझकर, २-४ प्रयोग किया जा सकता है। इससे "शुद्धायुर्वेदका शुद्धत्व" खंडित नहीं होगा। आयुर्वेदके त्रिदोषविज्ञानके तुलादण्ड पर मापने से यह देखा जाता है कि वातश्लेष्मप्रधान कैन्सर रोगमें डिप-एक्सरे अथवा रेडियमका प्रयोग युक्तिसंगत है।

किन्तु यह प्रयोग मात्रानुसार और समयानुसार ही होना चाहिए। शास्त्रमें लिखा हुआ है :—

"मात्राकालाश्रया युक्तिः सिद्धिर्युक्तौ प्रतिष्ठिता।
तिष्ठत्युपरि युक्तिज्ञो द्रव्यज्ञानवतां सदा॥

अर्थात् युक्ति, मात्रा और समयोपयोगी, युक्तिके ऊपर ही कार्य की सिद्धिता निर्भर रहती है। द्रव्यज्ञानी चिकित्सक की अपेक्षा युक्तिज्ञ चिकित्सक का पद प्रतिष्ठित है। युक्ति द्वारा जो वस्तु ग्राह्य है, वह विदेशी हो अथवा स्वदेशी, उसके ग्रहण करने में आपत्ति करना उपयुक्त नहीं है। रेडियम, स्वनामधन्य वैज्ञानिक मेडमकूरि द्वारा आविष्कृत एक विशेष धातुद्रव्य है। इसके स्थानीय प्रयोगसे यदि रोग दूर होता है, तो इसका प्रयोग करना ही चाहिए। किन्तु प्रयोग हमेशा ठीक ठीक होना चाहिए। शास्त्र में लिखा है—

"सम्यक् प्रयोगं सर्वेषां सिद्धिराख्याति कर्मणाम्।
सिद्धिराख्याति सर्वैश्च गुणैर्युक्तं भिषक्तमम् ॥"

अर्थात्, कर्मके सिद्धि होनेसे ही यह समझना होगा कि यह कर्म सम्यक प्रकार से प्रयुक्त हुआ है। आरोग्यरूप सिद्धि ही चिकित्सकको श्रेष्ठ और सर्वगुण सम्पन्न बनाती है।

गलेके कैन्सर रोगमें रेडियम चिकित्सा।

गले के कैंसर रोग की अत्यधिक वृद्धि की दशामें जब डिप-एक्सरेके प्रयोगसे भी कोई लाभ नहीं होता, तब रेडियमका प्रयोग किया जाता है। किसी किसी क्षेत्र में डिप-एक्सरेका प्रयोग न करके पहले ही रेडियम का प्रयोग किया जाता है। रेडियम विख्यात फ्रांसीसी विज्ञानी कुरी का अपूर्व आविष्कार है। परवर्त्ती कालके चिकित्सकगण, कैन्सर, अर्बुदों एवं नाना प्रकारके दुष्टव्रणोंके ऊपर इसका प्रयोग करके अनेक क्षेत्रोंमें सफलता प्राप्त किये है। ठीक समयमें रोगीके और रोग की अवस्था समझकर २-१ प्रयोग करने से रेडियम द्वारा अनेक स्थानों में विशेष

लाभ होता है, किन्तु यदि दुर्भाग्यवश प्रयोग की मात्रा अधिक हो जाती है तो रेडियम प्रयोग से जो हानि होती है, उसका वर्णन नहीं किया जा सकता। इससे आक्रान्त स्थान जल जाता है और कुछ दिनोंके बाद जला हुआ मांस घोर रक्तस्रावके साथ गिर पड़ता है। रेडियमके प्रथम प्रयोग से रोगी जो सामयिक आराम पाता है, इस समय उसकी अपेक्षा उसे चौगुनी यंत्रणा भोगनी पड़ती है और शीघ्र ही रोगी मृत्युके मुंह में गिर जाता है। दो-एक क्षेत्रको छोड़कर अधिकांश क्षेत्रमें गलेके कैन्सरमें रेडियम के प्रयोग द्वारा कोई लाभ नही देखा गया है। इसके प्रयोग से जो कुछ लाभ होता है, वह थोड़े समयके लिये ही होता है। रेडियम प्रयोग के बाद जो पुनः आक्रमण होता है, उससे रोगीको मर्मान्तिक पीड़ा होती है। विशेषज्ञ लोगों का यह मत है कि ग्रीष्मप्रधान देशवासियोंके लिये रेडियमका प्रयोग विशेष लाभकर नहीं होता। फिर भी यदि किसी प्रकार औषधि द्वारा रोग दूर नहीं होता है, तो सामयिक यन्त्रणा दूर करनेके लिये रेडियमका प्रयोग किया जा सकता है। पहले यह अवश्य ही ठीक कर लेना होगा कि रोगीके रोग की पीड़ा दूर करनेका और कोई उपाय नहीं है और उसकी मृत्यु निश्चित है, किन्तु रोगी जो कुछ दिन तक जीवित रहेगा उसे कम पीड़ा होनी चाहिये, यही रोगी और चिकित्सक दोनोंका उद्देश्य है।

गलेके कैन्सर में जिस वक्त धड और गर्दन मिल जाते हैं, उस समय रोगी को श्वास लेने में कष्ट होता है, रोगी को उठते, बैठते और खाने में कष्ट होता है, रोगी हमेशा चचल रहता है, यंत्रणा की चोटसे रोगी भगवान् से इससे मुक्तिके लिये प्रलाप करने लगता है,

रोगीका गला बन्द हो जाता है और कुछ भी खा नहीं सकता, ऐसी दशा में रेडियम का प्रयोग करना चाहिए।

आयुर्वेद की दृष्टिसे रेडियम का प्रभाव :—यह स्रोतविशोधक, वेदनानाशक, वातश्लेष्मा निवारक, पित्तवर्धक, रक्तपित्तकारक, उष्णवीर्य, कटुविपाक, पचन निवारक, घाव विशोधक, दुर्गन्धनाशक, सूक्ष्मस्रोतगामी, स्वल्प रसायण गुणयुक्त है।

यथासमय स्थान, काल, पात्र और मात्रा विचार करके प्रयोग करनेसे रक्तार्बुदोंमें, व्रणोंमें, विसर्पमें, ग्रन्थियोंमें, गण्डमाला और विद्रधि आदिमें उपकार होता है।

नवम अध्याय

केवलं विदितं यस्य शरीरं सर्व्वभावतः।
शारीराः सर्व्वरोगाश्च स कर्म्मसु न मुह्यति॥

इति चरके

जिह्वा के कैन्सर की चिकित्सा

आजकल बहुत प्रकारके जिह्वा-कैन्सर रोगकी उत्पत्ति होती है। किसी-किसी क्षेत्रमें जिह्वाके ऊपर पहलेसे ही एक छोटेसे अर्बुदकी उत्पत्ति होती है, एवं यही अर्बुद क्रमशः वृद्धिप्राप्त होकर समस्त जिह्वाके ऊपर आक्रमण करता है। किसी किसी क्षेत्रमें जिह्वाके ऊपर एक छोटी सी फुसी निकलती हुई दिखलायी पड़ती है, एवं इसके कुछ दिन बाद वही फुसी गल कर घावका रूप धारण कर लेती है। क्रमशः यही घाव अन्तःप्रविष्ट होकर

जिह्वामें छेद कर देता है। किसी किसी स्थानमें जिह्वाके किसी एक तरफ गड्ढा होना आरम्भ होता है एव यही गड्ढा क्रमशः बढ़कर जिह्वास्तंभ कर देता है। किसी किसी क्षेत्रमें जिह्वाके ऊपर फूलगोभीके दानेकी तरह मांसांकुर निकल आते हैं और फूलगोभीकी तरह ये आहिस्ते-आहिस्ते बढ़कर मुखके सारे भीतर देशको आवृत् कर देते हैं। किसी-किसी क्षेत्रमें जिह्वा फटकर उसके अन्दरसे घावकी उत्पत्ति होती है। किसो किसी क्षेत्रमें जिह्वाके ऊपरमें मेंढकके छातेको तरह मांस बढ जाता है। कहीं कहीं जिह्वाके चारों ओर आगसे जले हुए छालेकी तरह घाव हो जाता है और कुछ दिनोंके बाद वे छाले गलकरके जिह्वाके ऊपर गड्ढा बना देते हैं। अतएव देखा जाता है कि जिह्वाका कैन्सर अनेक प्रकारसे अपने को प्रकट करता है।

जिह्वा-कैन्सरकी प्रथमावस्था का उपसर्ग

हर क्षेत्रमें जिह्वा–कैन्सरमें पहलेसे ही पीड़ा होती है। जिह्वामें जलन इस अवस्थामें एक विशेष उपसर्ग है। अर्बुद-प्रधान रोगमें वेदना एव क्षत-प्रधान रोगमें ज्वाला विशेष उल्लेखयोग्य है। दूसरा उपसर्ग कभी-कभी रक्तस्राव होना, तृनीय उपसर्ग जिह्वाके ऊपर सफेद पर्दा पडना, चौथा उपसर्ग मुखमें दुर्गन्ध उत्पन्न होना और पाँचवा उपसर्ग भोजन निगलते समय गलेके अन्दर तकलीफ मालूम पडना है।

जिह्वाके कैन्सर रोगकी द्वितीय या मध्य अवस्था

जीभके कैन्सरकी मध्यावस्थामें अर्बुद बढ जाते हैं। पहले जो अर्बुद छोटे थे, इस समयमें बढ जाते हैं। घाव-प्रधान जिह्वाके कैन्सरमें इस दशामें, घाव बहुत भीतर तक घुस जाते हैं। क्रमशः अर्बुदों और घावोंका

गलना शुरू हो जाता है। इस समयसे ही रोगीकी जिह्वासे लार गिरने लगता है। बीच बीच में रक्तस्राव तेजीसे होने लगता है। इस दशामें रोगीको बीचबीचमें ज्वर आने लगता है एवं ४-५ दिन कभी कभी सप्ताह भर भोगकर ज्वर बन्द हो जाता है। विशेषरूपसे जिह्वा फूल जाती है और गलेकी निगलनेवाली शक्ति मंद पड़ जाती है। ये दोनों ही जीभके कैन्सरकी मध्यावस्थाके विशेष लक्षण हैं।

जिह्वाके कैन्सरकी तृतीय अवस्था

तृतीय अवस्थामें जीभके कैन्सरकी वृद्धि विशेष मात्रामें होती है। इस समय जीभके साथ-साथ रोगीका सम्पूर्ण कण्ठदेश फूल उठता है—और कंठके चारों तरफ अर्बुद निकलने लगते हैं। और वे धीरे धीरे बढ़ने लगते हैं। स्वरभग होना इस समयका एक विशेष लक्षण है। स्वरभगके साथ रोगीकी बातचीत करनेवाली शक्ति क्रमसे लुप्त हो जाती है। इस समय हमेशाके लिये रोगीको खाँसी होती हैं और वह खाँसीसे रोगी बहुत पीड़ित रहता है। इस समय प्राय ज्वर होता है और दो चार दिन रहकर ज्वर छोड़ देता है। सख्त द्रव्य खानेकी शक्ति रोगीको नहीं रहती। रोगी किसी प्रकार तरल पदार्थ खाकर जीवित रहता है। इस अवस्थामें विशेष ध्यान देने योग्य एक यही विषय है कि रोगीको इस समय बीच बीचमें प्रबल रक्तस्राव होता है और रक्तस्राव होनेके बाद समस्त उपसर्गोंकी सामयिक कमी हो जाती है। इससे रोगीको सब विषयमें सामयिक रूपसे शान्ति मिलती है। इसके चार-पांच दिन बाद पुनः सभी उपसर्ग उत्पन्न हो जाते हैं। इसप्रकार बार बार रक्तस्राव होने और उसके साथ ही लालास्राव रहनेके

कारण रोगी बहुत शीघ्र ही दुर्बल हो जाता है। बीच-बीचमें प्रबल श्वास-कष्ट होना जिह्वा-कैन्सरकी इस अवस्थाका एक विशेष लक्षण है।

जिह्वाके कैन्सरकी अन्तिम अवस्था

जिह्वाके कैन्सरकी चतुर्थ अवस्थामें बहुत दिनों तक अन्नाहार न करनेकी वजहसे रोगी बहुत क्षीण हो जाता है और यक्ष्मा रोगीकी तरह तीसरे पहर ज्वर होता है और क्रमशः क्षयकी वृद्धि होती है। इस समय जीभके घावकी मात्रा बहुत ही बढ़ जाती है और क्रमशः क्षय होते-होते जीभका आकार छोटा हो जाता है एवं सड़नकी वजहसे दुर्गन्ध इतनी बढ़ जाती है कि रोगीके घरमें प्रवेश नही किया जा सकता। इस समय कठनाली और गलेके चारों तरफ बहुतसे अर्बुदोंकी सृष्टि द्वारा धड और गर्दन एक हो जाते हैं और कंठनाली बन्द होनेकी वजहसे रोगी आहार्यग्रहण नहीं कर पाता एव अन्तमें अधिक श्वासकष्ट होनेकी वजहसे रोगी की मृत्यु हो जाती है।

जिह्वाके कैन्सर रोग होनेका कारण

जीभके कैन्सर रोगकी मूलतः उत्पत्ति कफ और पित्तके कारण है। खराब आहार-विहारके कारण कफ और पित्त विकृत होकर वायुके संयोग द्वारा कठिन जिह्वा-कैन्सर रोगकी सृष्टि करते हैं। जीभके कैन्सरका प्रधान कारण—(१) दीर्घकाल तक यकृतका दोष बना रहना (२) रक्तदुष्टि, यह रक्तदुष्टि अनेक प्रकारोंका होता है। उपदश (गर्मी) के द्वारा रक्तदुष्टि हो सकता है और पित्तविकृतिके कारण भी रक्तदुष्टि हो सकता है। इस प्रकार अनेक क्षेत्रोंमें देखा गया है कि जिनको थोडी उम्रमें गर्मी हुई

है और सामान्य साधारण टोटका चिकित्सा द्वारा घाव अच्छा हुआ है किन्तु गर्मीके विषका निवारण नहीं हो पाया है, उन्हीं लोगोंमें गर्मी रोगके आक्रमणके २०-३० वर्ष बाद कैन्सरका आक्रमण हुआ है और कैन्सर आक्रमणके बादमें खूनकी परीक्षा करने पर देखा गया है कि सिफिलिस moderately positive or weakly positive रूपसे वर्तमान है। इस दशामें सिफलिसकी चिकित्सा करने पर पीड़ा बहुत अशोंमें घट जाती है। (३) जीभके कैन्सरके जितनेभी कारण हैं, उन सबमें यकृतका दोष प्रधान हैं। यकृत खराब होनेसे नानाप्रकारके उदर-रोग उत्पन्न होते हैं। किसी भी तरहसे उदररोग क्यों न हो, जीभसे उसका संबध होता है। (४) बहुत दिनों तक डिस्पेपसियासे भोगनेके कारण जिह्वा-कैन्सर होता है। (५) थोडी उम्रमें सुजाक रोगका आक्रमण और अच्छी तरह उसका इलाज न करना तथा पेशाबमें चीनी और एलब्यूमेन पैदा होकर वृक्क (Kidney) को खराब कर देना जीभके कैन्सरका और एक कारण है। (६) दिनमें भोजनके बाद ही सोना एवं स्त्रीसंयोग करना जीभके कैन्सरका अन्यतम कारण है। (७) बहुत ज्यादा चिरपुर और बहुत ज्यादा मसालावाला द्रव्य भोजन (८) जर्दा और पान, विशेष करके चूना मिलाकर कच्ची तम्बाकू सुर्ती खाना (९) गर्मी और सुजाकके विष रहने पर भी बहुत दिनों तक काफी मात्रामें शराब पीना (१०) बहुत दिनों तक पेटमें वायु जमा होना एवं मन्द-मन्द शूलवेदनाका होना जिह्वा-कैन्सर रोगका एक विशेष पूर्वरूप है। (११) बहुत दिनों तक शहनाई, फ्लूट, बांसरी आदि बजाना (१२) अनेक दिनों तक दांतके बगल और जिह्वाके साथ संघर्षण होने पर भी

जिह्वाका कैन्सर होना है। (१३) बहुत दिनोंतक अधिक मात्रामें निषिद्ध मांस खाना अथवा एक ही समय विरुद्ध जातीय मांस खाना, जैसे.-सुअरके मांसके साथ मुर्गीका मांस, बकरेके मासके साथ भैंसेका मांस तथा बकरेके मासके साथ गायका मांस खाना (१४) निषिद्ध दन्तकाष्ठसे दन्तमंजन करना और निषिद्ध जीभ साफ करनेवाले पदार्थसे साफ करना एवं (१५) बहुत दिनों तक नीति, धर्म, ज्ञान एवं स्वास्थ्यके विरुद्धकर्म करना आदि जिह्वा कैन्सरके कारण हैं।

जिह्वा के कैन्सरकी चिकित्सा :—जिह्वाके कैन्सरकी चिकित्सा आरंभ करनेके पहले रोगीकी परीक्षा करके यह निश्चित कर लेना होगा कि किस कारण यह रोग उत्पन्न हुआ है। रोगी देखकर प्रथम रोगका कारण यदि निश्चित नहीं किया जा सकता, तो रोगीसे अनेक प्रश्न करके समझना चाहिए। यदि यकृतके दोष द्वारा रोग उत्पन्न हुआ है, यह निश्चित हो तो निम्नलिखित चिकित्सापद्धतिका प्रयोग करना चाहिए।

१—आदित्य रस – प्रातः ७ बजे, १० बूंद घी और २० बूंद मधु मिलाकर सेवन करना चाहिए।

२—बृहत् लोकनाथ रस—१० बजे बकरीके दुध और मधुके साथ।

३—धात्र्यारिष्ट – दोनों समय भोजनके बाद शीतल जलके साथ।

४—भास्कर लवण – ३ बजे गर्म जलके साथ।

५—पचतिक्तघृत गुग्गुल—५ बजे गर्म दुधके साथ।

६—रसतालक—७ बजे सध्यामें घी १० बून्द और मधु २० बून्द मिलाकर खाना।

रोगीका विशेष उदरदोष होनेपर एवं जीभके घावकी मात्रा अधिक होनेसे नमक और जल बन्द करके पर्पटीका प्रयोग करना चाहिए। यकृत दोषके साथ साथ गर्मी और सुजाकका दोष होनेपर रसपर्पटी विशेष कार्य करती है। अर्बुदप्रधान जीभके कैन्सरमें ताम्रपर्पटी लाभदायक है। पाण्डु रहनेपर लौहपर्पटी का प्रयोग करना चाहिए। घावमें अत्यन्त दाह, ज्वाला और छाले होनेपर एवं घाव अग्निसे जले हुए घावकी तरह होने पर स्वर्णपर्पटी देना चाहिए।

रोगीके घावसे क्षीण होनेपर विजयपर्पटी लाभदायक होती है। रोगी की अवस्थाके अनुसार किसी भी एक पर्पटीको दीर्घदिन तक देनेसे अग्नि-मान्द्य, अजीर्ण, यकृतदोष, ग्रहणी, विरुद्ध भोजन एवं विषमान्नके द्वारा उत्पन्न जीभका कैन्सर निश्चितरूपसे आराम होता है।

नियमपूर्वक जल और नमक बन्द करके ६ महीनेसे १ वर्ष तक पर्पटी का व्यवहार न करानेसे समुचित फल नहीं मिलता और इस चिकित्साके समय रोगीकी सेवाकरनेवालों एवं अभिभावकों की अस्थिरता भी नहीं चलेगी। जिन रोगियोंको पहले उपदंश होता है और उनकी चिकित्सा अच्छी तरह नहीं हो पाती, इस तरह वे किसी प्रकार अपना घाव अच्छा कर लेते हैं और उपदंशका विष ज्योंका त्यों रह जाता है, उन रोगियोंको ३०-४० वर्षके बाद जब जीभका कैन्सर होता है। उस समय उनको चिकित्सा निम्नलिखित रूपसे करनी चाहिए।

(१) माणिक्यरस—प्रातः ६ बजे, आमाहल्दीके रस और मधु मिला-कर सेवन करना चाहिये और उसके बाद अनन्तमूल एवं तोपचीनीका पाचन लेना चाहिए। आमाहल्दी न मिलनेपर घी लेना चाहिए।
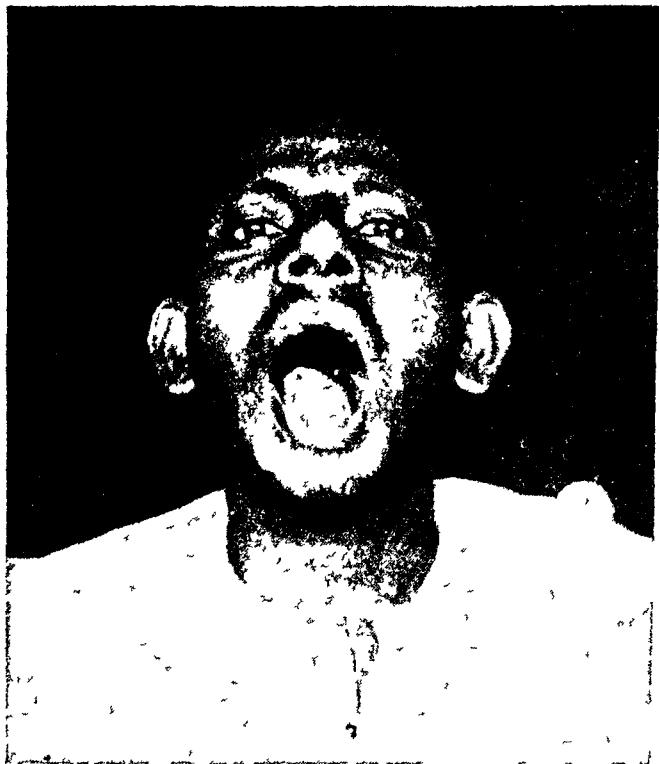
जिह्वाके कैन्सर

(२) १० बजे, निम्नलिखित क्षतान्तक योग, घिसा हुआ श्वेत-चन्दन एवं रक्तचन्दन और मधुके साथ सेवन करना चाहिए।

क्षतान्तकयोग प्रस्तुतविधि :—पारद, गन्धक, हिंगुल, हरताल, रस-माणिक्य, रससिन्दूर, ये सब बराबर लेकर घृतकुमारीके रसमें मर्दन करके १ रत्तीकी मात्रा की गोली बना लेनी चाहिए।

(३) सारिवाद्यासव—दोनों समय भोजनके बाद।

(४) सर्वरोगान्तकावटी—३ बजे नींबूके रस और मधुके साथ।

(५) पंचतिक्तघृतगुग्गुल—५ बजे गर्म दुधके साथ।

(६) महाभल्लातक—सध्या ७ बजे चीनीके शर्बतके साथ।

जीभके ऊपर फूलगोभीके आकारकी तरह अर्बुद निकलने पर निम्न-लिखित व्यवस्था करनी चाहिए।

१. सोमनाथताम्र—प्रातः ७ बजे। अदरक रस और मधुके साथ।

२. रौद्ररस—१० बजे। पानके रस और मधुके साथ।

(३) खदिरारिष्ट—दोनों समय भोजनके बाद सेवन करना चाहिये।

(४) पाशुपतरस—३ बजे नीबूके रस और मधुके साथ।

(५) महातिक्तघृत—सन्ध्या समय ५ बजे गर्म दुग्धके साथ।

(६) शिलाजतुप्रयोग—सन्ध्याके ७ बजे पानके रस और मधुके साथ।

जिह्वामें अग्निदग्धकी तरह, सफेद पर्देकी तरह, फट जानेकी तरह घाव होने; जिह्वाके एक बगलमें दाँतके घर्षणसे घाव होने, लगातार पान, तम्बाकू और सुर्ती खानेके कारण घाव होने एव शहनाई, फ्लूट, बाँसुरी आदि बजाने से घाव होनेपर निम्नलिखित व्यवस्थाका अवलम्बन करना चाहिए।

१. हरितालभस्म—प्रातःकाल ७ बजे गर्म गायके घृतके साथ। मात्रा १/८ रत्ती।

२. आदित्यरस—१ बजे घृत और मधुके साथ। मात्रा १ रत्ती।

३. रसेन्द्रचूर्ण—सन्ध्याके ७ बजे पानके रस और मधु अथवा घृत और मधुके साथ।

रसेन्द्रचूर्णकी प्रस्तुतविधि

शुः गन्धक ४ तोला, वंगपत्र हरिताल ४ तोला, लाल दारमूज ४ तोला, स्वर्णभस्म ४ तोला, सबको एक साथ कज्जली बनाकर १२ घंटे तक वालुका यन्त्रमें पकाकर १ धानकी मात्रामें व्यवहार करना चाहिए।

पथ्यः—गव्यघृत १ छटाकसे लेकर ½ पाव तक, दुग्ध १ सेरसे २ सेर तक, इसको छोड़कर जो अन्न रुचिकर हो वही खाना चाहिए। शाक, अम्ल, अण्डा, मत्स्य, मांस खाना वर्जित है। घृत एक छटाकसे कम होने पर नहीं चल सकता। खाली घी न खा सकने पर व्यंजनादिके साथ कमसे कम दिनमें १ छटाक खाना चाहिए। शीतल जलसे स्नान करना चाहिए।

जिह्वा-कैन्सरकी उपसर्गकी चिकित्सा

जिह्वा-कैन्सरमें निम्नलिखित उपसर्ग वर्तमान रहते हैं:—

दाह, रक्तस्राव, दुर्गन्ध, वेदना, लालास्राव और कोष्ठबद्धता।

दाहमें :—१—रक्तचन्दन, मौलेठी, गुलच, पद्मपुष्प, उशिर, सफेद-चन्दन, वाला, बासके छाल, हर्रा, मनक्का, कुटकी, तेउड़ी, दन्ती, क्षेत-पापड़ा, चिरता और दारुहरिद्रा, प्रत्येकको २ आना भर लेकरके आधा सेर पानीमें सिझाकर ½ पाव रह जाने पर सेवन करना चाहिए।

२—पचतिक्तघृतगुग्गुल साधारण गर्म दुग्धके साथ सेवन करनेसे सब प्रकारके दाहमें जल्दसे जल्द शान्ति मिलती है।

रक्तस्रावमें :—१—रक्तचन्दन और मौलेठीका पाचन।

२—वासक छाल, हर्रा, मनक्का, ये सब मिलाकर २ तोला, ½ सेर जलमें पका कर ¼ पाव रह जाने पर सेवन करना चाहिए।

३. शोधित हिंगुल—२ रत्ती की मात्रामें, पलवडके पत्तेका रस, चीनी और मधुके साथ सेवन करना चाहिए।

४. रससिन्दूर १ रत्ती—थोड़ का रस २ तोला, चीनी और मधुके साथ सेवनीय है।

५. वृहत् शतावरीघृत और कुष्माण्डखड के सेवन करनेसे भी अत्यन्त शीघ्र रक्तस्रावका निवारण होता है।

दुर्गन्धमें—१. साधारण गर्म दुग्धके साथ पचतिक्तघृतगुग्गुलके सेवन करनेसे अत्यन्त शीघ्र दुर्गन्ध नष्ट होता है।

२. त्रिफला और नीमके पत्तेका सिझाया हुआ जल से कवल धारण करनेसे दुर्गन्ध दूर होती है।

३ आम, जामुन, बाब्बुल, बकुल, बट, अश्वत्थ, पाती नीबू, बेर, कुरचि, कदम्ब, इन सबका पत्ता सिझाकर उस जल से कवल धारण करनेपर दुर्गन्ध नष्ट होती है।

४. बाब्बुल और बकुल छालका सिझाया हुआ जलसे कवल धारण करनेसे दुर्गन्ध नष्ट होती है।

वेदनामें—१. प्रातः मधु, दोपहरमें घृत एव सध्या समय गर्म सर्पोंके तेलका कुल्ला करनेसे जिह्वा-कैन्सरकी असह्य वेदना दूर होती है।

२. सोंठ और एरण्डमूलके क्वाथके साथ वातारिरस सेवन करने से वेदना दूर होती है।

३. गर्म जलके साथ वेदनानाशक वटी सेवन करनेसे वेदना दूर होती है। (वेदनानाशकके बनानेको विधिके लिये गले के कैन्सरके अध्याय में देखिये)

४. शाखोंटतैल, षड्विन्दुतैल और महादशमूलतैलका नस्य लेनेसे वेदना दूर होती है।

५. मुक्तामस्म २ रत्ती और स्वर्णभस्म १ रत्ती मिलाकर, सन्ध्या ७ बजे घी और मधु के साथ सेवनीय।

६. मृतसंजीवनीसुधा तथा उसीके अनुरुप कोई उत्कृष्ट मद्य, मात्रा ½ आ०, रात्रि समय सोते वक्त सेवनीय।

कोष्ठबद्धतामें—१ हर्रा १ तोला, सोनामुखी आधा तो० और मनक्का ½ तो०, एकसाथ आधा सेर जलमें सिझाकर ½ पाव जल रह जानेपर उसे छानकर सेवन करनेसे कोष्ठबद्धता दूर होती है।

२ आमलकी, हर्रा, वहेडा, तेउडी, कुटकी, दन्ती, सोनापत्ता, रेउ-चीनी, सोंठ, सोंदाल, एरण्डमूल, अजवाइन, लवग, मनक्का, सेंधानमक और कमलागुंडी—प्रत्येक दो-आना भर लेकर आधासेर जलमें सिझाकर आधा पाव रह जानेपर उस जलको छानकर सेवन करनेसे सब प्रकारके उदररोगके सहित कोष्ठबद्धता दूर होती हैं।

जिह्वाके कैन्सरके घावको साफ करनेके लिये पूर्वलिखित हरीतक्यादि कषाय द्वारा घावको धोना चाहिये। इसके बाद निम्नलिखित प्रलेप देना चाहिए।

गव्यघृत, घिसाहुआ रक्तचन्दन, खदिर चूर्ण, कर्पूर और मृगनाभी (कस्तूरी), बराबर भागमें लेकर मर्दन करके घावके ऊपर प्रलेप देनेसे; घावके ऊपर सादे पर्देका पड़ना एवं वेदना और दुर्गन्ध दूर होती हैं।

चिकित्सा का संकेत

आजकल रोगकी प्रारम्भिक अवस्थामें आयुर्वेदज्ञोंके यहाँ आयुर्वेदकी चिकित्सा करानेके लिये रोगी आते नहीं। जिस समय रोगी आते हैं, उस समय उनके संशोधनका कोई समय नहीं रह जाता, इसलिये रोग निवारक औषधिका प्रयोग करना पड़ता है। कारण, रोगी तब तक बहुत दुर्बल हो गया रहता है। इसलिये वमन-विरेचनादिके द्वारा उनके संशोधनका और कोई उपाय बाकी नहीं रह जाता। यदि भाग्यवश रोगकी प्रथमावस्थामें रोगी आये, तो उसे वातप्रधान होनेपर वस्ति, पित्तप्रधान होनेपर विरेचन एवं कफप्रधान होनेपर वमन देकर प्रथम संशोधन कर लेना होगा। कारण, शास्त्रमें लिखा हुआ है कि :—

"दोषाः न कदाचित् कुप्यन्ति जिता लंघनपाचनैः।
जिताः संशोधनैर्ये तु न तेषां पुनरुद्भवः॥
दोषाणांच द्रुमाणांच मूलेऽनुपहते सति।
रोगाणां प्रसरानाश्च गतानामागतिस्तथा॥"

अर्थात्,—"लंघन या पाचन औषधियों द्वारा जो जो दोष दूर होते हैं, वे फिरसे प्रकटित हो सकते हैं। किन्तु वमन इत्यादि संशोधन क्रियासे जो दोष दूर किये जाते हैं उनके दोबारा होनेकी कोई संभावना नहीं रह जाती। वृक्षके मूल को न काटकर केवल शाखा-प्रशाखाओंको काटनेसे फिर

वह छिन्न शाखा जिस तरहसे शीघ्र ही पतित हो जाती है, उसी तरह वात आदि दोष समूहोंको यदि जड़से नष्ट न किया जाय, तो ये दोष कुछ दिनोंके बाद फिरसे अवश्य ही प्रकाशित होंगे।" अतएव, जिसके पक्षमें जो संशोधन उपयोगी हो, समयके अनुसार उसका यदि प्रयोग किया जाय, तो वह रोग तो ठीक होगा ही बल्कि रोगके द्वारा आक्रान्त होनेकी सम्भावना भी बहुत कम रह जायगी। इनके सिवाय साधारण संशोधन सब क्षेत्रोंमें ही आवश्यक होते हैं। कारण, शास्त्रमें लिखा है :—

"नाविशुद्धशरीरस्य युक्तो रसायनो विधिः।
न भाति वाससि क्लिष्टे रंगयोग इवार्पितः॥"

अर्थात्,—"मैले कपड़ेको रंगनेसे जिस तरहसे अच्छा रंग नहीं उतरता, उसी तरह वमन इत्यादि क्रिया द्वारा शरीरको शोधित किये बगैर औषधि का कोई फल प्राप्त नहीं होता।

जिह्वाके रोगका शास्त्रीय निदानः—वातरोगसे पीड़ित जिह्वा दाह-जनक, स्फुटित, रसास्वादनमें असमर्थ एवं सेगूनवृक्षके पत्तोंकी तरहसे कंटकाकीर्ण होती है। पित्तसे पीड़ित जिह्वा दाहजनक, रक्तवर्ण और दीर्घाकृतिविशिष्ट कंटक समूहसे युक्त रहती है। श्लेष्मसे पीड़ित जिह्वा गुरु, स्थूल और शाल्मली कंटकोंकी तरह मांसांकुरविशिष्ट होती है।

दुष्टकर कफ और रक्त जिह्वाके नीचे जो भयंकर शोथ उत्पन्न करते हैं, उसे अलास कहते हैं। इसके बढ़ने पर जिह्वास्तंभ और जिह्वाके मूल स्थानमें अत्यन्त पाक होना शुरु हो जाता है।

दूषित कफ और रक्त जिह्वाको दबाकर, नीचे भागमें जो लालास्राव,

कण्डु और जलन सहित जीभके अगले भागकी तरह शोथ उत्पन्न करता है, उसे उपजिह्वा कहते हैं।

वातप्रधान जिह्वा-कैन्सरका लक्षणः- वातप्रधान क्षतमें जिह्वा अनेक स्थानोंमें फट जाता है, जिह्वा आहार्य द्रव्यका स्वाद ग्रहण करनेमें असमर्थ होता है, क्षतमें अत्यन्त यंत्रणा होती है, जिह्वाके ऊपरमें ग्रन्थियां और मांसपिण्ड की उत्पत्ति होती है एव यह अत्यन्त बढनेवाली होती है।

पित्तप्रधान जिह्वा-कैन्सरका लक्षण :—पित्तप्रधान जिह्वाके कैन्सर में क्षतसे अत्यन्त रक्तस्राव होता है। क्षतमें अत्यंत जलन होती है और वह शीघ्र ही पक जाता है।

कफप्रधान जिह्वा-कैन्सरका लक्षण :—कफप्रधान कैन्सरके घावमें अधिक पीव होता है, इसीमें जिह्वासे अधिक परिमाणमें लार निकलता है, जिह्वा अतिशय फूल जाता है, जिह्वाके ग्रंथियोंमें अत्याधिक मात्रामें मांसकी वृद्धि हो जाती है।

वातप्रधान जिह्वा-कैन्सरमें पारा, मीठाविप और हरितालवाले दवा-ईयोंका प्रयोग करना उचित है।

पित्तप्रधान जिह्वा-कैन्सरमें हरिताल, गंधक और ताम्रप्रधान औषधियोंका प्रयोग करना उचित है।

कफप्रधान जिह्वा-कैन्सरमें अभ्रक, तांबा और हरितालवाली औषधियां प्रयोग करनेपर सफलता मिलती है।

जिह्वा-कैन्सर रोगका पथ्य और अपथ्य :—

पथ्यः—प्रचुर परिमाणमें दुध, घी, शक्कर, पका-हुआ और मीठा फल का रस और जांगलमांसका रस सेवनीय। यकृतका दोष रहनेसे साधारण

रसा और भात एवं लस्सी सेवनीय। रसा और तरकारीमें मसाला बहुत कम परिमाणमें व्यवहार करना उचित है। सब समय दही मुखमें रखनेसे अच्छा फल मिलता है।

अपथ्यः—अतिरिक्त मिर्चा, दुष्पाच्य आहार, शाक, खटाई, नमक, जहां तक हो त्याग करना उचित है।

दशवाँ अध्याय

"आप्ततश्चोपदेशेन प्रत्यक्षकरणेन च।
अनुमानेन च व्याधीन् सम्यग्विद्याद्विचक्षणः॥
सर्व्वथा सर्व्वमालोच्य यथासंभवमर्थवित्।
अथाध्यवस्येत्तत्त्वे च कार्य्ये च तदनन्तरम्॥
कार्य्यतत्त्वविशेषज्ञः प्रतिपत्तौ न मुह्यति।
अमूढः फलमाप्नोति यदमोहनिमित्तजम्॥
ज्ञानबुद्धिप्रदीपेन यो नाविशति तत्त्ववित्।
आतुरस्यान्तरात्मानं न स रोगात्विमुह्यति॥"

(इति चरके)

दाँतके मसूड़ा का कैन्सर

दाँतके मसूड़ेके कैन्सरकी प्रथम अवस्था :—दाँतके मसूड़ोंका कैन्सर नानारूपोंमें उदय होता है।

१. पहले दाँतके मसूड़ोंके किसी एक ओर फट जानेकी तरह घाव होते देखा जाता है। धीरे धीरे यही बढ़कर घावका रूप धारण कर लेता है और उसमें गहराईपन भी आ जाता है।

२. किसी किसी समय दाँतके मसूड़ेके पास अर्थात् दन्तवेष्टमें एक तरफ छोटे छोटे दानेके आकारके अर्बुदका आविर्भाव होता है, एवं क्रमशः यही अर्बुद एकसाथ मिलकर एक बड़े अर्बुदकी सृष्टि कर देते हैं। यह अर्बुद क्रमशः बढ़ता है एवं गालके बाहरकी ग्रंथियाँ आक्रान्त होती हैं और गाल और गला फूलकर एक हो जाते हैं और बाहरकी ग्रन्थियोंमें पीड़ा आरम्भ हो जाती है।

३. किसी-किसी समय दन्तवेष्टमें किसी एक तरफ व दोनों तरफ फूलगोभीके दानेकी तरह फोड़ा और अंकुरकी उत्पत्ति हो जाती है एवं धीरे धीरे यही अकुर एक साथ होकर बढ़ जाते हैं।

४ किसी-किसी समय प्रथम दाँतकड़ा की तरह दाँतका मसूड़ा फूल उठता है एव अनेक समय यह दाँतकड़ा बोलकर उपेक्षित हो जाता है। क्रमशः इसी दाँतकड़ा से दाँतके मसूड़ेके भीतर गड्ढा हो जाता है, और यही गड्ढा क्रमशः बढ़कर गालके इस पारसे उस पार हो जाता है।

५ कभी कभी दाँत उखाड़नेकी वजहसे भयंकर कैन्सररोगकी उत्पत्ति हो जाती है। अनेक समय दन्तचिकित्सकोंके भ्रान्तिवश या रोगीके दुर्भाग्यवश कच्चे दाँतको बलपूर्वक उखाड़नेसे दाँतकी जड़में घाव हो जाता है और यही घाव समय पाकर दाँतके मसूड़ेके कैन्सरमें परिवर्तित हो जाते हैं।

६. अनेक बार देखा गया है कि बहुत दिनोंसे हिलतेहुए दाँतोंके कारण मसूड़ाके फूलनेपर और जल गिरनेके वास्ते रोगी बहुत दिनों तक पीड़ा पाकर अन्तमें दन्त-चिकित्सकोंकी शरणमें जाता है। इस समय व्रण (क्षत) का आम, पच्यमान एवं परिपक्वा अवस्था न समझनेके

कारण वहुतसे अपरिणामदर्शी चिकित्सक घावकी कच्ची दशामें आपरेशन कर देते हैं, जिससे दुःसाध्य कैन्सर रोगकी उत्पत्ति हो जाती है।

७. रोगीको कभी कभी आमवातका दोष होनेसे रोगीके दाँतके चारों तरफके मांस फूल जाते हैं और वहुत दिनों तक असहनीय पीड़ा होती है। इस पीड़ाको दूर करनेके लिये जब रोगी चिकित्सककी शरणमें जाता है, उस समय चिकित्सक यदि आमवातका दोष नहीं पकडकर दाँतोंके फूले हुए मसूड़ोंका आपरेशन कर देता है, तो ऐसा होनेपर अधिकांश क्षेत्रमें घाव अच्छा नहीं होकर कैन्सरके रूपमें परिणत हो जाता है।

दाँतके मसूड़ोंके कैन्सरकी दूसरी अवस्था :- रोगकी दूसरी अथवा मध्यावस्थामें विभिन्न प्रकारके दाँतके मसूड़ोंके कैन्सरकी निम्नलिखित अवस्था होती है।

१. इस समय घावमेंसे कभी कभी खून गिरने लगता है।

२. अर्बुदोंमें क्रमशः वृद्धि होने लगती है।

३. वाहरकी ग्रन्थियां आक्रांत होकर ईंट की तरहसे सख्त होने लगती हैं।

४. इस समय बढे हुए घावसे लालास्राव भी प्रारम्भ हो जाता है।

५ इस समय रोगीके मुँहसे दुर्गन्ध आने लगती है।

दाँतके मसूड़ोंके कैन्सरकी तीसरी अवस्था :—रोगकी तीसरी अवस्थामें रोगीको बीच बीचमें ज्वर होता है और कुछ दिनों तक ज्वर आनेके वाद वन्द हो जाता है एवं फिर कई दिनोंके वाद पुनः ज्वराक्रांत होता है। इस तरह प्रत्येक वार ज्वराक्रांत होनेके वाद रोगी दुर्वल होता जाता है। और उसकी जीवनशक्ति क्रमशः क्षीण होने लगती है। भयंकर

पीड़ा इस अवस्थामें दूसरी उल्लेखनीय विषय है। इस समय रोगीके विभिन्न अंगोंमें पीड़ा होती है। दाँतके मसूड़ोंमें घाव होनेके कारण किसीके शिरमें, किसीके आक्रान्त ग्रन्थियोंमें, किसीके दोनों कानोंमें और किसीके दन्तवेष्टके चारों तरफ भयंकर पीड़ा होती है।

झरनेकी तरहसे लालास्राव इस अवस्थामें तृतीय उल्लेखनीय घटना है। कभी कभी लालास्राव इतना अधिक होता है कि रोगी हरवक्त पीक-दान हाथमें लिये ही रहता है। लालास्राव विशेष दुर्गन्धित रहता है। सर्वापेक्षा उल्लेखनीय एवं पीडादायक चौथा उपसर्ग है, जबड़ोंका रुक जाना। इस अवस्थामें रोगी कुछभी भोजन नहीं कर पाता और बीच बीचमें पेटमें भयंकर पीडा होकर पतली दस्त होती है।

पाँचवा उपसर्ग, बाहरकी ग्रन्थियोंका वृद्धिप्राप्त होना, ईंटकी तरहसे खड़न हो जाना और भीतरमें फूलगोभीके दानेकी तरह असंख्य अर्बुद निकलकर क्रमशः बढ़ता जाना है। इन अर्बुदों पर साधारण चोट लगनेसे अजस्रधारसे रक्त गिरने लगता है। कभी कभी यों भी पिचकारीकी तरह अधिक मात्रामें रक्त गिरता है। इस समय कोई भी पदार्थ खानेमें रोगीको कष्ट होता है।

आपरेशनके बाद दाँतके मसूड़ोंके कैन्सरकी अवस्था: रोगकी कच्ची अवस्थामें आपरेशन करने पर, करवी वृक्षकी डाल काट देने पर थोड़े दिन बाद जिस तरह असंख्य शाखा-प्रशाखाएँ निकलती हैं, उसी तरह दाँतके मसूड़ोंके चारों तरफ फूलगोभीकी तरह छोटे-छोटे अर्बुद निकलते हैं। कभी-कभी यह घाव अच्छा न होकर दाँतके मसूड़ोंके भीतर एक नाली हो जाती है और वह नली दाँतके मसूड़ों और जबड़ोंको विदीर्ण

करके इस पारसे उस पार हो जाती है और इसी घावके मुखसे अविरल रूपसे लाला और रस निकलता है। आपरेशन करनेके बाद अधिकांश क्षेत्रोंमें घावकी मात्रा बहुत ही द्रुतगतिसे बढ जाती है।

दांत के मसूड़े के केन्सर की डीप-एक्सरे एवं रेडियम द्वारा चिकित्सा करनेके बादकी हालत:—डीप-एक्सरे एवं रेडियमके अत्यधिक मात्रामें प्रयोग करनेसे समस्त गन्डप्रदेश ईंटकी तरह सख्त हो जाता है। किसी-किसी स्थानमें बढे हुए ग्रन्थिसमूह थोड़े समयके लिये कम होकर बादमें अधिक मात्रामें वृद्धि प्राप्त कर लेते हैं। रेडियम और डीप-एक्सरेके अधिक प्रयोगसे गालोंका मांस जल जाता है और कुछ दिनके बाद प्रचण्ड रक्तस्रावके साथ खसक कर गिर पडता है एवं इसके बाद रोगीको लाला-स्राव, क्षत, क्षय, यन्त्रणा, रक्तस्राव, ज्वर अतिसार इत्यादि चौगुनी मात्रामें बढ जाते हैं।

दांतके मसूड़ों के केन्सर की चौथी अथवा अन्तिम अवस्था:—

इस दशामें रोगीको यक्ष्माकी तरह नियमितरूपसे ज्वर होता है और तीसरे पहर ज्वर आकर सवेरेमें उतर जाता है। इस प्रकार ज्वर होते होते क्रमशः रातदिन लगातार ज्वर आने लगता है। साथ में अतिसार का भी लक्षण दिखलाई पड़ता है। ऐसी दशामें कुछ दिनोंके बाद रोगीको सूजन हो जाती है। बादमें इस सूजनके सूख जानेपर रोगी दुबला हो जाता है। इस समय रोगी थोडा सा भी आहार्य पदार्थ नहीं खा सकता, जिसके कारण रोगीकी जीवनीशक्ति क्षय होने लगती है। इसके पश्चात् अवसाद, मोह एवं श्वासकष्टसे पीड़ित होकर मृत्युके मुंहमें गिर जाता है।

चिकित्सा:—दाँतके मसूड़ाके कैन्सररोगकी चिकित्सा करनेके पूर्वमें चिकित्सकको यह देख लेना होगा कि रेडियम, शस्त्रप्रयोग या डीप-एक्सरेके प्रयोग द्वारा रोगीके रोगकी हालतमें कुछ परिवर्त्तन हुआ या नहीं। यदि शस्त्रप्रयोग या रेडियम या डीप-एक्सरेका प्रयोग न हुआ हो एवं रोगी का बलमांस क्षय न हुआ हो तो उसे वमन, विरेचन, स्वेद एवं नस्योंके प्रयोग द्वारा शोधन कर लेना आवश्यक है। इसके बाद औषधि प्रयोग करना होगा। पहले यह ठीक कर लेना होगा कि रोग वातज, पित्तज, कफज अथवा सन्निपातज है या नहीं।

वातज मसूड़ोंके कैन्सरमें प्रबल यंत्रणा एवं कन्डुयुक्त सूजन होती है।

पित्तज मसूड़ोंके कैन्सरमें अधिक रक्तस्राव होता है और इसमें दाह, पाक एवं दुर्गन्ध रहती है।

कफज दाँतके मसूड़ोंके कैन्सरमें आवश्यकतासे अधिक लालास्राव होता है, पीब बहती है और घावमें सूजन रहता है।

सन्निपातज (त्रिदोषज) मसूड़ोंके कैन्सरमें दुर्जय पीड़ा, रक्तस्राव, लालास्राव, शोथ, दाह, पाक आदि वर्तमान रहते हैं।

दातके मसूडो के कैंन्सरकी चिकित्सा :—रोगीके बलमांस क्षय न होनेपर चिकित्सक को वमन विरेचन द्वारा रोगीका शरीरशोधन एवं नस्य कर्म द्वारा शिरःशोधन करना चाहिए। तत्पश्चात् निम्नलिखित कढ़का गण्डुषधारण कराना और उसके द्वारा मुख धुलाना चाहिए।

१. वट, अश्वत्थ, कटहाल, यज्ञडूमर, पाकुड़, आम, जामुन, बाबुल, बकुल, एरण्डमूलकी छाल, अमरूदके जड़की छाल, नारियल की जड़, सुपारी की जड़, कुरचि, बेर और कदम्ब, ये सभी १ तोलेकी मात्रामें लेकर ८ सेर

जलमें पकाकर २ सेर रहनेपर उतार के उसी जलसे गण्डुषधारण करावें तथा मुख भी धुलावें। इससे मुखकी दुर्गन्धि नष्ट होगी तथा दांतोंके घाव अच्छे होंगे। दन्तनाली होनेसे एवं उसके टेढे और अनेक मुखवाली होनेसे उस दांनको उखाड़कर, पटनाई हल्दी जलाकर उसके द्वारा उस नाली को दग्ध करना चाहिए, तत्पश्चात् निम्नलिखित कषाय (कढ़े) द्वारा कवल-धारण कराना तथा मुँह भी धुलाना चाहिए।

यथा,—जातिपत्र, मदनफल, खदिर एवं बोइची* छाल—इसमें प्रत्येकको २ तोला लेकर २ सेर जलमें पकावें। आधा सेर रह जानेपर उतार कर उसी कढ़ेसे कवलधारण करना चाहिए।

कढेको जितने देर तक मुहमें रखा जाता है, उतने समय तक रखने वाली क्रियाको कवलधारण कहते हैं।

मुस्तक, लोध, गौरी, थलपद्म, रसांजन, बकमकाष्ठ, इन सबका चूर्ण बराबर मात्रामें लेकर और मधुके साथ मिलाकर मुहमें रखनेसे सब तरहके दांतके रोग अच्छे होते हैं। इन सब पदार्थोंके कढ़ेके कवल-धारण करनेसे भी दन्तवष्टके रोगमें विशेष फायदा होता है।

महासहचर तैल, इरिमेदाद्य तैल, लक्षादि तैल और बकुलाद्य तैल मुखमें रखनेसे सब तरहके दन्तवेष्टके रोग दूर होते हैं।

गलौटो, लोध, उत्पल, अनन्तमूल, श्यामालता, अगुरु, रक्तचन्दन गेरुमिट्टी, सफेद कटकारि और पुनर्नवा, इन सबोंके कढे और कल्कसे तेल तैयार कर उसी तैलका नस्य लेनेसे मसूढ़ोंके रोग अच्छे होते हैं।

---

* यह बंगाल प्रान्तके जंगलमें मिलनेवाला एक प्रकारका फल है।

सहकारगुड़िका और वृहत् खदिरबटिका मुहमें धारण करनेसे समस्त दांतोंके रोग अच्छे होते हैं।

दारुहरिद्रा की छाल, नीम की छाल, रसांजन और इन्द्रयव, इन सबों के काढ़े में मधु मिलाकर पीनेसे सब तरहके मुखरोग अच्छे होते हैं।

१ नं० व्यवस्थापत्र

१. माणिक्यरस—प्रात.कालमे १० वृंद घी और २० वृंद मधुके साथ मिलाकर सेवन करें।

२. उदयभास्कररस—१० बजे आमहल्दीके रस और मधुके साथ।

३. खदिरारिष्ट—दोनों समय भोजनके बाद।

४. पचतिक्तघृतगुग्गुल—५ बजे थोड़ा गर्म दुधके साथ।

५. महाभल्लातक—शामको ७ बजे चीनी के शर्वत के साथ।

६. स्वर्णघटित महालक्ष्मीविलास—रात १० बजे, मधुके साथ मिलाकर थोड़ा गर्म दुधके साथ।

२ नं० व्यवस्थापत्र

१ रसतालक—प्रातःकालमें पानके रस और मधु मिलाकर सेवनीय।

२. आदित्यरस १० बजे, आदीके रस और मधु मिलाकर।

३. सारिवाद्यासव—दोनों समय भोजनके बाद।

४. पाशुपतरस—४ बजे नीबू के रस और मधु मिलाकर।

५. वृहत् योगराजगुग्गुल—रात ७ बजे वृहत् मंजिष्ठादिक्राथके साथ।

६. वसन्तमालतीरस—रात १० बजे मधुके साथ मिलाकर दुध और चीनीके साथ सेवन करें।

३ नं० व्यवस्थापत्र

१. वशपत्र हरितालभस्म—प्रातःकालमें गर्म घीके साथ ½ रत्ती मात्रामें सेवनीय।

२. शोधित हिंगुल—१० बजे परवलके पत्तोंके रस, चीनी और मधु मिलाकर। मात्रा २ रत्ती।

३ वासाद्राक्षारिष्ट—दोनों वक्त भोजनके बाद।

४. प्रवालयोग—दिनमें ४ बजे चीनी, दुध और मधुके साथ मिलाकर सेवन करें।

५ त्रैलोक्यचिन्तामणिरस—शामको ६ बजे मधु, दुध और चीनी के साथ।

पथ्य और अपथ्य

पथ्यः—दाँतके कैन्सरवाले रोगीके दूषित रक्तका मोक्षण करना, शरीर और शिरः विरेचन करना, वमन, कटु-तिक्त-कषाय रसका कवलधारण करना, साठी चांवल, जौ और गेहूंके आटेकी रोटी, मूंग, मसूर, चना, और अरहरकी दाल, जांगल मास, गाय और भैंसका घी, चीनी. बतासा, मिश्री आदि पदार्थ सेवनयोग्य हैं।

अपथ्य :—सब तरहका खट्टा फल, शीतल जल, दन्तकाष्ठ द्वारा दाँत साफ करना, रुक्षान्न खाना एवं जिनको चबाकर खानेमें कष्ट होता है वे सभी पदार्थ वर्जित हैं।

कपोल (गाल) का कैन्सर

गालके कैन्सर की पहली अवस्थाः—गालमें हठात् कहीं भी सूजन होकर गालका कैन्सर शुरू होता है। इस प्रकार का शोथ अर्बुदोंके आकार

गालके कैन्सर

का होना है। अधिकांश क्षेत्रोंमें ही इस प्रकारके सूजनमें पीड़ा भी होती है। किसी किसी क्षेत्रमें गालके भीतर फूलगोभीके फूलकी तरह छोटे-छोटे अर्बुदोंकी उत्पत्ति होती है और ये सभी अर्बुद एकत्रित होकर दुःसाध्य गालके कैन्सर रोगकी उत्पत्ति करते हैं। किसी-किसी क्षेत्रमें गालके भीतर मेढकके छत्तेकी तरह अर्बुद उत्पन्न होकर क्रमशः बढते हैं और रोगीके कानोंमें, गलेमें और शिरमें कठिन पीडा उत्पन्न कर देते हैं।

दूसरी अवस्था

गालके कैन्सररोगकी दूसरी अवस्थामें गालके बाहरकी ग्रथियां आक्रान्त होती हैं, गालके बाहरी भागमें शोथ उत्पन्न होता है एव यही शोथ बढ़कर धीरे धीरे गाल और गला एक हो जाते हैं। इसके बाद रोगीका जबडा पकड लेता है और रोगी क्रमशः मुख चलानेमें असमर्थ होकर किसीभी तरहसे कठिन पदार्थ खानेमें असमर्थ हो जाता है। वह रोगी किसी प्रकारसे केवल तरल पदार्थ ही सेवन कर सकता है।

तीसरी अवस्था

गालके कैन्सरकी तीसरी अवस्थामें रोगीके गालके बाहर और भीतर दोनों दिशाओंमें अर्बुदोंकी एक साथ वृद्धि होने लगती है और उन्हीं अर्बुदोंसे खून,लार और पीव बहने लगती है। इस समय रोगीके कानमें, गलेमे और शिरमें कठिन पीड़ा होने लगती है। किसी किसी क्षेत्रमें रोगीके गालमें छिद्र हो जाता है, जिससे रोगीको असह्य पीड़ा होती है।

चौथी या शेष अवस्था

गालके कैन्सरकी अन्तिम अवस्थामें रोगी धीरे धीरे किसी भी सख्त पदार्थोंके खानेमें असमर्थ हो जाता है। वह केवल तरल पदार्थ ग्रहण कर

पाता है और धीरे धीरे रोगी इस तरल पदार्थके ग्रहणमें भी असमर्थ हो जाता है। इस अवस्थामें रोगीको हमेशा ज्वर रहता है और आहार न खानेकी वजहसे रोगीकी जीवनशक्ति धीरे धीरे क्षीण होकर रोगी दुर्बल हो जाता है। इस प्रकार बलक्षय और दुर्बलताके कारण रोगी मृत्युकी ओर अग्रसर होने लगता है।

गालके कैन्सररोग की चिकित्सा

रोगीके बलमांसके क्षय न होने पर रोगीकी देहशुद्धि के लिए वमन, विरेचनादि पंचकर्म करना चाहिए। शरीरशुद्धिके पश्चात् रसौषधि प्रयोग करनेसे विशेष फल प्राप्त होता है।

घाव धोनेके लिए त्रिफला और नीमकी पत्ती द्वारा पकाया हुआ जल लेना चाहिए। जबड़ोंके बंद होने पर दशमूलके कढे द्वारा कुल्ला करना चाहिए।

प्रातः मधु, दोपहरको गाय अथवा भैंसका घी, तीसरे पहर थोड़ा गरम शुद्ध सरसोंतेलका कवलधारण करने पर जबड़ोंका बन्द होना ठीक हो जाता है।

बाबुल और बकुलकी छालका कढ़ा, रक्तचन्दन और मौलेटीका कढ़ा एवं हरेंका कढ़ा सेवन करनेसे गालके अर्बुद अच्छे होते हैं।

षड्बिन्दु, दशमूल एवं शाखोटतेलके नस्य लेने एवं महामाष तेलकी मालिश करने से ग्रंथिस्फीति एवं जबड़ोंका रुकना बन्द होता है।

इरिमेदाद्य तेल, बकुलाद्य तेल मुखमें धारण करनेसे गालके कैन्सररोगका घाव दूर होता है।

विशुद्ध मृगनाभी, खदिर, कपूर और गायका घी एक साथ मिलाकर प्रलेप देनेसे गालके कैन्सरके भीतर का घाव अच्छा होता है।

जेठीमध्यादिघृत एवं भूलताद्यघृतके प्रलेप देनेसे गालके भीतर एवं बाहर दोनों तरफके घाव ही अच्छे होते हैं।

प्रथम व्यवस्थापत्र

१. धातुगर्भ वृहत् योगराजगुग्गुल :—प्रातः वृहत् मंजिष्ठादि पाचन के साथ।

२. महामल्लातकः—समय १० बजे, चीनीके शरबतके साथ।

३. महादशमूलारिष्टः—दोनों समय भोजनके बाद ठण्डे जलसे।

४. पंचतिक्तघृतगुग्गुल :—संध्यामें अल्प गरम दुधके साथ।

५. सप्तप्रस्थ महामाषतैलः—फूलेहुए गालमें मालिस।

६. धातुगर्भ श्रीमदनानन्द मोदकः—संध्या समय थोडा गरम दुधके साथ।

द्वितीय व्यवस्थापत्र

१. महातालेश्वर रसः—प्रातः गायके घीके साथ।

२. मध्यम मंजिष्ठादि पाचनः—प्रातः ८॥ बजे।

३. शोधित हिंगुलः—१० बजे मधु, चीनी और परवलपत्तेके रसके साथ मिलाकर।

४. सारिवाद्यासवः—दोनों समय भोजनके बाद ठंडे जलसे।

५. वातारिरसः—तीसरे पहर सोंठ और एरण्डमूलके पाचनके साथ।

६. पंचतिक्तघृतगुग्गुलः—सध्यामें थोड़ा गरम दुधके साथ।

तृतीय व्यवस्थापत्र

१. वंशपत्र हरितालभस्मः—प्रात. गायके घीके साथ।
२ द्राक्षारिष्टः—दोनों समय भोजनके बाद ठंडे जलसे।
३. सर्ववातारिः—तीसरे पहर थोड़ा गरम दुधके साथ।
४. आदित्यरसः—संध्यामें अदरकके रस और मधुके साथ।
५. त्रिशतिप्रसारणी तैल.—संध्याको मालिश करे।

पथ्य और अपथ्य

निषेधः—शाक, अम्ल, दिनमें सोना, दतकाष्ठ द्वारा दाँतका साफ करना, सख्त पदार्थ जो चबाते समय कष्टदायक हों, शीतल जल, अधिक चिरपुर, अध्यशन, रुक्ष भोजनपदार्थो का खाना इत्यादि त्याज्य हैं।

पथ्यः—गायका घी, दुध, जांगल मांसका रस, जव-गेहूंकी रोटी, ताजे, मीठे और पके फलोंका रस एवं फल, मूंग, मसूर, चना और अढहरकी दाल, चीनी, बतासा, साठी चांवल यवागु (नरम पतले अन्न) इत्यादि।

तालु का कैन्सररोग

तालुके कैन्सर रोगकी प्रथमावस्था :—पहली दशामें प्रथम एक ही अर्बुदकी उत्पत्ति होती है। यह कभी कभी मांसपिण्डके आकारका होता है, कभी फूलगोभीकी तरह और कभी कभी यह अर्बुद गायके थनकी तरह लम्बे चमड़ेके रूपमें लटकने लगता है। क्रमसे इस प्रकार अर्बुद बढकर समस्त मुखगह्वर को बन्द कर देता है। अनेक स्थलोंमे इस मांसवृद्धिको देखनेसे ज्ञात होता है कि तालुसे और एक जीभ निकल रही है एव उसमें फूलगोभी को तरह असख्य छोटे अर्बुद निकलते हैं और लघु आघातसे ही उन छोटे-छोटे अर्बुदोंसे रक्तस्राव होने लगता है।

कहीं कहीं तालुके कैन्सरमें अर्बुद अथवा मांसांकुर बिलकुल ही नहीं दिखाई पडते। इन सब क्षेत्रोंमें तालुके भीतर क्षययुक्त अंतःप्रविष्ट क्षतोंकी उत्पत्ति होती है। ये घाव निरंतर भीतर ही भीतर बढते जाते हैं। एवं इन घावोंके बाहरी भागमें चारों ओर फूलगोभीके दानेकी तरह छोटे-छोटे अर्बुदोंकी उत्पत्ति होती है।

तालु-कैन्सरकी प्रथमावस्थामें ही दाह और पीडा होती है। इसके बाद स्वरमें विकृति होती है। रोगके होते ही प्रथम खाने और बातचीत करनेमें कष्ट प्रतीत होता है।

द्वितीयावस्था :—इस समय अर्बुदों एवं क्षतोंसे रक्तस्राव होने लगता है। प्रथम कुछ दिन प्रबल रक्तस्राव होकर सभी प्रकारकी ज्वाला एवं पीडाका अंत हो जाता है किन्तु थोड़े दिनों बाद फिर ज्वाला एवं पीडाकी वृद्धि होती है। इस समय घावसे लालास्राव भी प्रारम्भ हो जाता है एवं लालास्राव इतना अधिक होता है कि रोगीको हमेशा हाथमें पीकदान लेकर रहना पडता है। जिन रोगियोंको प्रथम उम्रमें सिफिलिस (उपदंश, गर्मी) या गनोरिया (सुजाक) हुआ रहता है उन्हीं रोगियोंका तालु का कैन्सर अंतःप्रविष्ट होता है। इस समय रोगीके कान, गले एवं मस्तक में कठिन पीडा होती है, खानापीना प्रायः बन्द हो जाता है। केवल तरल पदार्थका ही सेवन किसीप्रकार कर पाता है किन्तु वह भी नाक द्वारा बाहर निकल जाता है एवं रोगीका कान, गला और गाल फूलकर एक हो जाता है।

तृतीयावस्था—रोगीकी यह दशा बडी ही मर्मस्पद है। इस समय रोगी कुछ भी गलेके नीचे निगल नहीं पाता है। जलरहित उपवास करने पर बाध्य होता है और रोगी शुष्कसे शुष्कतर होता जाता है किन्तु तब भी

वह नहीं मरता। गाल, गला, कान एवं मस्तकमें अधिक पीड़ा, अविरत-रूपसे लालास्राव, बीच बीचमें रक्तस्राव, गलेकी निगलनेवाली शक्तिका ह्रास, वाक्रोध, श्वासकष्ट आदि उपद्रवों द्वारा पीड़ित होकर रोगी मर जाता है।

तालुके कैन्सरका शास्त्रीय निदान—दूषित कफ और रक्त द्वारा तालुमूलमें जो शोथ उत्पन्न होकर और क्रमशः वृद्धिप्राप्त होकर भिस्तीके आकारकी तरह हो जाता है, उसे कण्ठशुण्डी कहते हैं। इसमें तोद और दाह होती है और यह पकती भी है। कंठशुंडीमें तृष्णा, खाँसी और श्वास होता है।

कफ और रक्तके प्रकोपके कारण तालुमूलमें तुन्डीकेरी अर्थात् वन-कपासके फलकी तरह आकृतिविशिष्ट जो मोटा शोथ होता है उसे तुण्डीकेरी कहते हैं।

तालु-कैन्सरकी चिकित्सा—बहुत दिनोंसे मनुष्यके विभिन्न अङ्गोंके कैन्सररोगकी चिकित्सा करके मेरी यही धारणा हुई है कि किसी एक औषधिसे सभी प्रकारके कैन्सररोगकी चिकित्सा नहीं हो सकती। कैन्सर हुआ है, यह ठीक कर लेनेके बादही कैन्सरकी कोई एक निर्दिष्ट औषधि, जिससे किसी समयमें सफलता पाई गई है, प्रयोग करने पर सफलता नहीं मिलती है। एक एक अगोंके कैन्सरमें एक एक प्रकारकी औषधि विशेष कार्यकारी होती है। गुह्यप्रदेश (Rectum) के कैन्सरमें जिस औषधि के प्रयोगसे सफलता मिलती है, गलेके कैन्सरमें वह औषधि काम नहीं करती। वैदिक युगसे अर्थात् आयुर्वेदके प्रारम्भकालसे लेकर रस-चिकित्साके आविर्भावके पूर्ववर्तीकाल तक जितनी औषधियां आविष्कृत हुई हैं, वे सभी शरीरके भीतरी दोषोंके स्वरूपनिर्णयके पश्चात् प्रयुक्त होती हैं। दोषोंका

स्वरूप ठीक-ठीक निश्चित होनेपर खराव दोषोंको मिटानेके लिये औषधिका प्रयोग करनेसे दोप दूर होकर व्याधि नष्ट हो जाती है। किन्तु रसचिकित्सकगण अधिकांशक्षेत्रोंमें ही औषधिके विशेष प्रभाव पर अधिक निर्भर करते हैं। अधिकांशक्षेत्रोंमें ही वे दोषोंका विचार त्याग कर औषधिका प्रयोग करते हैं। एवं इससे अति आश्चर्यजनक लाभ देखा जाता है। एक ही औषधि विभिन्न प्रकारके क्षेत्रोंमें बहुत रूपोंमें व्यवहृत होकर बहुत प्रकारका फल प्रदान करती हैं। ऐसा होने पर भी क्षेत्रविशेषमें विभिन्न प्रकारकी औषधियोंकी उपयुक्तता तथा अनुपयुक्तता का ज्ञान रखना विशेष प्रयोजनीय है। रोगी एव रोग तथा रोगोत्पादक दोषों के स्वरूपकी विभिन्नताओंके कारण विभिन्न क्षेत्रोंमें विभिन्न प्रकारकी चिकित्सापद्धति उपदिष्ट हुए हैं। इसी कारण गलेके कैन्सर में जिस औषधि द्वारा लाभ होता है, तालुके कैन्सरमे उसी औषधिके प्रयोग से कोई फल नहीं प्राप्त होता। तालुके कैन्सरमें दूसरे प्रकारकी औषधियोंका प्रयोग किया जाता है।

तालुके कैन्सरमें औपधियोंका प्रयोग —

१—मौलेटी एवं नागवलाका कढ़ा अथवा इसका क्षीरपाक अर्थात् १ तोला मौलेटी, १ तोला नागवला, दुध १ पाव, जल १ सेर लेकर पकावे, जब १ पाव रह जाय तो उतार कर सेवन करनेसे तालुके कैन्सरमें फायदा होता है। कुछ दिन तक इस औपधिका सेवन करना होगा। शीघ्र ही फायदा होनेकी आशामें औषधि त्यागना उचित नहीं है।

२—अनन्तमूल और तोपचिनिका कढा :—१ तोला अनन्तमूल और १ तोला तोपचिनि आधा सेर जलमें पकाकर आधा पाव रहने पर उतार कर

सेवन करें। ज्यादा दिन तक इस क्वाथका सेवन करनेसे तालुका कैन्सर अच्छा होता है।

३—महाभल्लातकगुड:—दुध और चीनीके साथ प्रतिदिन आधे तोलेकी मात्रामें सेवन करनेसे ताल्लु का कैन्सर अच्छा होता है।

४—पंचतिक्तघृतगुग्गुलु:—थोडे गरम दुधके साथ सेवन करें।

५—पचनिम्बादि चूर्ण:—नीमकी छाल, फल, मूल, पत्ता एवं फूलको एकसाथ चूर्ण बनाकर, चौथाई तोले से आधे तोले तक घी, मधु और चीनीके साथ सेवन करनेसे ताल्लु का कैन्सर अच्छा होता है।

६—भावप्रकाशका हिंगादिचूर्ण गरम गायके घी और भातके साथ सेवन करनेसे ताल्लु का कैन्सर अच्छा होता है।

७—निम्नलिखित आसवके सेवनसे तालु के कैन्सर रोगमें विशेष लाभ होता है। नागवला, अनन्तमूल, अर्जुनछाल, मौलेटी, दारुहल्दी, अश्वगंधा, वेडेला, देवदारु, दुरालभा, कन्टकारी, वासकछाल, रक्तचन्दन, वच, कुड़, कांकड़ासिंगी, तालिशपत्र, कुटकी, आमला, हर्रा, बहेडा ये सब मिलाकर ५ सेर, पानी २ मन, गुड २५ सेर, धाईफुल सवा सेर, मनक्का १० सेर। इस आसवके सेवनसे तालु का कैन्सर अच्छा होता है एवं बलकी वृद्धि होती है।

८—मेरे द्वारा लिखे हुए "रस चिकित्सा" के तीसरे खण्डमें लिखित "उदयभास्कररस" इस रोगकी उत्कृष्ट औषधि है।

९—माणिक्यरस, रसमाणिक्य, रसतालक, घृत और मधुमें घोंटकर, अमृतादि कढ़ेके साथ सेवन करनेसे इस रोगमें लाभ होता है।

१०—तालु के कैन्सरमें सभी खाद्य पदार्थ नाक द्वारा बाहर आ जाने पर हिंगुलोत्थ पारेसे प्रस्तुत "रस पर्पटी"के व्यवहारसे फायदा होता है।

११—हंसपादी घृत, मधुघृत, दुर्वादिघृत, मूलताद्यघृत, जीवन्तीघृत, नागबलाघृत एवं गोक्षुराद्यघृतके सेवन करनेसे तालुके कैन्सरमें उपकार होता है। तालुके कैन्सरकी सडनको रोकनेके लिये नागबलाघृत, रक्तस्रावके लिये ज्येष्ठीमध्यादि घृत, दाह रोकनेके लिये सतावरीघृत, दुर्गन्ध दूर करनेके लिये अमृतादि घृत, निगलनेकी शक्तिके ह्रासके समय गोक्षुराद्यघृत एव सभी दोषोंको मिटानेके लिये महातिक्तघृत व्यवहार करना चाहिये। पित्तवाले तालुके कैन्सरमें द्राक्षादिघृत, द्राक्षारिष्ट ब्रृहत वासवलेह, ताम्र-भस्म का प्रयोग करना चाहिए। वातज तालुके कैन्सरमें नागबलाघृत, जीवन्तीघृत, पचतिक्तघृतगुग्गुलु, अश्वागंधारिष्ट और स्वर्णपर्पटीका प्रयोग करना चाहिए। कफज तालुके कैन्सरमें हरतालभस्म ही श्रेष्ठ औषधि है। ज्यादा दिनके अजीर्णसे उत्पन्न तालुके कैन्सरमें वज्रपर्पटी ही प्रधान औषधि है। गर्मी और सुजाकके प्रतिक्रियास्वरूप उत्पन्न तालुके कैन्सरमें अनन्तमूल और तोपचीनीके कढेके साथ व्रणारि गुग्गुलु, रसकर्पूर, महाव्रणारि, सप्तामृत रस, वंगरत्न, रसेन्द्रयोग आदि औषधियोंका प्रयोग करना चाहिए। आक्रान्त ग्रन्थियोंको आरोग्य करनेके लिये रौद्ररस, शीला-जतुप्रयोग, ताम्रभस्म, कांचनारगुग्गुलु, नागबलाके क्वाथके साथ सेवन करना चाहिए। स्वरभंगमें शोधित हिंगुल २ रत्ती, ब्राह्मीशाकके रस और मधुके साथ सेवनीय। रक्तकी कमीमें लौहभस्म कुलेखाडाके रस और मधुके साथ मिलाकर सेवन करना चाहिए।

गलेमें अधिक शोथ उत्पन्न होनेके कारण निश्वास बन्द होनेकी दशामें

साखोटतेलका नस लेना चाहिए और शिर पर दशमूलतेल मलना चाहिए। तालुके कैन्सरमें शस्त्रप्रयोगसे कोई विशेष फायदा नहीं होता। रोगकी अति प्रवृद्ध अवस्थामें Ultra Violet ray, choul's ray या deep X-ray के प्रयोगसे केवल सामयिक फायदा होता है। किन्तु ज्यादा मात्रामें प्रयोग करनेसे रोग अच्छा नहीं होता, वरिक क्रमशः बढने लगता है। फलस्वरूप इन सबोंका प्रयोग बहुत बुद्धिमतापूर्वक करना पडता है। इस विषयमें पहलेके अध्यायोंमें विस्तारपूर्वक कहा जा चुका है।

तालुके कैन्सरमें पथ्यापथ्य

पथ्य :—इस रोगमें प्रधानतः शुद्ध गायका घी और दुध, मीठे ताजे फलोंका रस पथ्यके रूपमें लेना चाहिए।

अपथ्य :—अत्यन्त चिरपुर, अम्लरस, मांस, मछली, अण्डा आदि सभी प्रकारके आमिष और छिलकायुक्त पदार्थ अपथ्य।

एकादश अध्याय

सत्त्वादीनां विकल्पेन व्याधितं रूपमातुरे।
दृष्ट्वा विप्रतिपद्यन्ते वाला व्याधिवलावले॥
ते भेषजमयोगेन कुर्व्वन्त्यज्ञानमोहिताः।
व्याधितानां विनाशाय क्लेशाय महतेऽपि वा॥
प्राज्ञास्तु सर्व्वमाज्ञाय परीक्ष्यमिह सर्व्वथा।
न स्खलन्ति प्रयोगेषु भेषजानां कदाचन॥

(इति चरके विमानस्थाने)

ओठका कैन्सरः—ओठका कैन्सर प्रायः दो प्रकारका होता है। प्रथम प्रकारके ओठके कैन्सरमें बहुत छोटे छोटे अर्बुद ओठके किसी एक भागमें निकलते हैं। धीरे धीरे यही बढ़कर पूरे ओठमें फैल जाते हैं। किसी किसी क्षेत्रमें एक ही और किसी किसी क्षेत्रमें दोनों ओठोंमें इसका आक्रमण होता है। ये अर्बुद देखने में फूलगोभीके आकारके होते हैं। इनमें से कुछ सफेद कोढ़की तरहसे सादा और कुछ किलास कोढ़की तरह लालआभायुक्त दिखलाई पड़ते हैं। इन सबोंके बढ़नेमें काफी समय लगता है। किसी किसी क्षेत्रमें ओठके एक भागसे अन्य भागोंमें फैलनेके लिये २५ वर्ष तक समय लगता है। फिर किसी किसी क्षेत्रमें ये बहुत ही शीघ्र विदीर्ण होकरके गलना प्रारंभ कर देते हैं। जिन सब क्षेत्रोंमें सड़नेवाली क्रिया अति शीघ्र ही आरंभ होती है, उन सब क्षेत्रोंमें अर्बुदोंसे बीच-बीचमें रक्तस्राव होता रहता है और साधारण हाथके स्पर्शसे ही विदीर्ण होकर इनसे अजस्र धारसे रक्तस्राव होना आरम्भ हो जाता है। कुछ दिन इस तरहसे रक्तस्राव हो जानेके बाद अर्बुदोंमें सड़न पैदा होकर इनमेंसे जलस्राव होने लगता है। जलस्रावके प्रारंभ होनेसे रोगीका शरीर शुष्क होने लगता है और क्रमशः शुष्कता बढ़ने लगती है। दूसरे प्रकारके ओठके कैन्सरमें पहलेसे ही अर्बुदोंकी उत्पत्ति नहीं होती। इस प्रकारके कैन्सरमें पहले ओठके किसी भी भागमें घाव उत्पन्न हो जाता है और वही घाव अन्तःप्रविष्ट होने लगता है और क्रमशः सम्पूर्ण ओठको क्षयके वशीभूत कर देता है। इस घावमें स्पर्श सहन करनेकी क्षमता नहीं होती। अर्थात् लघुआघातसे ही इसमेंसे रक्तस्राव प्रारंभ हो जाता है और घावसे दुर्गन्धि फैलने लगती है। अर्बुदवाले ओठके कैन्सरमें रोगी जितने

अधिक दिन कष्ट भोगता है, अन्तःप्रविष्ट ओठके कैन्सरमें रोगी उतने अधिक दिन तक कष्ट नहीं पाता। अर्बुदवाले ओठके कैन्सरसे अंतःप्रविष्ट ओठका कैन्सर अधिकतर यंत्रणादायक होता है।

अर्बुदप्रधान ओठके कैन्सरकी चिकित्सा

अर्बुदप्रधान ओठके कैन्सरकी बहुत ही अच्छी दवा "सोमनाथ ताम्र" है। बहुत दिनों तक इस औषधिको व्यवहार करनेसे अर्बुदोंकी वृद्धि कम हो जाती है और उनमेंसे रस और रक्तका गिरना बन्द हो जाता है। रौद्ररस, शिलाजतुप्रयोग, माणिक्यरस, रसमाणिक्य आदिके प्रयोगसे भी लाभ होता है। खदिरारिष्ट, महातिक्तघृत, अमृतभल्लातक आदि रोगकी अति प्रथमावस्थामें देनेसे फायदा होता है। अमृतादि पाचन और बृहत्मंजिष्ठादि पाचनके साथ हरिताल भस्म देनेसे भी फायदा होता है।

पथ्यः—गायका शुद्ध घी और दुध, बकरी का दुध, चक्की (जाँता) का पिसा हुआ आटा और चीनी, परवल, डुमर, झिंगा, करैला, अरुई आदि तरकारी, मूंग, मसूड, चने की दाल, नासपाती आदि पक्के मीठे फल भी खाये जा सकते हैं।

अन्तःप्रविष्ट ओठके कैन्सरकी चिकित्सा

इस प्रकारके कैन्सरकी श्रेष्ठ औषधि "रसपर्पटी" ही है। इसके प्रयोगसे शीघ्र ही मांस का सडना बन्द हो जाता है, क्षत और क्षय बन्द हो जाते हैं एवं रोग भीतर प्रवेश नहीं कर पाता। 'व्रणराक्षस तैल' के सेवन करनेसे इसमें फायदा होता है। "नागबलारिष्ट" अधिक दिन तक सेवन करने से अन्तःप्रविष्ट ओष्ठ का कैन्सर निवारित होता है।

अर्कताल, सोमनाथताम्र, महातिक्तघृत, अमृतभल्लातक, पंचतिक्तघृत-गुग्गुलु आदि औषधियों के सेवन से फायदा होता है।

पथ्यः—शाकाहारी भोजन, गव्यघृत, दुध, मिष्टान्न, ताजे फल, पूड़ी, रोटी इत्यादि पथ्य हैं।

नाक का कैन्सर

अनेकरूपोंसे नाकका कैन्सर उत्पन्न होता है। किसी किसी क्षेत्रमें नाकके ऊपर मांसवृद्धि होकर कैन्सर की उत्पत्ति होती है। किसी किसी क्षेत्रमें नासारान्ध्र में एक तरफ अथवा कभी कभी दोनों तरफ ही मांस बढ़ता है। किसी किसी क्षेत्र में नाक के भीतर मांसवृद्धि होती हैं और किसी किसी क्षेत्र में नासारान्ध्र के एक तरफ अथवा दोनों तरफ क्षययुक्त घाव होता है। (Corroding type)

नाक के कैन्सर में उपद्रव

साधारणत. रक्तस्राव, वेदना, दुर्गन्धयुक्त पीव का बहना, जलस्राव, स्वभावतः बात करनेवाली शक्तिमे कमी, बीच-बीचमें रक्तका बहना, सूंघनेवाली शक्तिमें कमी आदि उपसर्ग नासिका के कैन्सररोग में दिखाई पड़ती हैं।

नाक के कैन्सर रोग का एक विशेष कारण

मैंने जितने नाक के कैन्सर रोगियों को देखा है अथवा उनका इलाज किया है, उनमेंसे अधिकांश रोगी कम उम्रमें उपदंश या सुजाक रोग से ग्रस्त थे और वे अच्छी तरहसे उसकी चिकित्सा नहीं करवा पाये थे। इसी उपदंश और सुजाक रोग के मूल को पकड़ कर चिकित्सा करनेसे नाक के कैन्सर रोगी अच्छे हुए। इस प्रकारके भी बहुत रोगी देखे गये हैं, जिन्हें

वहुत दिनोंसे मस्तक में श्लेष्मा जमी थी और सब समय उनका मस्तक गर्म रहता था। कुछ दिनों तक इसी तरह से रहने के वाद रोगी के नाक में घाव पैदा हुआ और वही घाव वादमें कैन्सर में परिणत हो गया। परिणामस्वरूप यह देखा जाता है कि इस तरह भी नाकका कैन्सर उत्पन्न होता है।

क्षयशील और घावयुक्त नाक के कैन्सर की चिकित्सा

क्षयशील घावको त्रिफला और नीम की पत्तीमें पकेहुए जलसे धोना चाहिए। निम्नलिखित औषधियां नाक के इस प्रकार के घाव में विशेष फायदा पहुंचाती हैं।

(१) मधुक्षीरः—नागबला १ तोला और मौलेटी १ तोला लेकर १ पाव दुध और १ सेर जल के साथ पकाना चाहिए। जब दुग्धावशेष रह जाय तव उसे उतार कर, छान कर और उसमें मधु मिलाकर सेवन करना चाहिये।

(२) जीवन्तीक्षीरः—जीवन्ती १ तोला और अनन्तमूल १ तोला लेकर ऊपर लिखेहुए विधिके द्वारा जल और दुधके साथ पकाकर मधु मिलाकर खावें।

(३) अनन्तादि क्काथ—अनन्त मूल १ तोला और तोपचीनी १ तोला एक साथ आधा सेर जलमें पकावे। जव आधा पाव जल रह जाय, तो उसे उतारकर छान लें और उसे पी लें।

(४) चन्दनादि क्काथः—रक्तचन्दन १ तोला और मौलेटी १ तोला अनन्तादि क्कढ़े की तरह से वनाकर पीवे।

(५) खदिरादि क्वाथ:—खदिर काष्ठ, सोमराजी बीज, आँवला, हर्रा, बहेड़ा, नीमकी छाल, गुरूच, परवल का पत्ता, कन्टिकारी, बासक, चिरायता, चक्रमर्द, कोकिलाक्ष बीज, शतमूली, अनन्तमूल, सफेदचन्दन, तोपचीनी, रेउचीनी, वेनामूल, बाला इसमें प्रत्येकको डेढ़ छटांक लेकर आधा सेर जल में पकावें। आधा पाव रह जानेपर छान कर क्वाथको पीवें।

"बृहत् वासावलेह", "भल्लातक गुड़", "पंचतिक्त घृत गुग्गुल", "महातिक्तघृत", "अमृत भल्लातक घृत", इन सबको थोड़े गर्म दुध के साथ विधिवत ३ मास तक सेवन करने से नाक का कैन्सर अच्छा होता है।

ताम्रभस्म, सोमनाथताम्र, ताम्रसिन्दूर ये सभीप्रकारके नाकके कैन्सर की महौषधियां हैं।

शीशा भस्म, ताम्र भस्म, शीलाजीत, रस, गन्धक, हिंगूल, हरिताल, अभ्रक, लौह, वंग-इन सबको बराबर भाग में लेकर ७ दिन अनन्तमूल और तोपचीनीके कढे में भावना देकर (भींगाकर और धूपमें सूखाकर) २ रत्तीकी मात्रामें गोलियाँ बना लेनो चाहिये फिर नागवला और मौलेटीके कढ़ेके साथ सेवन करना चाहिए।

शतपुटित अभ्रक ८ तोला लेकर जीवनीयगण, अष्टवर्ग, मौलेटी, अनन्तमूल, नागवला और तोपचीनी, प्रत्येकके कढ़ेमें १-१ दिन भावना देकर इसके साथ ८ तोला हिंगुलोद पारद और ८ तोला आमलासार गन्धक मिलाकर घृतकुमारीके रसमें मर्दन करके गजपूटमें पाक करना होगा। पक जानेके बाद औषधि निकालकर २ रत्तीकी मात्रामें घी, चीनी और मधु मिलाकर खाना चाहिए। इससे क्षययुक्त घाव अच्छा हो जायगा।

पथ्यः—दूध, घी, मक्खन, छाना, चीनी, रोटी, पूड़ी, हलुवा, पराठा और ताजे मीठे पके फल इत्यादि पथ्य हैं।

अपथ्यः—अंडा, मछली, मांस, मिर्चा आदि अपथ्य हैं।

विशेष द्रष्टव्यः—नाकके कैन्सरमें डीपएक्सरे, चाल्र्सरे, रेडियम आदि द्वारा चिकित्सा करनेसे कोई फायदा नहीं होता।

आखके कैन्सरकी चिकित्साः—आँखका कैन्सर बहुत ही भयंकर होता है और अधिकांश क्षेत्रोंमें विशेषरूपसे यह मृत्युदायक होता है। सबसे पहले आँखके भीतर बहुत धीरे धीरे अर्बुदोंकी उत्पत्ति होती है। आँखसे पहले थोड़ा जल गिरता है, आँख टन टन करती है और सुईसे विधने जैसी पीड़ा होती है। धीरे धीरे ये अर्बुद बढ़कर आँखके भीतरी भागों को बाहरकी तरफ ठेलकर बाहर निकल आते हैं। क्रमशः यह वृद्धि अधिक होने लगती है और थोड़े दिनोंके बाद विदीर्ण होकर उससे प्रबल रक्तस्राव होने लगता है। किसी किसी क्षेत्रमें ये विदीर्ण न होकर सम्पूर्ण कपाल, कर्णमूल और गण्डप्रदेश एव किसी किसी क्षेत्रमें पूरा मुख मंडल फूलकर भयकर रूप धारण कर लेता है। इस समय ज्वर, खांसी, अरुचि, आक्रांत अङ्गोंमें वेदना आदि उपद्रव दिखाई देते हैं और रोगी भी क्रमशः दुर्वल होने लगता है। किसी-किसी क्षेत्रमें अर्बुद बाहिर्गामी न होकर अन्तः-प्रविष्ट होते हैं। इन सभी क्षेत्रोंमें अर्बुद घावमय होते हैं। इन घावोंसे रस गिरता है और बीच बीचमें रक्तस्राव भी होता है। क्रमशः घाव बढ़कर धीरे धीरे सम्पूर्ण आँखको नष्ट कर देता है।

मैने आज तक जितने आँख के कैन्सर रोगियोंको देखा है, उनके इस रोगका कारण अनुसन्धान करनेपर मुझे मालूम हुआ है कि उनको

मस्तक का कैन्सर

यौवनकालमें उपदंश हुआ था और उन्होंने उसका अच्छी तरह इलाज नहीं किया। आगे चलकर उसी उपदंशके कारण आँखके कैन्सरकी उत्पत्ति हुई। इसके अलावा जिसको प्रतिश्यायका रोग है, आखें अक्सर फूलती हैं और लाल होती हैं, उन सबोंको आँखका कैन्सर हो सकता है। जो सिमेन्ट, जूट, रुईके कारखाने और कोयलाकी खानमें बहुत दिन तक काम करते हैं, उन लोगोंके आँखमें भी कैन्सररोग होनेकी सम्भावना रहती है।

आयुर्वेदके मतानुसार गायका पवित्र घी सेवन करना ही आँखके सभी रोगोंके लिये सर्वोत्तम है। इसके बाद ही त्रिफलाका स्थान है। प्रतिदिन त्रिफलामें भिगे हुए जलसे आँखको धोने, उसका जल पीने तथा गाय का घी भोजनके साथ खानेसे कभी आखका रोग नही होता।

आखमें अर्बुद दिखाई पडने मात्रसे ही प्रातः पुनर्नवाके रसके साथ रौद्ररस का सेवन करना चाहिए। १० बजे "नित्यानन्द रस" अदरकके रस और मधुके साथ, दोनो समय भोजनके बाद "पथ्याद्यरिष्ट", तीसरे पहर "महात्रिफलादि घृत" दूधके साथ और रातको "आदित्यरस" अदरकका रस और मधु मिलाकर खाना चाहिए।

रक्तदोष रहने पर प्रातः माणिक्यरस और तीसरेपहर पचतिक्तघृत-गुग्गुलु सेवन करना चाहिये। अर्बुद यदि शीघ्रातिशीघ्र बढने लगे, तो अविलम्ब इसका अस्त्रोपचार कराना चाहिए। इसको बढा करके कैन्सररोग में परिवर्तित होने देनेकी अपेक्षा समय रहते अस्त्रोपचार करके एक आँखहीन होकर रहना सौगुना ज्यादा अच्छा है।

अन्तःप्रविष्ट क्षययुक्त अर्बुदकी चिकित्सा :—रसेन्द्रसार, अमृत-

भल्लातक, योगरत्नाकर, कोष्ठान्तपर्पटी, ताम्रपर्पटी, सोमनाथ ताम्र, महातिक्त-घृत आदि श्रेष्ठ औषधियाँ हैं।

आंखके अर्बुदोंमें डीप-एक्सरे अथवा रेडियमका प्रयोग नहीं चलता। अर्बुदोंके बढनेके पहले अस्त्रोपचार कराना एवं औषधि सेवन कराना ही सुचिकित्सा है। अन्तःप्रविष्ट क्षयशील क्षतको पहले कहेहुए त्रिफलादि कढेसे धोना चाहिए और उसके बाद मधुघृत सेवन करना चाहिए। मणिपर्पटीके व्यवहारसे आँखका अर्बुद विशेषरूपसे अच्छा हो जाता है। हरतालभस्म के प्रयोगसे अर्बुदोंकी द्रुत वृद्धि बन्द हो जाती हैं और अन्तःप्रविष्ट घाव अच्छे हो जाते हैं।

पथ्य और अपथ्य :—अधिक मात्रामें गायका घी, रोहित मछली का मस्तक, ताजा फल, दूध, मांस, मिष्टान्न आदि ग्रहण करना उचित है और हवादार तथा प्रकाशयुक्त सूखे और खुले घरमें रहना जरूरी है।

मस्तकका कैन्सर—मस्तकका कैन्सर आंखके कैन्सरके सदृश भयानक होता है। यह अधिकांश क्षेत्रमें ही उपेक्षित रहता है। इस रोगमें पहले बर्गदके फलकी तरहसे अथवा किसी किसी क्षेत्रमें कूचेंकी तरहसे अर्बुद शिरके ऊपर निकलता है। धीरे धीरे यही अर्बुद बढ़ने लगता है, जिससे रोगी का शरीर दुर्बल हो जाता है। धीरे धीरे ज्वर आने लगता है। यक्ष्मा-रोगीकी तरह प्रत्येक दिन तीसरे पहर ज्वर होता है और रातको उतर जाता है। प्रतिदिन ज्वरकी मात्रा बढती जाती है, किन्तु इस अर्बुदके पकनेका कोई लक्षण नहीं दिखाई पडता। मगर यह बढकर प्रायः दीमकके घरकी तरह आकार धारण कर लेता है और शरीरके समस्त रक्तको खींच लेता है। क्रमशः एक अर्बुद अनेक अर्बुदोंमें परिणत हो जाता है और

वल्मिकस्तूपकी तरहसे रूप धारण कर लेता है। चरकके मतानुसार अर्बुद द्विधाकृत हो जाने पर अच्छे नहीं होते। इस अवस्थामें रोगीको पीड़ा प्रारम्भ होती है। पीड़ा पहले किसी निश्चित समय पर आरम्भ होती है और बहुत कम समय तक रहती है। धीरे-धीरे यन्त्रणाभोगके समयकी मात्रा बढ जाती है और यंत्रणा आरंभ होनेके निश्चित समयमें भी परिवर्त्तन हो जाता है। रोगी क्रमशः कमजोर होता जाता है। गर्दन और गलेकी शिराएँ मस्तकके साथ तन जाती हैं। रोगी शिर उठानेमें असमर्थ हो जाता है। अर्बुदों की वृद्धि एव यन्त्रणा इतनी बढ जाती है कि रोगी बीच बीचमें बेहोश हो जाता है। शिरके कैन्सरकी यह बढ़ी हुई अवस्था बहुत भयंकर होती है।

मस्तकके कैन्सरके विषयमें सबसे पहली जानकारी यह होनी चाहिए कि यह पहले एक छोटे अर्बुदके आकारमें उत्पन्न होता है। इन अर्बुदोंकी प्रथमावस्थामें ही यदि अस्त्रोपचार अथवा क्षारके प्रयोग द्वारा चिकित्सा कर ली जाय, तो सैकड़ेमें नब्बे रोगी हो अच्छे हो जाते हैं। जब अर्बुद पुराने हो जाते हैं, तब अस्त्रोपचार और क्षारका प्रयोग काम नहीं करता। उस समय डिप-एक्सरे, एक्सरे, रेडियम, जलौका प्रयोग, वाह्य प्रलेप एव स्वेदादि प्रयोग से भी कोई लाभ नही होता। अधिकाश अर्बुद बढ़ने लगते हैं और निरन्तर पीड़ा बढ़ने लगती है, जिससे रोगीका जीवन धारण करना असह्य हो पड़ता है। इस तरह अर्बुदोंको यदि रोका न जाय, तो ये खूब धीरे-धीरे बढ़ते हैं और अति धीरे धीरे त्रिदोषयुक्त होते हैं। इसप्रकार अर्बुदोंके होने पर भी रोगी बहुत दिनो तक जिन्दा रहता है।

बुद्धिमान चिकित्सकको चाहिए कि द्विधाविभक्त अर्बुदोंकी चिकित्सा

किसी भी तरह बाह्यप्रयोग द्वारा न करें। मैं [illegible] अपने अनुभव द्वारा कह रहा हूं कि बाह्यप्रयोगों द्वारा [illegible] अर्बुदोंकी चिकित्सा सब क्षेत्रोंमें असफल रही है और रोगीकी पीड़ा अधिक [illegible] गई है। बाह्यप्रयोगके अर्थमें मैं डीप-एक्सरे, रेडियम, ऑपरेशन इत्यादिके विषयमें कह रहा हूं। इसके अर्बुदोंके [illegible] रोगके रोगीके अर्बुदोंपर विशेष ध्यान न रखकर उनके साधारण शारीरिक स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान रखना चाहिए। साधारण स्वास्थ्यमें किसी भी तरहका विषम्य उपस्थित हो जानेपर उस वैषम्यको दूर करनेकी चेष्टा पहले करनी चाहिए। आभ्यन्तरिक दोषोंकी समता और निरामयताका विचार कर रक्तशुद्धि करनेवाली और पुष्टिकर औषधियोंका प्रयोग करना चाहिए। शरीरमें अधिक स्नेह रहने पर जिससे मेदका नाश हो, वही औषधि देनी चाहिए। मेदका नाश होनेसे शरीरके दोष दूर होते हैं, जिसके कारण अर्बुदोंकी अभिवृद्धि बन्द होती है और क्रमसे अर्बुद नष्ट हो जाते हैं। सुश्रुतके विधि अनुसार क्षार तैयार करके उसी क्षारका १ भाग, नौसादार १ भाग, १ भाग पत्थरी चूना एकत्र मिलाकर जलके साथ मर्दन कर लेना चाहिए। इसके पश्चात् छूरेसे सिरके बाल साफकर अर्बुदों पर इसे लेप करनेपर २४ घंटेके भीतर अर्बुद पके जामुनकी तरहसे रंग धारण कर उत्पाटित हो जाते हैं। इसके एक ही बारके प्रयोगसे अधिकांश क्षेत्रोंमें अर्बुद कम हो जाते हैं। यदि एक बारके प्रयोगसे सफलता पूरी न मिले, तो दो-तीन दिन एकसे अधिक बार लगाना चाहिए। अर्बुदोंके नष्ट होजानेपर मधु और घी मिलाकर सद्यव्रणकी चिकित्साके अनुसार चिकित्सा करनी चाहिए।

मस्तकके कैन्सरमें शस्त्रप्रयोग और महाभल्लातकके प्रयोगसे अच्छा फल दिखलाई पड़ता है।

द्वादश अध्याय

सचंयंच प्रकोपंच प्रसरं स्थानसंश्रयम् ।
व्यक्ति भेदंच यो वेत्ति दोपाणां स भवेद्भिपक् ॥
सचंयेऽपहृता दोपा लभन्ते नोत्तरा गतीः ।
ते तूत्तरासू गतिपु भवन्ति बलवत्तराः ॥
सर्व्वैर्भावैस्त्रिभिर्वापि द्वाभ्यामेकेन वा पूनः ।
संसर्गे कुपितः क्रुद्धं दोषं दोपोऽनुधावति ॥
संसर्गे जो गरीयान् स्यादुपक्रम्यः स वै भवेत् ।
शेपदोपाविरोधेन सन्निपाने तथैव च ॥

(इति सुश्रुते सूत्रस्थाने)

अन्ननाली का कैन्सर

सभी प्रकारके कैन्सर रोगोंसे अन्ननाली का कैन्सर विशेपरूपसे मारात्मक होता है। यह अधिक कष्टदायक और शीघ्र प्राणनाशक भी होता है। इस रोगमें बहुत थोड़े समयमें ही खानेकी शक्ति नष्ट हो जाती है एवं श्वास बन्द हो जाती है और रोगी मर जाता है।

रोगका स्वरूप—अधिकांश क्षेत्रोंमें ही पाकस्थलीके कुछ ऊपर एक अर्वुद की सृष्टि होती है। धीरे धीरे यह बढ़ता है और रोगीको खाद्य पदार्थके खानेमें, यहाँ तककी जल भी पीनेमें कष्ट होता है। क्रमशः यह अर्वुद बढ़कर अन्ननालीका मुख बन्द कर देता है। उस समय रोगी कुछ भी ग्रहण नहीं कर पाता और धीरे धीरे वह दुर्वल होने लगता है। अन्तमें रोगीकी श्वास बन्द हो जाती है और वह मर जाता है। किसी किसी क्षेत्रमें ये अर्वुद इतनी दूर

तक बढ जाते हैं कि सम्पूर्ण पाकस्थली तक घेर लेते हैं। किसी किसी क्षेत्रमें हृत्पिण्ड तक भी फैल जाते हैं। किसी किसी क्षेत्रमें सेकण्डरी ग्रोथकी तरह दोनों फुसफुसों पर भी आक्रमण करते हैं और रोगी अति शीघ्र ही मृत्युके जालमें फँस जाता है।

रोगका प्रकोपः -वर्तमान समयमे बंगालमें ही अन्ननालीका कैन्सर विशेषरूपसे देखा जाता है। स्त्री पुरुष दोनों ही इस रोगमे आक्रान्त होते हैं। बगाली जाति ही इस रोगके अधिक शिकार होते हैं और मोटे आदमियोंकी अपेक्षा पतले आदमी ही इस रोगसे अधिक पीडित होते हैं।

कारण .—मैंने अनुसधान कर देखा है कि यह रोग विशेषरूपसे अग्निमांद्य और अजीर्ण रोगके कारण उत्पन्न होता है। अच्छी तरहसे न चबाकरके जल्दी-जल्दी खाने वाले आदमी ही इसके शिकार होते हैं। जो व्यक्ति अधिक तम्बाखू खाते हैं, वे भी इस रोगके अधिक शिकार होते हैं। अग्निमांद्य रहने पर भी शराव पीना इस रोगका प्रधान कारण है। जिनको अधिक दिनसे अम्लका रोग है, पेटमें वायु होती है, चूनाखट डकार पैदा होनी है एवं जो आमके रोगी हैं, बोच बीचमें आमाशय से भी पीड़ित होते हैं तथा पतला दस्त होता है, उनका आँव गिरना वन्द होकर अन्ननालीके मार्गमें अर्बुदोंकी सृष्टि होती है। जो बीच बीचमें कठिन उपवास करते हैं, उनमेंसे भी वहुत इस रोगसे पीडित होते हैं। मैंने चिकित्सासूत्रसे वहुत सी हिन्दू विधवाओंको इस रोगसे आक्रान्त होती हुई देखा है। एव खोज करने पर हमें पता चला है कि उनमें से प्रत्येक ही बहुत दिन तक कठोर उपवास की थीं। पेचिश रोग, अम्लपित्त रोग, अजीर्ण रोग और रसशेषाजीर्ण रोगसे जो अधिक दिन तक पीड़ित हैं, वे भी

इसके शिकार होते हैं। आज तक मैंने इस रोगाक्रान्त जितने रोगियोंको देखा है, उनमेंसे ८० प्रतिशत ही अम्लपित्त, अजीर्ण एवं पेटमें वायु होनेवाले रोगोंसे बहुतदिनों तक भोगते रहे थे। आयुर्वेदमें कहा गया है कि मन्दाग्नि ही सब रोगोंकी जड़ है। विद्वानोंका यह कहना जितना अन्ननालीके कैन्सरमें लागू होता है, उतना अन्य किसी रोगमें नहीं। जो रोगी कफ, श्वास और साथमें अजीर्णसे पीडित रहते हैं, उन्हींको अन्ननालीका कैन्सर होनेकी सम्भावना अधिक रहती है।

बहुधा इस रोगमें अर्बुद नहीं उत्पन्न होते। केवल अन्ननाली के चमड़ेका पर्दा ही बढ़ जाता है, जिससे गलेकी निगलनेवाली शक्ति कमजोर हो जाती है और खाद्यपदार्थ निगलनेमें कष्ट मालूम होता है। इसमें कभी कभी रोगी दूध नहीं पी सकता, किन्तु जल पी सकता है और कभी कभी रोगी तरल पदार्थ भी खानेमें असमर्थ हो जाता है।

चिकित्सा:—यह रोग शरीरमें चोरकी तरह घुसकर धीरे धीरे बढ़ता है और जितने दिनों तक रोगीको खाद्य-पदार्थ निगलने में कष्ट नहीं होता, उतने दिनों तक रोगी इस रोगके आक्रमणके सम्बन्धमें कुछ भी नहीं समझ पाता और इसी वजहसे इस रोगकी चिकित्सा भी समयानुसार नहीं हो पाती। भीतरके अर्बुद त्रिदोषयुक्त हो जाने पर असाध्य हो जाता है। कुछ पहले ही रोगका आभास मिल जाने पर प्रायः प्रत्येक रोगी अच्छा हो जाता है। बहुत साधारण क्रियाके द्वारा कुछ दरिद्र रोगी बहुत ही सहजमें अच्छे हो

१ ...डा सर्वदा मुखमें रखकर चूसनेसे

कैन्सरमें लाभ होता है और करीब १०० हर्रा इसी प्रकार चूस लेने पर सम्पूर्ण लाभ देखा गया है।

२.—खाद्यपदार्थ काफी समय तक चबाकर खानेसे यह रोग धीरे धीरे अच्छा हो जाता है। किन्तु यह क्रिया काफी दिनों तक करनी पड़ती है।

३.—'सोमनाथ ताम्र', अदरकके रस और मधुमें मिलाकर प्रातः कुछ दिनों तक व्यवहार करनेसे अर्बुदका आकार कम हो जाता है, गला साफ होता है और खाद्यद्रव्य आसानीसे पाकस्थलीमें प्रवेश कर सकता है।

४—'ताम्रपर्पटी', पर्पटी सेवनके नियमानुसार सेवन करनेसे बहुत दिनोका प्रबल अम्लपित्त दूर होता है और अन्ननालीका अर्बुद भी कम होता है, जिससे खाद्यद्रव्य आसानीसे निगला जा सकता है।

५.—गगनपर्पटी, रसेन्द्रपर्पटी, भूदेवपर्पटी एवं वज्रपर्पटी, इनमेंसे कोई भी, पर्पटीके नियमानुसार सेवन करनेसे अन्ननालीका अर्बुद अच्छा होता है।

६.—"शिलाजतु प्रयोग" के व्यवहारसे भी काफी फायदा होना है।

७.—नागबला, मौलेठी, अनन्तमूल एव निसिन्दापत्र, इन सबको बराबर दो तोला लेकर आधा सेर जलके साथ पकावे। आधा पाव रहने पर उतार ले और छानकर उस क्राथ को पीनेसे इस रोगमें फायदा होता है।

८—आंवला, हर्रा, बहेड़ा, नीमकी छाल-ये चार पदार्थ अथवा सोंठ और गोखरू—ये दो अथवा वासकछाल, नीमछाल, परवलका पत्ता, गुलञ्च, कटकारी, आंवला, हर्रा, बहेड़ा-ये आठ पदार्थ अथवा सोंठ, पीपल, गोलमिर्च, पीपलमूल, चव्य, चिरयता—ये छः पदार्थ उपर्युक्त नियमानुसार क्राथ बनाकर खानेसे फायदा होना है।

तीव्र अम्लपित्त होनेसे यह रोग उत्पन्न होता है। प्रारम्भावस्थामें ही यदि रोग पहचाना जा सके तो सबेरे "रसपर्पटी", पिसा हुआ जीरा दो रत्ती, हींग एक रत्ती और मधुके साथ पर्पटी सेवनके नियमानुसार और तीसरे पहर "कृष्णचतुर्मुख" त्रिफला भिगोयेहुए जलके साथ खानेसे यह रोग बहुत थोडे दिनोंमें ही निर्मूल हो जाता है।

हृत्पिण्ड आक्रमण करने पर नागबला, गोखरू, अर्जुनछाल, अश्वगन्धा और बेड़ेला-ये चार पदार्थ उपर्युक्त विधिके अनुसार क्वाथ बनाकर साथमें "गगनपर्पटी" २ रत्तीकी मात्रामें खानेसे यह रोग अच्छा होता है।

फुसफुसके आक्रमण पर "वंशपत्र हरितालभस्म" चौथाई रत्तीकी मात्रा में सेवन करना चाहिए। रक्तवमन और रक्तस्रावमें शीतल जलके साथ "उडुम्बरामृत" एवं रक्तचंदन और मौलेटी का क्वाथ प्रयोग करना चाहिए।

पथ्य:—दुग्ध, गायका घृत मिला हुआ गरम दूध, मांसका यूष, फलोंका रस और गायके घृतका हलवा। प्रथमावस्थामें सीधासाधा दाल भात और दहीका घोल। पहले यदि खाद्यद्रव्य गलेमें अटक जाता हो तो उसके लिये "हिङ्गाष्टक चूर्ण"अथवा "हिङ्गादि चूर्ण" काममें लाना चाहिए। यदि अम्लपित्त द्वारा यह रोग उत्पन्न हुआ है, तो इसमें "हिङ्गाष्टक चूर्ण" बहुत फायदा करता है। हिङ्गाष्टक चूर्ण अथवा हिङ्गादि चूर्ण भोजनके पहले कई ग्रास अन्नके साथ मिलाकर खानेसे उत्तम फायदा होता है।

स्तन का कैन्सर

रोग की पहली अवस्था:—

अधिकांशतः यह पहले बाएँ स्तनमें ही होता है। स्तनका कोई एक भाग पहले लाल होकर फूल जाता है और दर्द भी करता है। कभी कभी पहले

स्तनका अग्रभाग आक्रान्त होता है एवं वह भीतरकी ओर धँस जाता है। धीरे धीरे समस्त स्तन संकुचित होकर अन्तःप्रविष्ट हो जाता है और चारों तरफसे खिंचाव सा लेकर तन जाता है। कभी कभी स्तनका अग्रभाग लाल होकर अर्बुदके आकार फूल उठता है और पूरा स्तन भयंकर रूप से फूल कर ईंटकी तरह सख्त हो जाता है। किसी किसीके दोनों स्तनोंमें एक साथ ही इसका प्रकोप होता है और चारों तरफ स्रोतकी तरह रोगकी शिराजाल फैल जाती हैं। बहुत सी बालविधवाओंको यह रोग खूब धीरे धीरे बढ़ता देखा गया है। दश-बारह संतानोंकी माताओंको, जो ४० से ५० वर्ष तककी अवस्थावाली सधवा थीं, उनके दोनों स्तन एक साथ ही प्रबल रूपसे आक्रान्त होकर शीघ्रातिशीघ्र तीन महीनेके अन्दर ही ईंटकी तरह कड़ा होते देखा गया है। वन्ध्या महिलाएँ स्तनके कैन्सरसे अधिकतर पीड़ित होती हैं। इनमें से अल्प उम्रवाली औरतोंको कैन्सर मर्मान्तिक रूप धारण कर लेता है। इन सभी क्षेत्रोंमें पहले एक स्तन पीड़ित होता है। इसके बाद यह धीरे धीरे बढ़कर स्तनका क्षय करने लगता है। क्षय करते करते दो वर्षके भीतर पूर्णरूपसे उक्त स्तनको नष्ट कर देता है। इसके बाद दूसरे स्तन पर आक्रमण करता है और इस तरह दो वर्षके भीतर उसे भी नष्ट कर देता है। फिर और दूसरे अंगों पर आक्रमण करके धीरे धीरे रोगिणीको मृत्युके मुखमें गिरा देता है। सभी क्षेत्रोंमें स्तनका अग्रभाग पहले आक्रांत नहीं होता। स्तनके किसी भी भागमें अर्बुद उत्पन्न हो सकते हैं। कुछ क्षेत्रोंमें यह पहलेसे ही त्रिदोषयुक्त हो जाता है और कभी कभी रोगकी उत्पत्ति एवं वृद्धि धीरे धीरे रोगिणीकी अज्ञानतामें ही होती है। अधिक उम्रवाली वृद्धा विधवा स्त्रियोंके स्तनमें जो कैन्सर होता है वह अति धीरे धीरे बढ़ता है और सहसा

उतना मारात्मक भी नहीं होता। साधारणतः अर्बुदोंकी उत्पत्ति होकर इस रोगका प्रकाश होता है और अर्बुदोंकी वृद्धिसे इसकी वृद्धि और अर्बुदोंके सडने एवं गलने पर रोग और रोगिणीका नाश होजाता है।

रोगकी द्वितीय या बढ़नेवाली अवस्था

अर्बुदके धीरे धीरे बढनेके साथ साथ ही रोग भी बढ़ता है। अर्बुदके सख्त होजाने पर रोगिणीकी पीड़ा अत्यन्त बढ़ जाती है। दिनरातके किसी एक विशेष समयमें खूब पीड़ा होती है और प्रत्येकदिन ही उस विशेष समयमें पीडा होती है और कुछ समय तक अत्यंत पीडा देकर धीरे धीरे कम हो जाती है। इस पीड़ाके समय आक्रान्त स्थान लाल हो जाता है और ऐसा लगता है कि अभी वह फट जायगा। इस वृद्धिके समय स्तनका आकार आधा पके नोनाफलकी तरह (आता) दिखाई पडता है। रोगकी इसप्रकार बढनेवाली अवस्थामें वक्षःस्थलके चारों तरफकी अन्यान्य ग्रन्थियाँ भी आक्रांत हो जाती हैं। अधिकांश क्षेत्रोंमें दोनों बगलकी ग्रंथियाँ आक्रान्त होकर बगलमें अनुरूप अर्बुदकी सृष्टि करती हैं। किसी किसी क्षेत्रमें ये सभी ग्रंथियाँ फैलकर रोगिणीके गले एवं पीठतक आक्रमण कर गला एवं गर्दन एक कर देती हैं।

रोगकी तृतीय या अंतिम अवस्था

इस अवस्थामें स्तनका अर्बुद फटकर अजस्रधारसे रक्त प्रवाहित होने लगता है। रक्तस्राव बंद होजाने पर कुछ जगह आश्रयकर ऊपरमें सफेद स्रावयुक्त घावकी उत्पत्ति हो जाती है। यह घाव धीरे धीरे बढ़ता है और मांस क्षय होकर धीरे धीरे सम्पूर्ण स्तनका मांस क्षय हो जाता है। इस समय घावमें दुर्गन्ध होती है एवं काफी शीघ्रताके साथ घाव बढ़कर स्तनके मांसको सम्पूर्ण-

रूपसे नष्ट कर देता है और इस समय इस घावमें भींगी लाईकी तरह असंख्य कीड़े पैदा हो जाते हैं। स्तनका मांस क्षय होजाने पर भी ऊपरका चमड़ा ठीक रहता है। कुछ दिनों बाद स्तनके ऊपरका मांस संकुचित होकर भीतर प्रवेश करता है और रोगिणी दुबली हो जाती है। किसी किसी क्षेत्रमें एक स्तन इसी प्रकार नष्ट होकर फिर दूसरा स्तन आक्रान्त होता है। कभी कभी दोनों स्तन एक साथ ही आक्रान्त होते हैं।

इस रोगके अंतिम अवस्थामें उपसर्ग

(१) अंतिम अवस्थामें रोगिणीको यक्ष्मारोगीकी तरह प्रतिदिन तीसरे पहर ज्वर होता है और सारी रात रहकर सबेरे ज्वर छोड देता है।

(२) अरुचि उत्पन्न हो जाती है। भूख लगने पर भी खानेकी इच्छा नहीं होती।

(३) वमन (कै) होती है।

(४) घाव से रक्तस्राव होता है।

(५) स्वाभाविक रंगका परिवर्तन।

(६) दिनमें किसी एक समय भयंकर पीडा शुरू होकर ३-४ घंटे तक लगातार रहती है।

(७) घावसे अतिरिक्त दुर्गन्ध निकलती है, जिसके कारण रोगीके समीप तक नहीं जाया जा सकता।

(८) अतमें यक्ष्मारोगके अंतिम अवस्थाकी तरह दस्त शुरू हो जाती है और (९) हाथपैरमें सूजन हो जाती है। ये समस्त उपसर्ग इस रोगकी अंतिम अवस्थामें उत्पन्न होती हैं।

किसे यह रोग उत्पन्न होता है ?

यह रोग साधारणतः बालविधवा एवं बाँझ स्त्रियोंको अधिक होता है। मासिक धर्मके बन्द हो जाने पर यह रोग इन समस्त स्त्रियों पर आक्रमण करता है। यह साधारणतः ४५ से ५० वर्ष तककी उम्रवाली स्त्रियोंको ही होता है। ३० वर्षकी उम्रमें जरायु एवं डिम्बकोषका आपरेशन हुआ था इस प्रकारकी बहुत सी स्त्रियोंको ४० से ४२ तककी उम्रमें स्तनका कैन्सर होते हुए मैंने देखा है।

स्तनके कैन्सरके आक्रमणके समय व्याधिका अन्यान्य अंगोंमें प्रसरणः—

अधिकांश क्षेत्रमें यकृत, प्लीहा, बगल एव गालमें इस रोगका प्रकोप होकर रोगिणीको शीघ्र ही दुर्बल कर देता है।

स्तनके कैन्सरकी चिकित्सा

कॅन्सरके रोगीका यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य है कि पहली अवस्थामें इस रोगका निर्णय नहीं हो पाता। जब रोग त्रिदोषयुक्त हो जाता है, तभी इसका निर्णय हो पाता है। रोगकी पहली अवस्थामें ही इसका आभास हो जाने पर इस रोगकी सुचिकित्सा द्वारा सुन्दर परिणाम पाया जाता है। प्रसगवश कैन्सर रोगके पूर्वरूप पर आलोचना कर रहा हूं। प्राय: ही बीच बीचमें शरीर टूटना और शरीरके विभिन्न अंगोंमें पीड़ा होना, बीच बीचमें आमाशय होना, नाखून और बालोंकी अस्वाभाविक वृद्धि होना, शिरमें खुरकी होना, मूत्रमें एलबुमेन होना, भूख न लगना, अग्निमांद्य आदि उपसर्ग होनेवाले कैन्सररोगकी सूचना देते हैं।

स्तनोंमें किसी भी जगह साधारण अर्बुदकी उत्पत्ति दिखाई पड़ने पर उसका आपरेशन अवश्य करा देना चाहिए। इस प्रकार अर्बुदके दिखलाई पड़ने पर पूरे स्तनका ही आपरेशन करा कर अलग कर देना चाहिए। कारण, आपरेशन करने के बाद यदि कैन्सरके अर्बुदका थोड़ासा अंश भी रह जायगा, तो कैन्सरकी पुनः उत्पत्ति हो जाती है। पूरे स्तनका आपरेशन करा देनेके बाद भी रोगिणीको बहुत दिनों तक चिकित्सा करानी पडती है। आपरेशन अच्छी तरह करानेके बाद भी रोगिणीके साधारण स्वास्थ्यके लिये चिकित्सा साधारणतः नहीं होती। इस कारण बहुत सी रोगिणी अकालमें ही मृत्युग्रसित हो जाती हैं। कारण, शरीरके आन्तरिक दोषोंकी विकृति ही रोगोत्पत्तिका कारण है और शरीरकी गठनप्रणालीकी विकृति भी रोगका कारण है। शरीरमें रोग उत्पन्न होने पर ही यह समझ लेना चाहिए कि शरीरके स्वाभाविक गठनप्रणालीमें कुछ विकृति आ गई है। किसी खराबीके बिना रोगकी उत्पत्ति नहीं होती। केवल आपरेशनके द्वारा रोगिणी सम्पूर्ण रोगमुक्त नहीं हो सकती। क्योंकि जिन आभ्यन्तरिक दोषोंके कारण रोग उत्पन्न हुआ है, आपरेशनके द्वारा उस रोगका मूलोच्छेदन नहीं भी हो सकता है एवं ऐसा न होने के कारण ही आपरेशनके बाद अधिकांश क्षेत्रोंमें पुनः रोगकी उत्पत्ति होती है। चिकित्सक प्रधान चरकका कहना है :—

"दोषानाञ्च द्रुमानाञ्च मूलेऽनुपहते सति।
दोषाणां प्रसरणाश्च गतानामागतिर्ध्रुवा॥"

अर्थात्, "जिस प्रकार वृक्षको जडसहित न उखाडकर केवल उसकी शाखाओंको काट देनेसे पुनः वे शाखाएँ निर्गत हो जाती हैं और वृक्ष

फूलफलसे सुशोभित हो जाता है, उसी प्रकार रोग उत्पन्न करनेवाले दोषोंका समूल नाश न करने पर पुनः रोगोंकी उत्पत्ति अवश्य होती है।"

सुतरां आपरेशन करानेके बाद रोगिणीके रक्तमें कोई दोष हो, तो उसकी चिकित्सा करानी चाहिए। यदि उसकी मूत्र में दोष हो, मासिक धर्ममें कोई गड़बडी हो, हजमशक्ति खराब हो गई हो, Gout, Arthritis, Rheumatism अर्थात् आमवात इत्यादि वातव्याधि रहे, तो इनकी चिकित्सा करानी चाहिए। यदि कृत्रिम उपायसे संतान जन्म निरोध किया जाता हो, तो उसे बन्द कर देना चाहिए और ज्यादा दिनकी कोष्ठबद्धता रहने पर उसका इलाज इत्यादि कराना चाहिए।

तरल दस्त सयुक्त डिसपेप्सियाके होने पर 'श्रीनृपति वल्लभ' अथवा 'महाभ्रवटी' अथवा 'रसेन्द्रगुडिका', जरायु दोष रहने पर 'लक्षणारिष्ट' अथवा 'पत्राङ्गासव' अथवा 'अशोकारिष्ट' या 'कल्याणघृत' दीर्घकाल तक व्यवहार कराना होगा। पेशाबमें दोष होने पर 'चन्द्रकान्तिरस' अथवा 'बसन्तकुसुमाकररस' कुछ दिनों तक खिलाना पड़ेगा। गाउट, आर्थ्रायटिज आदि वातव्याधियोंमें 'योगराज गुग्गुलु', रक्तदोषमें 'माणिक्यरस', कोष्ठबद्धतायुक्त डिस्पेप्सियामें 'हरीतकीखड मोदक', कैल्सियमके अभावमें 'हरितालभस्म' अथवा 'स्वर्णभस्म' या 'अभ्रभस्म', कष्टरजः एवं चर्मरोगमें 'अमृतभल्लातक' या 'महाभल्लातक गुड़', यकृतदोषमें 'लोकनाथरस', आभ्यन्तरिक गठनप्रणालीमें खराबी होनेपर माखन और मधुके साथ 'सिद्धमकरध्वज', ब्लडप्रेसारमें 'ताम्रभस्म' और 'वृहत् वातचिन्तामणि' एव आभ्यन्तरिक वृद्धिके लिये 'ताम्रभस्म' देना होगा। इस प्रकार रोगिणीके आभ्यन्तरिक व्याधिकी चिकित्सा करके चारों तरफसे उसकी रक्षा करनेकी चेष्टा करनी चाहिए।

जिन क्षेत्रोंमें आपरेशन करनेका कोई उपाय नहीं है और व्याधि स्तनमें अन्तःप्रविष्ट हो गयी है, उस समय 'स्वर्णपर्पटी'के व्यवहारसे व्याधि का अन्तःप्रविष्ट होना रूक जाता है और अर्वुद सूख करके स्तन स्वाभाविक अवस्थामें आ जाता है। 'स्वर्णपर्पटी' के अभावमें रसपर्पटीका व्यवहार करनेसे भी सफलता मिलती है और इसके साथ 'नागजतु' अथवा 'वंगजतु' या 'अभ्रजतु' श्वेत पुनर्नवाके रस और मधु मिलाकर सेवन करनेसे ज्यादा फायदा करता है। 'शिलाजीत' पानके रस और मधुमें मिलाकर पृथकभावसे भी खाया जा सकता है।

घाव खूब अधिक अन्तःप्रविष्ट हो जाने पर 'हरीतक्यादि क्वाथ' से क्षतस्थान को धोकर 'व्रणराक्षस तेल' की मालिश करें। इस समय नागबला और मौलेटीका कढा खूब फायदा करता है। रक्तस्राव अधिक होने लगे तो मौलेटी, लाख और रक्तचन्दनके कढे का व्यवहार करना चाहिए। केला झाड के जडका रस और केलेकी खम्भेके रसका परिषेक (भींगाना) रक्तस्राव बन्द करनेके लिये फायदामन्द है।

घावमें कीड़े पड जाने पर:—आकन्द, धतूरा, सोंदाल, नीमकी पत्ती और गुरुच के क्वाथके द्वारा घावको धोना चाहिए। उसके बाद 'भूलताद्य घृत' लगाना चाहिए।

'भूलताद्य घृत' बनानेकी विधि—१ सेर गायका घी हरिद्राचूर्ण द्वारा मूर्च्छित करके उसमें १ पाव केंचुआ भूनकर, उसके बाद केंचुआको छान लेना चाहिए। यही भूलताद्य घृत है।

उक्तप्रकारसे घाव धोकर 'तान्त्रिक घृत' प्रयोग करनेसे घावमें पडे हुए कीड़े दूर होते हैं।

स्तनका कैन्सर

तांत्रिक घी बनाने की विधिः—१ सेर गायका घी, कच्ची हल्दीका रस १ छटांक एवं नील, सफेदा, मटिया सिन्दूर, प्रत्येकको १॥ छटाक लेकर और केसरिया रस १ सेर मिलाकर शास्त्रीय विधिसे घी बना लीजिये। यही तांत्रिक घृत है।

उपसर्ग की चिकित्साः—अत्यधिक कै होने पर गुलक्षार, सितश्वेत जल अथवा अश्वक्ष क्षार शीतल जलके साथ अथवा प्रवालभस्म सेवन कराना चाहिए। अत्यधिक रक्तस्रावमें मौलेटी, लाख और रक्तचंदनका पाचन सेवन कराना चाहिए और केला वृक्षके खम्भेका रस तथा केला की जड़का रस घावमें प्रयोग करना चाहिए।

त्रयोदश अध्याय

फुसफुस का कैन्सर

कालबुद्धीन्द्रियार्थाना योगो मिथ्या न चाति च।
द्वयाश्रयानां व्याधीना त्रिविधो हेतुसंग्रहः॥
शरीरं सत्त्वसंज्ञञ्च व्याधीनामाश्रयो मतः।
तथा सुखाना योगस्त सुखानां कारणं समः॥
निर्व्विकारः परस्त्वात्मा सत्त्वभूतगुनेन्द्रियैः॥
चैतन्ये कारणं नित्यो द्रष्टा पश्यति हि क्रियाः॥

इति चरके सूत्रस्थाने

फुसफुसका कैन्सर सब प्रकारके कैंन्सर की अपेक्षा भयावह है। लेकिन आनन्द का विषय यह है कि रोग कदाचित हुआ रहता है। स्त्रियों की

अपेक्षा पुरुष ही इस रोगसे अधिक आक्रान्त होते हैं। एक सौ फुसफुसके कैन्सर रोगियोंमें अस्सी भाग ही पुरुष रोगी देखनेमें आते हैं। स्त्रियोंमें यह रोग कम ही होता है।

आगे बहुत मरतबे कहा गया है कि कैन्सररोग सहजमें पकडा नहीं जा सकता। जब यह पहचाना जाता है तब यह चिकित्साकी सीमाके बाहर चला जाता है। फुसफुस के कैन्सरके सम्बन्धमें यह कथा विशेषरूप से लागू होता है।

फुसफुसका कैन्सररोग अति क्षुद्र अर्बुदके आकारमें आविर्भूत होकर धीरे धीरे बढने लगता है एवं रोगी इसका कुछ भी आभास नहीं पा सकता है। क्रमशः अर्बुद की आकृति बढने पर, जब रोगी छातीके भीतर भारीपन अनुभव करने लगता है, श्वास प्रश्वास लेनेमें कष्टबोध एव छातीके भीतर तकलीफ जान पडता है तब रोगके निर्णयकी चेष्टा होती है। किन्तु इस अवस्थामें भी असल रोगका पहचान नहीं होता है। चिकित्सक इसे ठण्डा लगनेका कारण समझकर साधारण सर्दी खांसी एव ठण्डा लगनेकी दवाई दे देते हैं। इस प्रकार प्रकृत् रोगके चिकित्सा का समय नष्ट होता जाता है एव रोग चिकित्सक और रोगीकी अज्ञानतामें अपने चालके अनुसार बढ़ता रहता है।

फुसफुसमें साधारणतः दो प्रकारके अर्बुदों की उत्पत्ति होती हैं। एक विनायिन अर्थात् साधारण मांसार्बुद और दूसरा मेलिग्नेन्ट अर्थात् त्रिदोषयुक्त मासार्बुद। साधारण मांसार्बुद प्रायः फुसफुसमें नहीं होता है। फुसफुसमें अधिकतर त्रिदोपयुक्त अर्बुद ही होता है। पूर्वाभिज्ञता न रहने

पर एवं रोगकी अतिशय वृद्धिकी अवस्था प्रत्यक्ष न करनेपर, फुसफुसके भीतर स्थित अर्बुद को प्रथम नजरसे देखने मात्र ही, वह जो फुसफुस के भीतर स्थित मेलिग्नेन्ट ट्यूमर (त्रिदोषयुक्त अर्बुद) है यह समझनेकी शक्ति अत्यन्त विचक्षण चिकित्सक को भी नहीं रहती है। छातीके भीतर ब्रोङ्का-इटिस, ब्रोङ्कियाक्टेसिस, प्लूरिसि, ट्यूबरकुलोसिस, एज़मा, गैन्ग्रीन, साधारण क्षत, पालमोनारी फाइब्रोसिस, सिफिलिटीक गामा, लोबार निमोनिया, ब्रोङ्को—निमोनिया, ट्यूबरकुलर ब्रोङ्को—निमोनिया, विद्रधि आदि अनेक प्रकारके रोग हुआ करते हैं। इतने प्रकार रोगोंके विषयका तुलनात्मक आलोचना करके चिकित्सक को यह निर्धारित करना होगा कि यह क्या फुसफुस का गैन्ग्रीन या फुसफुसका यक्ष्मा या फुसफुसका कैन्सर है?

फुसफुसके गैन्ग्रीन और फुसफुसके कैन्सरमें भेदज्ञान

फुसफुस का गैन्ग्रीनः—इसमें सब समयके लिये रोगीको ज्वर रहता है, तीव्र खांसी होती है एवं अत्यधिक कफका उद्गम होता है और कभी कभी रक्त मिला हुआ कफ दिखाई देता है। किन्तु रोगीकी नाड़ीमें क्षयज चाञ्चल्य नही रहता है या कैन्सरजनित शरीरकी निदारुण दुर्बलता या शुष्कता (Cachexia) नही रहती है। फुसफुसके कैन्सर की प्रथम अवस्थामें विशेष कोई यंत्रणा नहीं रहती है, बीच बीच में कुछ कफ उठता है एव फुसफुसके भीतर सामान्य भार बोध होता है। क्रमशः क्रमशः रोगकी वृद्धिके साथ साथ भारबोध की अनुभूति भी बढती है, लासेदार कफ निकलता है एव अर्बुदकी वृद्धि अधिक मात्रामें होने पर फुसफुस का कोई शव्द नहीं मिलता है एवं फुसफुस जैसे निष्क्रीय हो गया है ऐसा मालूम होता है। प्रथमावस्थामें ज्वर नही रहता है किन्तु बढ़नेवाली

अवस्थामें ज्वर होने लगता है। क्रमसे रोगी दुर्वल होता जाता है एवं बाद में द्रुत दुर्वलता (Cachexia) उपस्थित होती है।

फुसफुस की यक्ष्मा और फुसफुस के कैन्सरमें भेदज्ञानः—

फुसफुसकी यक्ष्मामें ज्वर, खांसी, रक्तपित्त, शिर भारी रहना, पार्श्व वेदना आदि उपसर्ग दिखाई देते हैं। रोगीको प्रत्येक दिन तीसरे पहर ज्वर आता है एव सवेरे ज्वर नहीं रहता है। क्रमशः अविच्छेदीय ज्वर एवं पेटमें गडवड़ी आरम्भ होती हैं। अन्तिम अवस्थामें शोथ उत्पन्न होकर रोगीकी मृत्यु हो जाती है।

किन्तु फुसफुसके कैन्सरमें पहलेपहल जो अर्वुद होता है उसके कारण छातीमें केवल कुछ भार ही मालूम पड़ता है, ज्वरादि उपसर्ग आगे नहीं रहते हैं, रोगकी वृद्धिके साथसाथ आखिरमें ज्वर उपसर्ग दिखलाई देता है।

प्लूरिसि और फुसफुसके कैन्सरमें भेदज्ञान :—

शुष्क और आर्द्रसे क्रमशः प्लूरिसि दो प्रकारके होते हैं। शुष्क प्लूरिसि में छाती पीठ या पाजराके किसी भागमें चुभानेकी तरह वेदना होती है, खांसी एव मृदु मृदु ज्वर होता है। आर्द्र प्लूरिसि में फुसफुसके भीतर जल जमा हो जाता है एव इसके कारण छाती भारी लगता है और सव समयके लिये ज्वर रहता है। लेकिन फुसफुस के कैन्सरमें जल नहीं जमता है एव प्रथम अवस्थामें सव समयके लिये ज्वर नही रहता है।

एक्यूट क्रणिक सापुरेटिभ ब्रङ्काइटिस और फुसफुसके कैन्सरमें भेदः—

एक्यूट सापुरेटिभ ब्रङ्काइटिसमें अचानक अधिक मात्रामें ठण्डा लगनेके कारण श्लेष्मा वढकर छातीमें जम जाता है और निमोनिया की तरह छाती

में खड़खड़ शब्द होता है। छातीमें दर्द और भारबोध, खांसी, ज्वर एवं श्वासकष्ट आदि उपसर्ग उपस्थित होते हैं और फुसफुसमें जलन होती है। क्रणिक ब्रङ्काइटिस में ये सब उपसर्ग अपेक्षाकृत मृदुभाव से वर्तमान रहते हैं।

ब्रङ्काइटिसमें पीव के सदृश श्लेष्मा निकलता है, फुसफुसमें चूड़चूड़ घड़-घड़ शब्द होता है किन्तु फुसफुसके कैन्सरमें पीवके समान श्लेष्मा निकलना और फेफड़ेमें चूड़चूड घड़घड शब्द नहीं होता है। एवं किसी भी प्रकार का शब्द विशेषरूपसे नहीं पाया जाता है एव रोगी शीघ्र ही दुर्बल हो जाता है। फुसफुसके कैन्सरका प्रधान लक्षण यह है कि रोगी की बगल, गर्दन एवं बाहुमें दर्द होता है। किसी किसी स्थलमें बाहु अवश हो जाता है एवं बाहुसन्धि (बगल) पक्षाघात से आक्रान्त हुआ है ऐसा प्रतीत होता है।

सिफिलीटिक गामा, कोल्ड एबसेस, साधारण फोड़ा और फुसफुस के कैन्सर में भेदज्ञान :—

फुसफुसमें साधारण फोड़ा होनेपर आक्रान्त भागका ऊपरी वक्ष स्थल फूल उठता है, लाल हो जाता है एव पक जाता है। कोल्ड एबसेस एव सिफिलीटिक गामामें वक्षःस्थलके ऊपरी-भागमें फोड़ेकी तरह उत्पत्ति होती है। किन्तु वे हमेशा कड़े रहते हैं, पकते भी नहीं, फटते भी नही हैं एव यंत्रणा और ज्वर आदि कुछ भी नही होते हैं। एक भावसे बहुत दिन तक रहता है। ये सब वक्ष.स्थलके ऊपरी भागमें फूल उठते हैं। साधारण फोड़ा अस्त्रोपचारसे अच्छा हो जाता है लेकिन कोल्ड एबसेस और सिफी-लिटिक गामामें अस्त्रोपचारसे कोई विशेष फायदा नही होता है एवं उनके

कच्चे रहनेके कारण अस्त्रोपचारका सुअवसर भी साधारणतः नहीं मिलता है।

किन्तु फुसफुसके कैन्सरमें जो अर्बुद होता है उसका आकार बाहर से नहीं पाया जाता। जब यह बहुत बढ़ जाता है तब वक्षःस्थलके ऊपर स्थित शिराएं तने हुए दिखलाई देते हैं।

निमोनिया एवं फुसफुसके कैन्सरमें भेदज्ञान :—

निमोनिया रोगमें तीव्र ज्वर, खांसी, रक्तोत्कास, तीव्र वेदना, प्रलाप, मोह आदि वर्तमान रहते हैं किन्तु फुसफुसके कैन्सरमें ये सब नहीं रहते हैं और छातीमें भारबोध, शिराओंमें खिचाव, श्वासकष्ट और बीच-बीचमें वेदना ये सब लक्षण भी रहते हैं।

फुसफुसके कैन्सरमें निमोनिया की तरह तीव्र ज्वर और साथ ही प्रलाप नहीं रहता है, थोड़ा थोड़ा ज्वर होता है।

फुसफुस के कैन्सर में प्रथम अवस्थाका स्वरूप

फुसफुसके किसी भी अंगको आश्रय कर छोटे छोटे अर्बुदोंकी उत्पत्ति होती है। क्रमशः क्रमशः ये बढ़ने लगते हैं। यह वृद्धि रोगीकी पूरे अज्ञानतामें ही होती है। यह चुपके चुपके इस प्रकार बढ़ता है कि इस रोगके विशेषज्ञ चिकित्सक भी स्वय अपने शरीरपर इसके आक्रमणका आभास नहीं कर पाते।

प्रथम अवस्थामें खांसी और सर्दी लगने का कोई लक्षण न रहने पर भी कफ निर्गमन, नींदकी अवस्थामें खांसी होना ये सब लक्षण दिखाई देते हैं।

द्वितीय अवस्था

फुसफुसके भीतरी अर्बुदोंकी वृद्धिके कारण थोडा तना हुआ भाव, भारबोध, श्वासकष्ट एवं बीच बीचमें यंत्रणा इस अवस्थामें अनुभूत होते हैं।

तृतीय अवस्था

दिनरातमें किसी एक समय स्थायी भावसे बहुत समय तक दर्द होता है एवं मृदु मृदु ज्वर भाव होता है। रोगीका शरीर दुर्बल और भीतरकी अर्बुदोंकी वृद्धि होती रहती है, रोगीकी रक्तका रक्तकनिका (Red-Corpusls) कम हो जाती है और सारे शरीरमें विशेष रूपसे मुह, आंख, नखमें पाण्डुता देखा जाता है। क्रमशः शरीर सूखता जाता है और अरुचि होती है, कुछ भी खा नही सकता है या कुछ खानेपर कै हो जाता है। वेदनाकी तीव्रता बढ़ने लगती है और यक्ष्मारोगी की तरह तीसरे पहर ज्वर आकर सवेरे ज्वर छोड देता है और कुछ दिन बाद यह ज्वर अविच्छेदीय भावसे रहता है। कभी कभी कफके साथ रक्त दिखलाई देता है, जिसे देखकर साधारण लोग यक्ष्मा होनेका सन्देह करते हैं। जिस ओर की फुसफुसपर आक्रमण होता है वह फुसफुस विकल हो जाता है। जिस तरफके फुसफुसमें कैन्सर होता है, इस अवस्थामें उसी तरफका हाथ पक्षाघातग्रस्त होता है। उभय फुसफुस आक्रान्त होनेपर दोनों हाथ ही पक्षाघातग्रस्त होते हैं।

चतुर्थ अवस्था

इस अवस्थामें रोगी शीघ्रतापूर्वक क्षीर्ण एवं दुर्बल (Cachexia) होता जाता है, रोगीको सब समय ज्वर लगा रहता है, बीच बीचमें रक्त

वमन होता है, खानेपर ही वमन हो जाता है एवं कोष्ठकाठिन्य रोग दिखलाई देता है।

चिकित्सा

फुसफुसका कैन्सर यदि प्रथम अवस्थामें पकडा जाय अर्थात् अर्बुदके दोषविहीन अवस्था (Benign) में पहचाना जाय तो शस्त्रोपचार ही सर्वोत्तम चिकित्सा है।

अर्बुदके प्रथम अवस्था में पकडे जानेपर यदि अस्त्रोपचार करना सम्भव न हो तब आक्रान्त स्थानके ऊपरी भागमें 'अर्बुदारि लेप' प्रयोग करना चाहिए। सेवन करनेके लिये—

(१) वशपत्रहरितालभस्म ½ रत्तीकी मात्रामें—गरम गव्य घृत १ तोला के साथ।

(२) ताम्रभस्म १ रत्तीकी मात्रामें—अदरकके रस और मधुके साथ।

(३) रौद्ररस २ रत्तीकी मात्रामें—श्वेत पुनर्नवारस और मधुके साथ प्रयोग करना चाहिए।

वेदना निवारणके लिये भावप्रकाशोक्त 'वातारिरस', खांसीके लिये 'वसन्ततिलक रस', वमनके लिये 'प्रवाल भस्म', अर्बुदके आकारको कमानेके लिये 'नित्यानन्द रस', निर्दिष्ट समयमें यन्त्रणाको दूर करनेके लिये 'सोमनाथ-ताम्र', मानसिक चाञ्चल्य और हृत्पिण्डकी गति ठीक करनेके लिये 'वृः वात-चिन्तामणि' प्रयोग करना चाहिए।

घोर यन्त्रणा दूर करनेके लिये—'सुवर्णसमीरपन्नगरस'— अथवा 'मल्ल-सिन्दूर' अथवा 'रसतालक' अदरकके रस और मधु के साथ प्रयोग करना चाहिए।

कोष्ठबद्धता दूर करनेके लिये 'अमृतभल्लातक' 'महाभल्लातक गुड़' सेवन करना चाहिए।

इस रोगमें पञ्चतिक्तघृतगुग्गुल प्रथम अवस्थासे सेवन करानेपर विशेष सुफल पाया जाता है।

खनिज आमलासा गन्धकघटित रसपर्पटी, नमक जल सेवन बन्द कर पर्पटीसेवन की विधिके अनुसार सेवन करनेसे अर्बुदकी वृद्धि बन्द हो जाती है। अर्बुदकी वृद्धि बन्द होनेपर एवं वृद्धि सीमाके भीतर आ जानेपर देखा जाता है कि रोगकी बगलमें, यकृतमें, एव अन्ननालीमें अर्बुदकी उत्पत्ति होती है। अर्बुदका यह पुनराविर्भाव (Secondary Growth) अत्यन्त भयावह है। इस पुनरुद्भुत अर्बुदकी चिकित्सा पुनराय नये तरीके से करना होगा और रोगीकी बलमांस जिससे क्षय न हो जाय उस ओर ख्याल रखना होगा।

रोगके इस प्रकार पुनराक्रमणको रोकनेके लिये घी, दूध और मांस रस के पथ्यके साथ ताम्रपर्पटी, लौहपर्पटी, विजयपर्पटी, वज्रपर्पटी आदि प्रयोग करना चाहिए। इससे रोगका पुनराक्रमण नहीं होता है एव असल रोग भी दूर हो जाता है।

दोनों हाथों के पक्षाघात को दूर करनेके लिये भावप्रकाशोक्त महाबला-तेल, महामाषतेल, प्रसारणीतेल, महाराजप्रसारिणीतेल एवं कुब्जप्रसारणी तेल मालिश करना आवश्यक है और खानेके लिये वृः वातचिन्तामणि, योगेन्द्ररस एव शीनारिरस प्रयोग करना चाहिए।

आगे कहा गया है कि अर्बुद दोषविहीन अवस्थामें रहते समय अस्त्रोपचार करनेसे निर्मूल हो जाते हैं। अर्बुदकी शाखाप्रशाखाए मांस-

पेशीको भेदकर चारों ओर फैल जानेके बाद अस्त्रोपचार करनेसे कोई फायदा तो होता ही नहीं बल्कि उससे नुकसान ही होता है, जैसे फूलके वृक्षको कतर देनेके बाद उसकी शाखाप्रशाखाएं और प्रबल भावसे चारों ओर फैल जाती हैं। ऐसे क्षेत्रमें अस्त्रोपचारको छोड़कर क्षारप्रयोग करना ही युक्तिसंगत है।

अर्बुद बाहर की ओर न निकलने पर क्षारप्रयोग सम्भव नहीं होता है। क्षारप्रयोग करनेपर पहले उत्पन्न हुआ अर्बुद सड़ जाता है और साथ ही उसकी शाखाप्रशाखाएं भी नष्ट हो जाती हैं। प्रथमुत्पन्न अर्बुदके साथ उसकी शाखाप्रशाखाएँ भी निर्मूल होकर निकल जाते हैं। इससे शरीराभ्यन्तरस्थ मांसपेशीके साथ इनका सम्बन्ध विच्छिन्न हो जाता है।

जिस प्रकार अस्त्रप्रयोग और क्षारप्रयोग से शरीराभ्यन्तरस्थ अर्बुद लुप्त हो जाते हैं उसी प्रकार रेडियम और डीप-एक्सरेके प्रयोगसे भी वह नष्ट हो जाता है। किन्तु क्षार और अस्त्रप्रयोगसे जिस तरह अपौनर्भव रूपसे नष्ट होते हैं, रेडियम और डीप-एक्सरेके प्रयोगसे वैसा नहीं होता है। हम किसी किसी क्षेत्रमें देखे हैं कि रेडियम और डीप-एक्सरे द्वारा अर्बुदका सामयिक लोप होनेपर भी कुछ दिन बाद ये फिर उत्पन्न होते हैं एवं अच्छी मांसपेशियाँ भी अर्बुद द्वारा आक्रान्त होती हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि रेडियम और डीप-एक्सरे द्वारा एक तरफ जैसे अर्बुद विनष्ट होते हैं, दूसरे तरफ वैसे अर्बुद उत्पन्न भी होते हैं। कुनैनकी जिस प्रकार ज्वर मिटाने और उत्पन्न करनेकी भी शक्ति है, इनकी भी उसी प्रकार शक्ति है। अतएव हम निश्चिन्त होकर सब क्षेत्रोंमें रेडियम और डीप-एक्सरेका प्रयोग नहीं कर सकते हैं। हमने रेडियम प्रयोग का और

एक कुपरिणाम देखा है कि प्रयोगके बाद ही रोगीके रक्तकी श्वेतकनिका (White Corpusls) अति द्रुतगतिसे घटने लगती है। और रोगी के शरीरमें अति द्रुत रक्तहीनता या पाण्डुता दीख पड़ता है। इसके परिणामस्वरूप कुछ दिन बाद रोगोकी शरीरमें सूजन दिखलाई पडता है। रक्तहीनता इतनी जल्दी बढ जाती है कि रोगी दूसरी कोई दवाई बर्दाश्त नहीं कर सकता है और कुछ भी खानेसे वह कै हो जाता है। अवश्य इसका मूल कारण धातुक्षय है। धातुक्षयसे अग्निमांद्य और अग्निमांद्य से वायु की वृद्धि एव पित्तका ह्रास होता है। इस ह्रास हुए पित्तको बढानेका एकमात्र उपाय रोगीकी रक्तको वर्द्धित करना है। किन्तु इस अवस्थामें दवाई के द्वारा रक्त बढाना सम्भव नहीं होता है। अतएव उसके लिये रोगी की शरीरमें दूसरे स्वस्थ व्यक्तिका रक्त प्रवेश कराना होगा। महात्मा सुश्रुत कहे हैं,—

"देहस्य रुधिरं मूलं रुधिरेनैव धार्य्यते।
तस्माद्यत्नेन संरक्ष्यं रक्तं जीव इति स्थितिः॥"

इस तरह रक्तप्रवेश कराकर रोगीका बल संचय होनेपर, नातिशीतल, लघु, ईषदम्ल औषध एवं अन्नपानादि प्रयोग करके शरोरस्थित वायुकी वृद्धि घटाकर यथाविधि चिकित्सा करना कर्त्तव्य है।

अर्बुदारि लेपकी प्रस्तुत विधि'—कूंच, सोहागा, सैजनमूल, हल्दी, सोन्दाल, भेला, आकन्द, मनसा सीज, चित्तामूल, करोंदा, सैन्धक, बच (कुलाञ्जन), कूठ (कुष्ठ), हर्रा, लाङ्गली विष, श्वेत पुनर्नवा, शरपुंखा, शिरीष, सैन्धक लवण, त्रिकटु (सोंठ, पीपल, मरिच) करवीर और मीठा

विष, इन सब द्रव्योंको गोमूत्रके साथ पीसकर प्रलेप करनेसे रोग प्रशमित होता है।

चतुर्दश अध्याय

"सत्वादीना विकल्पेन व्याधितं रूपमातुरे।
दृष्ट्वा विप्रतिपद्यन्ते वाला व्याधिवलावले॥
ते भेषजमयोगेन कुर्व्वन्त्यज्ञानमोहिताः।
व्याधितानां विनाशाय क्लेशाय महतेऽपि वा॥
प्राज्ञस्तु सर्व्वभाय परीक्ष्यमिह सर्व्वथा।
न स्खलन्ति प्रयोगेपु भेपजानां कदाचन॥"

(इति चरके विमानस्थाने)

उदर (पेट) का कैन्सर

दूसरे अगोंके कैन्सररोग का वर्णन करते समय मैंने यह कहा है कि कैंन्सर रोगकी प्रकृति अन्यान्य रोगोंसे स्वतंत्र है। कैन्सररोग बहुत धीरे धीरे चोर की तरह अज्ञातरूप से मानवशरीरके किसी भी अत्यत कोमल अंशमें स्थान वनाकर कोई भी उम्रमें किसी भी समय उत्पन्न हो सकता है। रोगकी प्रथमावस्थामें जलन, पीडा अथवा कै इत्यादि ऐसा कोई पूर्वाभास नहीं होता है जिससे यह समझा जाय कि कोई भयकर रोग उत्पन्न हो रहा है। रोगकी परिणत अवस्था में जब इसके प्रतिकारका कोई मार्ग नहीं रह जाता तब ही यह कैन्सर वोल कर निर्णीत होता है।

रोगकी प्रथमावस्थामें जितने लक्षण होते हैं, उन लक्षणोंके सम्बन्धमें पूर्वाभिज्ञता रहने पर रोगाक्रमणके बारे में लोग सावधान हो सकते हैं और सुचिकित्सासे उसका प्रतिकार भी कर सकते हैं। रोगकी प्रथम अवस्थामें चिकित्सकके शरणापन्न होनेसे कैन्सररोग द्वारा आक्रान्त ८० प्रतिशत रोगी ही इस रोगसे अच्छे हो सकते हैं। इस विषयमें कैन्सररोगके विशेषज्ञ प्रत्येक चिकित्सक ही हमारे मतसे सहमत होंगे एवं यूरोप, अमेरिका आदि उन्नतिशील देशोंके विचक्षण चिकित्सक भी यही मत देते हैं एवं उन सब देशोंमें भी सैंकड़ेमें १० से अधिक कैन्सररोगी रोगकी प्रथमावस्थामें कैन्सररोग ठीक नहीं कर पाते हैं और ठीक समय में उसके प्रतिकारकी चेष्टा नहीं कर सकते हैं। रोगकी प्रथमावस्थामें इस रोगके निर्णय करनेमें अनेक बाधाएँ भी हैं। कारण यह रोग इतने गुप्त रीतिसे मनुष्यके ऊपर आक्रमण करता है कि इस रोगके विशेषज्ञ भी स्वय अपने शरीर पर इसके आक्रमणका आभास नहीं कर पाते। हम अपनी अभिज्ञतासे इसके कुछ लक्षणोंको लिख रहे हैं, जिससे कैन्सररोगके आक्रमणका आभास समझा जा सकता है। जैसे—

(१) कोई विशेप निर्दिष्ट कारण के न रहने पर भी रोगीकी समस्त शरीरमें अथवा किसी किसी अगमें सब समय अथवा दिनरातके किसी एक विशेप समय में असह्य पीडा होना।

(२) बहुत दिनों तक रातमे अच्छी नींद न आना।

(३) काफी दिनोंसे अजीर्ण और अम्ल के रोगसे भोगना।

(४) स्त्रियोंके पक्षमें, महीनेमें दोबार मासिकधर्म होना या एक बार मासिक होने पर दूसरी बारके मासिक तक रक्तस्रावका बन्द न होना

अथवा मासिक स्रावका बहुत दिनों तक रहना आदि मासिक धर्मकी अनियमिता।

(५) शरीरके किसी एक कोमल अंगमें अर्बुदकी उत्पत्ति होकर सख्त हो जाना।

(६) प्राय: ही खाद्यपदार्थ निगलनेमें कष्ट होना अथवा हिचकी आना।

(७) बहुत दिनों तक स्वरभंग होकर रहना।

(८) मूत्रमें एलबूमेन रहना।

(९) प्रायः ही जी मिचलाना और अनेक समय खानेके बाद वमन होना।

(१०) बहुत दिनों तक आमयुक्त मल त्यागना और दस्त करते समय बहुत देर तक बैठकर रहना अथवा जोर करके दस्त करना।

(११) प्रायः बीच बीच में दांतके मसूड़ों का फूल जाना और उनमें असह्य पीड़ा होना।

(१२) पेटके भीतर कठिनता का अनुभव।

(१३) शरीरके बाहिरी हिस्सेमें कहीं भी फूलगोभीके आकारका अर्बुद उत्पन्न होकर उसका बहुत दिनों तक रहना।

(१४)बहुत दिनों तक खाद्यपदार्थ के अनुपातमें अधिक मात्रा में मलत्याग करना।

(१५) किसी एक निर्दिष्ट हड्डीमें बहुत दिनों तक दर्द होना।

(१६) किसी तरहका ज्वर, जलन अथवा यकृत-प्लीहाकी स्फीति या पीडा इत्यादि किसी भी तरहका कोई कारण न रहने पर भी बहुत दिनो से पेटके भीतर जल इकट्ठा होते रहना।

(१७) शरीरका कोई एक स्थान अस्वाभाविकरूपसे फूलना।

सृष्टिके प्रारम्भसे मानवशरीरमें जितने प्रकारका कैन्सर उत्पन्न होते देखा गया है, उनके पूर्वरूप, रूप, उपशम और सम्प्राप्ति आदि विषयोंकी विवेचना में उल्लिखित लक्षण कुछ न कुछ अवश्य मिलते हैं। चिकित्सककी स्मृतिमें उल्लिखित लक्षण यदि सर्वदा स्थिर रहें एवं रोगीकी परीक्षा करते समय यदि वह यह समझ ले, तो रोगीकी चिकित्सामें वह बहुत ही हितकर होगा। मैं विगत २५ वर्ष से अनेक प्रकारके कैन्सर रोगियोंकी चिकित्सा कर रोगके पूर्वरूपमें प्रकाशित उल्लिखित लक्षणोंसे अवगत हुआ हूँ। जो चिकित्सकगण कैन्सर रोगकी चिकित्सा नहीं करते अथवा अनेक तरहके कैन्सर रोगियोंकी परीक्षा नहीं कर सके हैं उनके रोगकी अति प्रारम्भावस्थामें निर्णय करनेकी सुविधाके लिये उक्त प्राथमिक लक्षणोंको मैंने एक साथ एकत्रित किया है।

पेटके कैन्सरकी पहली अवस्थाः—पेटके भीतर अनेक प्रकारसे कैन्सररोगकी उत्पत्ति होती है। यकृत, प्लीहा, क्लोम इत्यादि पाकस्थलीके किसी भी अंशमें कैन्सर हो सकता है। पहले एक या अधिक अर्बुद क्षुद्र आकारमें दिखाई पडते हैं एवं इसके होनेके पहले रोगीको क्षुधामान्द्य हो जाता है, भोजनमें रूचि नहीं रह जाती, खाने पर भी प्रायः कै हो जाता है और कभी-कभी पाकस्थलीमे मन्द मन्द पीड़ा भी होती है। यह पीड़ा क्रमशः उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है। दिनरातके किसी भी एक निर्दिष्ट समयमें यह वेदना उत्पन्न होकर काफी समय तक रोगीको असह्य पीड़ा देती है और कुछ क्षणके लिये पीडा शान्त हो जाती है। पुनः दूसरे दिन इसी तरहसे पीड़ा उत्पन्न हो जाती है। वमन क्रमशः अधिक होते होते कुछ दिनोंके बाद रोगीके मुखसे लार गिरती है और रोगी जो कुछ खाता

है वह सब ही वमनके द्वारा बाहर हो जाता है। रोगी धीरेधीरे दुर्बल होने लगता है।

इस रोग की पहली अवस्थामें अर्बुद इतने लघु आकारमें उत्पन्न होता है कि वह पहले पहचानमें नहीं आता। इसीलिये उपर्युक्त लक्षणों को देखकर चिकित्सकगण गैष्ट्रीक आलसर आदि पेट के अन्यान्य रोगोंकी चिकित्सा करते हैं। किन्तु उससे असल रोग कम न होकर वरन् जब अर्बुद बढ़ कर पेटके बाहर निकल जाता है तब यह कैन्सररोग बोलकर पहचाना जाता है लेकिन तब अधिकांश क्षेत्रोंमें ही वे त्रिदोषयुक्त होकर कष्टसाध्य हो जाते हैं।

शूलवेदना (Colic) एवं पेटके कैन्सर में अन्तर :—शूल में पेट में अतिरिक्त पीड़ा होती है और यह पीडा काफी समय तक रहती है। इतनी असह्य पीड़ा होती है कि रोगी बेहोश तक हो जाता है। शूलवेदना सज्जीक्षार, शंखभस्म, हींग, नमक इत्यादि शूलनिवारक औषधियों के सेवन से साथ साथ अच्छा हो जाता है किन्तु कैन्सर की पीडा इन सब शूलनिवारक औषधियों से भी शांत नहीं हो पाती।

अम्लपित्त और पेट के कैन्सर की पहचान :—अम्लपित्त में कै होती है, पेट में जलन और पीड़ा होती है, मुख से बराबर थूक निकलता है। कैन्सररोग में भी ये सब होते हैं। किन्तु कैन्सर में जो वमन होता है, उसमें लार अधिक मिली रहती है। कैन्सर का रोगी जब तक खाने के बाद कै नहीं कर लेता, तब तक उसे शान्ति नहीं मिलती। किन्तु अम्लपित्त में रोगी का खाया हुआ पदार्थ वमन द्वारा पूर्णरूप से बाहर न होने पर भी उतनी अशान्ति नहीं रहती। अम्लपित्त में रोगी की नाड़ी में एक
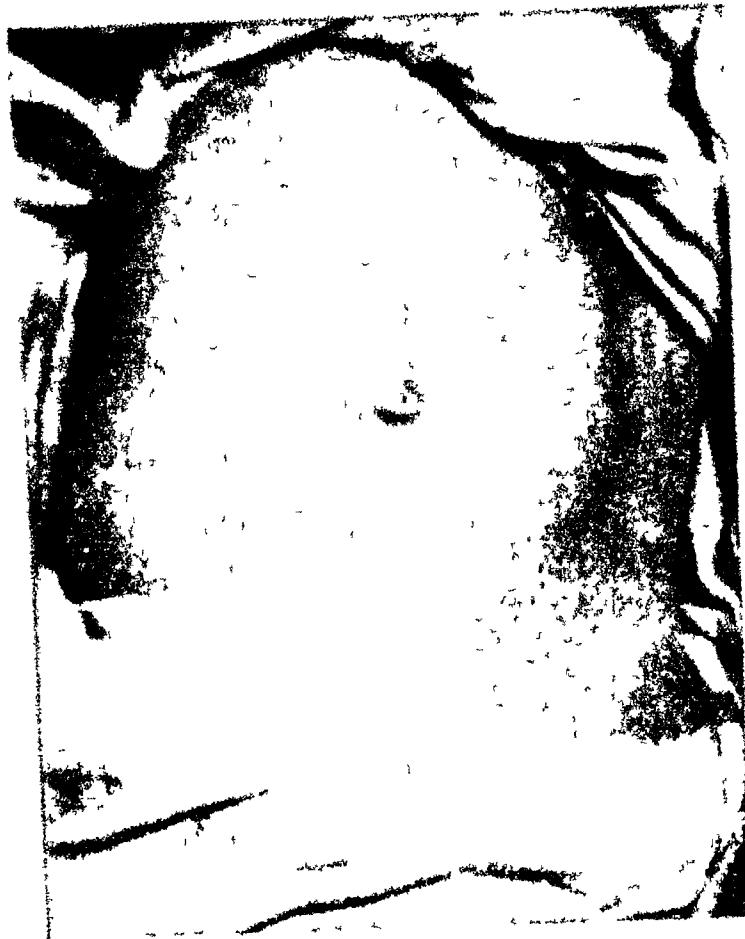
उदरका कैन्सर

पित्तको चञ्चलता रहती है किन्तु कैन्सरके रोगीकी नाड़ीमें यह बात नहीं होती ।

आँत के घाव (Gastric Ulcer) और पेट के कैन्सर की पहचान :—पेट की आँतों में, विशेष करके ग्रहणी नाड़ी में, घाव होने से रोगी वमन करता है एव रोगी की नाड़ीमें सदैव एक तरह की चञ्चलता रहती है । किन्तु कैन्सर में इन सभी लक्षणों के साथ पेट में कड़ापन मालूम होता है और दीमक के घर की तरह छोटे छोटे बहुत से अर्बुद भी उत्पन्न हो जाते हैं। कैन्सर में जो कै होती है, उसमें लसदार लार मिली रहती है किन्तु आँत के घाव द्वारा जो वमन होता है, उसमें अधिकाश क्षेत्र में पित्त मिली रहती है ।

औदरिक क्षय अर्थात्, पेट की यक्ष्मा एवं पेटके कैन्सर रोग की पहचान :—

पेट की यक्ष्मा में समग्र पेट में फैलकर छोटे-छोटे अर्बुदों की सृष्टि होती है, जिससे रोगी के पेट में खूब पीड़ा होती है, खाने पर कै हो जाती है, कभी-कभी वमन के साथ खून भी गिरता है, ज्वर होता है, पतला दस्त होता है, किसी तरह का भी भोजन बर्दास्त नहीं होता है एव कुछ भी खा लेने पर पीडा अधिक होने लगती है । यह पीडा प्रायः सब समय ही रहती है । यन्त्रणानिवारक अथवा निद्राकर किसी औषधि द्वारा पीडा का केवल सामयिक उपशम होता है किन्तु फिर यह पीड़ा होने लगती है । रोगी कैन्सर रोगी की तरह दुर्बल होने लगता है और इस तरह से दुर्बल होते होते अन्त में वह मृत्यु को प्राप्त होता है ।

किन्तु पेट के कैन्सर में रोगी की अन्तिम अवस्था में ज्वर होने पर भी पहले ज्वर नहीं होता। सब समय पीड़ा भी नहीं रहती। किसी एक निर्दिष्ट समय में पीड़ा होती है। दस्त पतला नहीं होता है बल्कि अधिकांश क्षेत्रों में कोष्ठकाठिन्य रहता है। किन्तु रोगी उत्तरोत्तर दुबला होता रहता है।

यकृतोदर एवं यकृन कैन्सर की पहचान :—यकृतोदर प्रायः दो तरह का होता है। एक प्रकार के यकृतोदर में यकृत बढ़कर समस्त पेट को घेर लेता है और रोगी को ज्वर होता है, पेट में जल हो जाता है, सब शरीर में सूजन हो जाता है। अन्त में पेशाब बन्द हो जाती है और रोगी की मृत्यु हो जाती है।

दूसरे प्रकार के यकृतोदर में यकृन सूखकर आकार में छोटा हो जाता है। रोगी के पेट में पीड़ा होती है, सब अंग में सूजन हो जाती है, विशेषरूप से पेट में अतिरिक्त जल हो जाता है एव ज्वर होता है।

किन्तु यकृत के कैन्सर में यकृत के बीच में अर्बुद उत्पन्न होकर क्रमशः सख्त हो जाता है। यकृन की क्रिया पूर्णरूप से बन्द हो जाती है। यकृत से मांसपिंड बाहर होकर यकृत और प्लीहा दोनों को घेर लेता है और दोनों के बीच में पुल का रूप धारण कर लेता है, समग्र पेट फूल उठता है, शरीर दुर्बल हो जाता है। एव उक्त मांसपिंड क्रमशः सख्त हो जाता है तथा सभी पेट की मांसपेशियों को सख्त कर देता है।

जलोदर और यकृतोदर में पेटमे जो जल हो जाता है, उसे

टैप (छिद्र) कर देखने से वह सफेद दिखाई पड़ता है। किन्तु यकृत कैन्सर में पेट में जो जल होता है, वह रक्तवर्ण का होता है।

उदर-गह्वर के विभिन्न प्रत्यंगों में, जैसे, यकृत, प्लीहा, पाकस्थली, मूत्राशय, क्षुद्रान्त्र और वृहदान्त्र इत्यादि प्रत्यंगों में कैन्सर के साधारण लक्षण नीचे वर्णन कर रहा हूं।

प्रथमावस्था में :—(१) पेटमें वेदना, (२) अम्ल, (३) कोष्ठ-बद्धता, (४) नाभी के नीचे कठिनता का बोध, (५) आमाशय, (६) अजीर्ण, (७) तीव्र वेदना, (८) छोटे आकार में अर्बुदों की उत्पत्ति।

द्वितीय अवस्था में :—(१) पेट की मांसपेशियों का क्रमशः सख्त होना, (२) अर्बुदों में वृद्धि, (३) कोष्ठबद्धता, (४) अरुचि, (५) ज्वर होना, (६) अत्यधिक पीड़ा, (७) पेट में चुभन होना (८) अजीर्ण, (९) मुख से पानी का गिरना, (१०) वमनभाव, (११) क्रमशः शरीर दुबला हो जाना।

तृतीय अवस्थामें:—(१) रक्तदस्त करना, (२) रक्तवमन, (३) सर्वदा वमन करनेकी इच्छा, (४) वमनके कारण न खानेकी इच्छा, (५) सर्वदा ही ज्वर, (६) शरीर अतिशय दुर्बल हो जाना, (७) अर्बुदों की अतिवृद्धि, (८) दस्त और पेशाब करने में कष्ट, (९) अत्यधिक अरुचि, (१०) आंख में पीलापन, (११) अनिद्रा, (१२) घोर पीड़ा।

अन्तिम अवस्था :—(१) हाथपैर में सूजन, कभी-कभी सारे शरीर में सूजन, (२) श्वासकष्ट, (३) दस्त और पेशाब का एकदम बन्द हो जाना, (४) अस्थिरता, (५) अवसन्नता, (६) प्रलाप।

पाकाशय के कैन्सर का विशेष लक्षण

प्रथमावस्था —(१) प्रथमावस्था में अर्बुद की उत्पत्ति। श्लेष्मिक झिल्ली के भीतर से मेढक के छाते की तरह से अर्बुद निकलते हैं। किसी किसी क्षेत्र मे वे खण्ड खण्ड होकर आत्मप्रकाश करते हैं। क्रमशः ये अर्बुद बढ़ते हैं। पहले बहुत क्षुद्र होने की वजह से पकड़ में नहीं आते। (२) भोजन के बाद ही पेट में कसमकस पैदा होती है। (३) पेट में वायु उत्पन्न हो जाती है। अजीर्ण एवं अम्लपित्त में जितने लक्षण पाये जाते हैं, वे सभी इसमें दिखाई पड़ते हैं और अधिकाश क्षेत्रों में इसे लोग डिसपेप्सिया या वायुशूल कहकर पुकारते हैं।

द्वितीय अवस्था :—(१) अर्बुद क्रमशः पिण्डाकाररूप में वल्मीक की तरह बढ़ता है और सख्त हो जाता है। (२) किसी किसी क्षेत्र में खण्ड खण्ड होकर बढ़ता है। (३) रोगी सर्वदा पेट में अस्थिरता बोध करता है।

तृतीय अवस्था:—(१) उद्‌गार, (२) वमन और (३) भोजन करते समय अथवा करने के बाद तकलीफ मालूम होती है।

चतुर्थ अवस्था —(१) अतिरिक्त दुर्बलता, (२) खाद्यपदार्थ ग्रहण करने में पूर्णरूप से असमर्थता, (३) पीव का बहना।

यकृत के कैन्सर का विशेष लक्षण

प्रथमावस्था :—(१) दीर्घकाल से यकृत की क्रमशः वृद्धि। बहुत दिन से अजीर्ण और खटाई डकार आना, पित्तशूल, पित्तपाथुरी आदि रोगों से भोगना ; पानदोप, असमय में भोजन, विरुद्ध भोजन, जहाँ तहाँ भोजन,

क्षारद्रव्य का भोजन तथा अतिरिक्त रक्त का मोक्षण आदि कारणों से यकृत की वृद्धि होती रहती है। (२) रक्तहीनता।

द्वितीय अवस्था :—(१) यकृत का सख्त मालूम होना, (२) पेट में जल सचित होना, (३) चेहरा सूख जाना, (४) प्यास, (५) अत्यन्त अस्थिरता।

तृतीय अवस्था :—(१) गर्दन की शक्ति नष्ट हो जाती है एव इधर उधर नहीं घुमाया जा सकता, (२) नाभी के ऊपरी भाग में पर्वत की तरह मांस का लोथडा निकलता है।

चतुर्थ अवस्था :—(१) आँख और पेशाब में पीलापन होना, (२) पेशाब बन्द हो जाने से रोगी का रक्त खराब हो जाना, (३) जलन, (४) प्यास, (५) किसी किसी क्षेत्र में पतला दस्त होना, (६) रोगी का बेहोश हो जाना।

यकृत के कैन्सर की चिकित्सा

रोग की प्रथम अवस्था में "प्राणवल्लभ रस" और "लोकनाथ रस" बहुत उत्तम औषधि हैं।

पीड़ा बढने पर "सोमनाथ ताम्र" अदरक के रस और मधु मिलाकर सेव्य।

पेट में जल होने से 'स्वर्णपर्पटी' अथवा 'विजयपर्पटी' अथवा 'रसपर्पटी, प्रयोज्य। रसपर्पटी की तरह क्रमशः बढती हुई मात्रा में 'मण्डूरभस्म' प्रयोग करने से भी इस रोग में काफी फायदा होता है। किन्तु रोगी के पेट में जल हो जाने से उसके आरोग्य होने की आशा बहुत कम ही रह जाती है। जलसचय होनेके आगे गाय के घी के साथ 'हरिताल-भस्म' प्रयोग करने से अच्छा लाभ होता है।

आँत के कैन्सर की चिकित्सा :—समय पर रोग पकड़े जाने पर घृत में तला हुआ हींग १ रत्ती और घिसा हुआ जीरा २ रत्ती के साथ हिंगुलोत्थ पारद घटित 'रसपर्पटी' इस रोग की सर्वश्रेष्ठ दवा है ।

चिकित्साकार्य में सहायता के लिये 'महाराज नृपतिवल्लभ,' 'कुटजाष्टक,' 'बृहत् लोकनाथ रस', 'बृद्ध गंगाधर रस', 'आयामकांजिक,' 'हिंगादि चूर्ण', 'शूलहरणयोग', 'शूलनिर्वाण रस', 'शूलगजेन्द्र' आदि औषधियों को उपसर्गों के वेग के अनुसार व्यवहार करने पर इस रोग की चिकित्सा सहजसाध्य हो जाती है ।

पेट के कैन्सर की साधारण चिकित्सा :—उदर के कैन्सर की प्रथमावस्था मे जब रोगी को वमन होता है, वह कुछ खा नहीं सकता, पेट में पीड़ा होती है, उस समय निम्नलिखित व्यवस्था अवलम्बन करने से सभी प्रकार की पीड़ा कम होती है और अर्बुद अधिक नहीं बढ पाते ।

आदित्य रस—प्रातःकाल में अदरक के रस, नींबूके रस, चीनी और मधु के साथ ।

प्रवालभस्म—१० बजे दूध और मधुके साथ ।

द्राक्षारिष्ट —दोनों समय भोजनके बाद ठंडा जल से ।

अन्तर्धूम में भस्मीकृत अश्वत्थ छाल—सध्याको कच्चा नारियल (डाब) के पानीके साथ ।

बहुत तीव्र पीड़ा होने पर 'गुड़मडूर' अथवा 'तारामंडूर' अथवा 'धातृलौह' घी और मधुके साथ सेवन करना चाहिए ।

रक्तहीनता और दुर्बलता अधिक होने पर 'धात्र्यरिष्ट' दोनों समय भोजनके बाद सेवन करे । कृशता अधिक बढ़ने पर 'रसतालक' मधुके साथ खाना चाहिए ।

पथ्य :—दूध और अन्न या घी से तला हुआ पूड़ी, मीठे, पक्के फलों का रस, डाब का जल, सबेरे मिश्री का सर्वत। स्नानके पहले अच्छी तरह तिलतैल की मालिश करनी चाहिये।

उपरोक्त साधारण चिकित्सा द्वारा अर्बुदों की वृद्धि नहीं होती और क्रमश: स्वस्थ होकर रोगी अच्छा हो जाता है।

पंचदश अध्याय

"सुखार्थाः सर्व्वभूतानां मताः सर्व्वाः प्रवृत्तयः।
ज्ञानाज्ञानविशेषात्तु मार्गामार्गप्रवृत्तयः॥
हितमेवानुरोध्यन्ते प्रसमीक्ष्य परीक्षकाः।
रजोमोहावृतात्मानः प्रियमेव तु लौकिकाः॥"

—इति चरके।

स्त्रीके जननेन्द्रिय का कैन्सर

चिकित्सा-क्षेत्रमें हमने जितने प्रकारके कैन्सररोग देखे हैं, उनमें जरायुका कैन्सररोग सबसे अधिक है। पहलेके चिकित्सकोंकी यह धारणा थी कि कैन्सर वृद्धावस्थाका रोग है और साधारणतः ५० वर्षके पहले यह रोग नहीं होता। किन्तु मैंने चिकित्सा-क्षेत्रमें यह देखा है कि यह धारणा ठीक नहीं है। व्याधिके आक्रमण का कोई समय नहीं है। किसी भी समयमें कोई भी रोग मनुष्य को हो सकता है। हमने चिकित्सा-क्षेत्रमें जन्मके पहले महीने में ही शिशुको जटिल कैन्सररोगसे पीड़ित

होते देखा है एवं इस कारण हिन्दू दर्शनके पुनर्जन्म, कर्मफलवाद एवं आयुर्वेदकी कर्मज व्याधिके कार्यकारण विषय पर विश्वास होता है।

स्त्रियोंके जननेन्द्रियके विभिन्न स्थानोंमें विभिन्न तरहका कैन्सर विभिन्नरूपसे उत्पन्न होते देखा है। उनमें सबसे पहले जरायु कैन्सरके विषयमें लिख रहा हूँ। इसका दो प्रधान भागों में वर्णन कर रहा हूँ। जैसे—(१) मासिकधर्म स्वाभाविकरूप से बन्द हो जानेके बाद उत्पन्न हुआ कैन्सर।

(२) मासिक धर्म स्वाभाविक रूपसे बन्द हो जानेके पहले उत्पन्न हुआ कैन्सर।

स्वाभाविकरूप से मासिक बन्द होनेके बाद उत्पन्न हुआ जरायु का कैन्सर

हमारे देशमें साधारणतः ४५ से ५० वर्ष होनेके बीचमें स्त्रियों का मासिक बन्द हो जाता है। बहुत ही स्त्रियाँ इसके बाद मृत्युपर्यन्त स्वस्थ रहती हैं किन्तु दुर्भाग्यवश किसी किसीको ऐसा नहीं हो पाता। किसी-किसी क्षेत्रमें हमने देखा है कि स्वाभाविक रूपसे मासिक बन्द हो जानेके २-३ वर्ष बाद या इससे कुछ अधिक समय बाद भी अचानक थोडा रक्तस्राव हुआ। हमारे देशकी स्वभावतः लज्जाशील स्त्रियाँ इस प्रकारके सामान्य रक्तस्रावकी, अधिकाश क्षेत्रोंमें उपेक्षा ही करती हैं। इसके बाद कुछ दिन बीतने पर पुनः जब पहले की अपेक्षा अधिक मात्रामें रक्तस्राव होता है, तब उस समय कारणकी खोज और रोगके दूर करने का उपाय किया जाता है। अनेक समय हमारे देशकी स्त्रियाँ अपने स्वाभावसुलभ लज्जाशीलताके कारण व्याधि की परीक्षा नहीं करातीं,

जिसका फल बहुत बुरा होता है। रोग धीरे-धीरे बढता है। जब रोग की वृद्धिजनित पीडासे रोगिणी व्याकुल हो पडती है तब रोगिणी अपने रोगको प्रकाश करती है और परीक्षा करानेके लिये विवश होती है। किन्तु इस समय प्रायः ही देखा जाता है कि रोग बहुत आगे बढ गया है।

बहुधा देखा जाता है कि स्वाभाविक तौरसे मासिक धर्म बन्द हो जाने के बाद किसी-किसी स्त्रीकी जरायुमें छोटी आकृतिका एक अर्बुद या ट्युमर निकलता है। यह अर्बुद क्रमशः बढता जाता है और बीच बीचमें उससे कभी कम और कभी अधिक परिणाममें रक्तस्राव होने लगना है। किसी किसी क्षेत्रमें कतई रक्तस्राव नहीं होता। क्रमशः अर्बुद बढकर सम्पूर्ण जरायु को घेर लेता है। इस प्रकार बढे हुए अर्बुदसे रोगकी परिणित अवस्था में बीच बीचमें प्रबालभाव से रक्तस्राव होता है। जो सब अर्बुद अधिक बड़े नहीं होते, वे सब अर्बुद थोड़े परिमाणमें बढकर प्रायः ही अतिरिक्त रक्तस्राववाले हो जाते हैं।

स्वाभाविकरूप से मासिक धर्म बन्द होनेके पहले उत्पन्न कैन्सर

स्वाभाविक रूपसे रक्तस्राव बन्द न होनेके पहले भी बहुत सी स्त्रियों को अनियमित रूप से रक्तस्राव होकर जरायु कैन्सर उत्पन्न होता है। थोडी उम्रमें अधिक संतान होनेसे अथवा किसी कारण जरायुमें आघात लगने से अथवा सिफिलिस या गनोरियायुक्त स्वामी के साथ सहवास करनेके कारण अथवा अमिताचार, ऋतुकालीन नियममें असावधानी, विरुद्ध भोजन, आहार-विहार में गडबडी, दीर्घकाल से श्वेत और रक्तप्रदर रोग द्वारा भोगना, अतिरिक्त चाय, जर्दा, पान और तेज

मिर्च खाना, रात में जागना, धूम्रपान, अतिरिक्त मैथुन, दीर्घकाल की कोष्ठबद्धता, अत्यधिक कामचिन्ता, दीर्घकालीन अजीर्ण आदि अनेक कारणोंसे वायु खराब होकर, स्वाभाविक नियमसे मासिक वन्द हो जानेके पहले, बहुत सी स्त्रियाँ घोर प्रदर रोगके शिकार होती हैं और इन्हीं स्त्रियोंको महीनेमें दो तीन वार रक्तस्राव होकर कठिन कैन्सररोग की सूचना देती है।

जरायु कैन्सर रोगकी प्रथम अवस्था

१. वीच वीचमें प्रवल रूपसे रक्तस्राव :—जरायु कैन्सर रोगकी प्रथमावस्थामें बीच-बीचमें अति प्रवल रूपसे रक्तस्राव होता है। कभी-कभी एक मासके अन्तर पर, कभी दो मासके, कभी पाँच-छ मासके अन्तरसे ऐसा रक्तस्राव होता है। रोगके शीघ्रातिशीघ्र बढ़नेवाले समयमें हमने देखा है कि महीनेमें ३-४ बार अथवा कभी सप्ताह में ३-४ बार प्रवल भावसे रक्तस्राव होकर रोगिणीके शरीरको एकदम रक्तहीन कर देता है। किसी-किसीको रक्तस्रावकी मात्रा इतनी अधिक होती है कि रोगिणी रक्तस्रावके वाद ३-४ घंटे तक मूर्छित रहती है। एक रोगिणी के रक्तस्राव का परिमाण एक वारमें २ वाल्टी तक मैंने देखा है।

२. (क)—बहुत दिनों तक कम परिमाणमें रक्तस्राव लगातार रहना :—जरायु-कैन्सरकी प्रथमावस्थामें किसी-किसी क्षेत्रमें देखा जाता है कि रक्तस्राव मासिक स्राव के समयसे आरम्भ होकर स्वाभाविक नियम नुसार ३-४ दिनमें न बन्द होकर थोड़ी मात्रा में प्रतिदिन गिरते रहकर पुन मासिक स्रावके समय अधिक मात्रामें गिरता है। इस प्रकार देखा जाता है कि महीने भरमें किसी भी समय रक्तस्राव बन्द नहीं होता।

(ख)—बहुत दिनों तक लगातार सफेदस्राव गिरते रहना:—किसी-किसीको मासिकस्राव बन्द हो जानेके बाद सादास्राव गिरना आरम्भ हो जाता है और पुन. जब तक मासिक नहीं होता तब तक सादास्राव गिरता रहता है। किसी किसी को इस तरहसे होता है कि सादास्राव जलकी तरह ढुलक कर गिरता है। इस प्रकार सफेदस्रावसे बहुधा सडी मछली के धोवन की तरह गन्ध निकलती है। यह गन्ध एक विशेष प्रकार की होती है। चिकित्सक इस गंध के द्वारा एक सौ रोगिणियों के भीतर से कैन्सर के रोगिणी को पहचान सकते हैं।

३. कोष्ठकाठिन्य:—अतिरिक्त रक्तस्राव और सफेदस्रावके कारण रोगिणीको भयानक कोष्ठबद्धता उत्पन्न होती है। यह कोष्ठबद्धता इतनी भयकर अवस्था में आकर उपस्थित होती है कि रोगिणी अत्यन्त अशान्ति बोध करती है।

४. अर्बुदों की उत्पत्ति—थोड़े दिनों तक कोष्ठबद्धतासे पीड़ित होने के बाद रोगिणी कीजरायु-में अर्बुदों की उत्पत्ति होती है और ये अर्बुद क्रमशः बढ़ते हैं।

५ जरायुके किसी एक भागमें घावकी उत्पत्ति:—किसी किसी क्षेत्रमें जरायु में कतई अर्बुदों की उत्पत्ति नही होती। जरायुके किसी एक भागमें घाव उत्पन्न होकर उसमेंसे रस और रक्तस्राव होता है। अर्बुदहीन कैन्सर अर्बुदयुक्त कैन्सर रोगसे अधिक कष्टदायक होता है।

६. ज्वर:—जरायु कैन्सर की पहली अवस्थासे ही दुर्बल रोगिणी को ज्वर आने लगता है। साधारणतः यह ज्वर क्षय रोगीके ज्वरकी तरह तीसरे पहर आकर और रातमें कुछ समयके लिये रहकर छोड देता है।

जरायु-कैन्सरकी मध्यावस्था

(१) सर्वदाके लिये स्राव :—जरायु-कैन्सर रोग की मध्यावस्थामें प्रायः हमेशा के लिये स्राव होने लगता है। चाहे वह रक्तस्राव हो या सफेदस्राव दोनों मे से एक लगा ही रहता है। इससे समस्त शरीरका रक्त, रस और ओजका नाश हो जाता है। वे सभी रोगी जिन्हें क्षय अधिक हुआ है अथवा जो पहले से ही दुर्वल और अस्वस्थ हैं, उनके लिये इस प्रकारका स्राव अधिक दिन तक सहन करना कठिन हो जाता है।

(२) स्रावसें दुर्गन्ध एवं विभिन्न रंग का स्राव :—जरायु-कैन्सर में स्राव विभिन्न वर्णका होता है। पहले पहल ताजा रक्त, उसके बाद फीका लाल रक्त, उसके बाद मांस धोये हुए जलकी तरह रक्त निकलता है। किसी किसी क्षेत्रमें, विशेपत उन सभी क्षेत्रोंमें जिनमें रोगिणी को पहले गनोरिया हुआ था, स्राव हल्दीके रंगका अथवा आसमानी रंगका गिरता है। गनोरिया (सुजाक) रोगसे पीडित न होने पर भी सफेद, लाल, पीला, नीला एव हल्दीके रग का स्राव होता है। अधिकांश क्षेत्रों में ही स्रावमें दुर्गन्ध होती है। सडे हुए मांसकी तरह गन्ध किसी किसी क्षेत्रमें होती है। जिन सब क्षेत्रोंमें जरायु के मध्य का अर्वुद क्षययुक्त होकर स्रावशील होता है, उन सब क्षेत्रोंमें जरायुसे जो स्राव निकलता है, वह अत्यन्त दुर्गन्धित होता है।

अतिरिक्त स्राव होते रहनेसे क्रमश. रोगिणीका शरीर सूखता जाता है और रोगिणी दुर्वलताका अनुभव करती है।

(३) पेशाब करते समय कष्ट बोध होना इस अवस्था का एक उल्लेखयोग्य उपसर्ग है।

(४) यन्त्रणा:—इस अवस्थामें रोगिणीको पीडा उत्पन्न हो जाती है। जरायु-कैन्सरकी पीड़ा बहुत ही तीव्र होती है और यह पीड़ा अनेक तरहकी होती है।

इन सबोंके अलावा इस अवस्थामें रोगिणीको मांसक्षय होने लगता है, दुर्वलता बढती है एवं अर्वुद वृद्धिप्राप्त और त्रिदोषयुक्त होकर पकने लगते हैं।

तृतीय अवस्था:—इस अवस्थामें निम्नलिखित लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

(१) सदैव ज्वर, (२) वमन, (३) अतिशय शीर्णता, (४)स्रावमें दुर्गन्ध को वृद्धि, (५) असह्य यत्रणा, (६) प्रवल रक्तहीनता होने पर भी रक्तस्राव, (७)पतला दस्त होने पर भी दस्त करते समय तकलीफ होना, (८) अर्वुद का सड़ना, (९) अतिरिक्त दुर्वलता, (१०) तीसरे पहर पीडा आरम्भ होना, (११) शोथ।

चतुर्थ अथवा अन्तिम अवस्थाका लक्षण

(१) प्रलाप और मोह, (२) अतीव शुष्कता अथवा शोथ की वृद्धि, (३) सञ्ज्ञाहीनता (४) वमन, हिचकी और श्वासकष्ट (५) दस्त और पेशाबका बन्द होना।

जरायु-कैन्सरके वाह्य लक्षणोंकी आलोचना करके हमने देखा है कि साधारणतः जरायुकी ग्रीवामें उसके अन्यान्य अंशोंकी अपेक्षा कैन्सर अधिक होता है। हमारे देशके स्त्रियोंकी अतिरिक्त लज्जाशीलताके कारण इसके विषयमें पहले हम नहीं जान पाते। किन्तु जब कैन्सर सडने लगता है और दुर्गन्ध आने लगती है, तभी रोगिणी इस रोगको प्रकाश करती है।

जरायुमें साधारणतः दो प्रकारके अर्बुद होते हैं। एक तरहका अर्बुद त्रिदोष-हीन (Benign) होता है और दूसरा त्रिदोषयुक्त (malignant)। निर्दोष अर्बुद अधिक भयावह नहीं होता। किन्तु दोषयुक्त अर्बुद मारात्मक होता है और प्रायः असाध्य होता है।

जरायु-कैन्सर की चिकित्सा

शस्त्रोपचार:—रोगिणीके बलवान होनेपर एव जरायुमें कैन्सर हुआ है यह प्रमाणित होनेपर तथा रोग अधिक दिनका पुराना न होने पर शस्त्र-चिकित्सा ही जरायु-कैन्सरकी सुचिकित्सा है। किन्तु विज्ञ चिकित्सकोंमें इस पर मतभेद देखा जाता है। वर्तमान स्त्रीरोग चिकित्साके विशारदोंका कहना है कि शस्त्रचिकित्साके द्वारा जरायु-कैन्सरका मूलोच्छेदन नहीं हो पाता। इसके अलावा भारतवर्षकी स्त्रियाँ अधिक कोमलांगी होती हैं। इसीलिये जरायुमें शस्त्रोपचार द्वारा उत्पन्न भयकर पीड़ा नहीं सह सकती। इसलिए बहुत सी स्त्रियोंकी जरायुमें शस्त्रोपचारके बाद मृत्यु हो जाती है और जो शस्त्रोपचारकी पीडा सहकर अच्छी भी होती हैं, कुछ दिनोंके बाद उनके अन्य किसी अंगमें कैन्सरकी उत्पत्ति देखी गयी है। यथासमय किसी सिद्धहस्त, अमृतपाणि और जीतात्मा शस्त्रचिकित्सा-विशारदके द्वारा शस्त्रोपचार करनेसे आरोग्यताकी संभावना रहती है।

रेडियम प्रयोग.—आधुनिक चिकित्सकोंका मत है कि रेडियमके प्रयोग द्वारा अस्त्रोपचारकी अपेक्षा अधिकतर सहज भावमें जरायु-कैन्सर अच्छा होता है। रेडियमके स्पर्शसे अर्बुद शीघ्र ही गल जाता है, घावकी सड़न दूर होती है और घाव सूखकर जरायु शीघ्रही पूर्वावस्थाको प्राप्त होता है।

रेडियम क्या है ?:—पारद, गन्धक, लोहा, अभ्रक आदिकी तरह रेडियम एक खनिज पदार्थ है। वर्तमान समयमें अस्पतालोंमें चिकित्सा के लिये जिस रेडियमका प्रयोग होता है, उसका उत्पादन दक्षिणी अफ्रीका के बेलेजियन क्रांगो प्रदेशके खदानमें होता है। उस खनिज धातुकी मिट्टीको चूर्ण करके नाना प्रकारके रासायनिक प्रक्रियायों द्वारा गला करके रेडियम पाया जाता है। जगत्विख्यातावैज्ञानिक श्रीमति कूरीने इसका आविष्कार की है। लगभग साढ़े सताईस मन ऐसे खनिज की मिट्टीसे केवल २ रत्ती परिमाणमें रेडियम चूर्णाकारमें पाया जाता है। इसकी किरण बहुत ही उज्वल होती है। अंधेलेमें रखनेसे भी यह अतिशय उज्वल दिखलाई देता है। विभिन्न आकारके विभिन्न धातु द्वारा निर्मित नलीमें प्रवेश कराके मानव शरीरके विभिन्न अगके कैन्सर रोगमें रेडियमका प्रयोग होता है। यथासमय नियमपूर्वक सुविज्ञ चिकित्सकके द्वारा रेडियम का प्रयोग करनेसे जरायुके कैन्सरमें फल पाया जाता है। चिकित्साका समय बीत जाने पर एव अधिक मात्रामें, रेडियमका प्रयोग अच्छा न कर नुकसानही करता है।

रञ्जन रश्मि (एक्सरे) का प्रयोग :—रेडियमके अलावा रंजन-रश्मि के प्रयोगसे भी जरायु-कैन्सरकी चिकित्सा होती है और इससे भी अच्छा फायदा देखा गया है।

फ्राइबुर्ग विश्वविद्यालयके अध्यापक Roentgen इसके आविष्कर्त्ता हैं। इनकी मृत्युके बाद उन्हींके नामानुकूल इस किरणका नाम 'रञ्जन रश्मि' (Roentgen Ray) रखा गया। इन्होंने इसका आविष्कार अवश्य किया किन्तु चिकित्सा क्षेत्रमें इसका प्रयोग उनके बादके चिकित्सकोंने किया। कैन्सर, दुष्टक्षत, दुरारोग्य चर्मरोग आदि भयङ्कर

व्याधियोंमें रंजन-रश्मिके प्रयोगसे आशातीत सफलता पायी गयी है।

रेडियम और डीप एक्सरे चिकित्सा का उपयोग और उसकी आलोचना :—रेडियम और डीप एक्सरेके प्रयोगके समय चिकित्सकोंको यह ध्यान रखना चाहिए कि इसका दुरुपयोग न हो। दुरूपयोग होनेसे रोगीको हानि होती है। साधारणतः मूलरोगके विषयसे अनभिज्ञ रेडियोलाजिष्ट (रेडियम और डीपएक्सरेका प्रयोगकर्त्ता) द्वारा ही यह अपप्रयोग होता है। ऐसे रेडियोलाजिष्टगण प्रयोजनसे अधिक रेडियम और डीप एक्सरेका प्रयोग करके रोगीकी दारुण क्षति करते हैं। मूलरोग चिकित्साकी गति, वृद्धि, क्षय आदि विषयोंसे अनभिज्ञ चिकित्सकोंके द्वारा रेडियम और डीप- एक्सरेके प्रयोगसे नुकसान ही होता है। इसका प्रयोग करनेके समय रेडियोलाजिष्टके साथ मूलरोगके विषयसे अभिज्ञ चिकित्सकको भी उपस्थित रहना चाहिए। चिकित्सकके निर्देशके अनुकूल रेडियोलाजिष्टको इसका प्रयोग करना चाहिए। प्रयोजन और चिकित्सकके निर्देशानुसार एकाधवार अधिक भी इसका प्रयोग हो सकता है। मूलरोगके ज्ञानसे अभिज्ञ चिकित्सककी अनुपस्थितिमें एवं उनके निर्देश के विना केवलमात्र रेडियोलाजिष्टके द्वारा रेडियम और डीप एक्सरेका प्रयोग करानेसे अधिकांश क्षेत्रमें दुष्परिणाम ही हुआ है। दोनोंकी उपस्थितिमें प्रयोग होनेसे ऐसा होनेकी संभावना कम ही रहती है।

रेडियमका प्रयोग ठीक तरहसे न होने पर रोगीकी सभी तरहकी यन्त्रणाओंमें वृद्धि होती है। जैसे—अविच्छेदी ज्वर, वायुकालमें अर्थात् दिनके शेष और रात्रिके शेषमें तीव्र पीडा। यह पीड़ा केवल जरायुमें ही

नहीं होती बल्कि वक्षःस्थल, पीठ, पांजर, मस्तक आदि अन्यान्य अंगोंमें भी होती है और किसी भी यन्त्रणानाशक औषधिके प्रयोगसे यह पीड़ा शांत नहीं होती। इस पीड़ाके साथ साथ रोगिणीको तीव्र अरुचि एवं अन्न ग्रहण करनेकी शक्ति लोप हो जाती है। भोजन करते समय रोगिणीके सीनेमें दर्द होती है, भूख लगने परभी भोजन नहीं कर पाती और क्रमशः दुबली पतली हो जाती है। तथा इसके बाद आँख, मुख-मंडल एव हाथपैरमें शोथ उत्पन्न हो जाना है, पतला दस्त होता है और क्रमशः जीवनीशक्ति नष्ट होते होते चैतन्यका लोप हो जाता है।

रोगके त्रिदोषयुक्त होनेके पहले ही जरायुकी ग्रीवामें डीप एक्सरे अथवा रेडियमका प्रयोग करनेसे सड़ा हुआ घाव सूख जाता है और जरायु अपनी सहज अवस्थाको प्राप्त होता है। किन्तु डीप एक्सरे अथवा रेडियमको अधिक मात्रामें देना उचित नहीं। अधिकांश क्षेत्रमें इनकी मात्राकी अधिकतासे हमने दुष्परिणाम ही देखा है। मैं इस पुस्तक के द्वारा रेडियोलाजिष्ट एव एलोपैथिक चिकित्सकोंसे अनुरोध करता हूँ कि वे रोगीके मूल रोगकी उपेक्षा करके केवल कोर्स समाप्त (Course-finish) करने पर ही लक्ष्य न रखें। इनको प्रयोग करनेके पहले उन्हे रोगीके साधारण स्वास्थ्य एव रोगकी अवस्थाके प्रति विशेष ध्यान रखना चाहिए। रोगी और रोगिणीके अभिभावकोंसे हमारा अनुरोध है कि वे प्रतिवार एक्सरे और रेडियम प्रयोग करानेके पहले प्रकृत रोगके जानकार चिकित्सक द्वारा परीक्षा करावें। रोगिणी स्त्रियोंसे मेरा अनुरोध है कि वे मासिकस्रावकी मात्राधिकता एव समयकी घटती बढ़ती इत्यादि नाना प्रकारके उपद्रव होनेपर उसकी उपेक्षा न करके अथवा

लज्जारहित होकर समयानुकूल सुचिकित्सकोंको यह विषय खोलकर बता दें तब प्रकृति रोगका निर्णय कराकर उसकी सुचिकित्साकी व्यवस्था करें।

रोग अवगाढ मूल होनेपर अर्थात् रोगकी शाखा उपशाखाओं का चारों ओर विस्तार होने पर अस्त्रोपचार, रेडियम अथवा डीप-एक्सरेका प्रयोग करनेसे कोई फायदा नहीं होता।

स्त्रियोंके जननेद्रिय कैन्सरकी आयुर्वेदिक चिकित्सा :—चिकित्सा के पहले स्त्रीरोगके कारणोंकी आलोचना करना अप्रासंगिक नहीं होगा ऐसा समझ कर संक्षिप्तरूपमें इसके कारणों पर प्रकाश डाल रहा हूँ।

प्राचीन शास्त्र कर्त्ताओंके मतानुसार अवैध आहार विहारके द्वारा वातादि दोष कुपित होकर मासिकके खूनको दूषित करते हैं। उसके द्वारा अथवा मातापिताके वीर्य दोषसे या दैवी कारणसे स्त्रियोंकी योनिमें रोग उत्पन्न होता है।

विरुद्ध भोजन अर्थात् एक साथ खीर, दूध और मछली आदिका भोजन, मद्यपान, अजीर्ण होने पर भी भोजन, अपक्क भोजन, गर्भपात, अति मैथुन, विपरीत मैथुन, संयोग विरुद्ध मैथुन, तेज सवारी पर चढना, स्त्रियोंका पुरुषोचित व्यवहार, कामोन्माद, उपवास आदि अधिक करनेसे वायुवृद्धिके कारण शरीरका क्षय, अभिघात, दिनमें सोना एवं रजस्वला की अवस्थामें पालने योग्य नियमोंकी उपेक्षा करना, स्त्री जननेन्द्रियकी व्याधिके अन्यतम कारण हैं। इसके अलावा पतिका दूषित प्रमेह और गर्मी, अधिक संख्यामें प्रसव और उसके साथ पौष्टिक पदार्थोंका अभाव, काफी समय तक स्थायी मासिक ऋतुस्रावमें गड़बडी, काफी दिनोंसे स्थायी बाधा, श्वेतप्रदर, रक्तप्रदरका उपद्रव, बालवैधव्य एवं बन्ध्या दोष, प्रसवकाल

में अनभिज्ञ दायीके दोषसे जरायुकी गर्दन अथवा अन्यान्य अंशोमें आघात लगना, वंशगत कुष्ठ व्याधिका बीजदोष, पेट भर भोजन करने के बाद ही सहवास, अस्वाभाविक उपायसे जन्म निरोध करनेके लिये नाना प्रकारके बाहरी और भीतरी उपचार एवं औषधियों का प्रयोग, अतिरिक्त तम्बाखू, जर्दा आदिके खानेसे वायुवृद्धिके कारण रोग उत्पन्न होनेके ये सब प्रधान कारण हैं।

हमने चिकित्साके क्षेत्रमें बहुसंख्यक स्त्री जननेन्द्रिय रोगिणियोंकी परीक्षा करके उपरोक्त कारणों एव लक्षणोंको प्राप्त किया है। जरायु-कैन्सरसे छुटकारा पानेके लिये उपरोक्त कारणोंसे मुक्त होना होगा।

स्त्री जननेन्द्रिय के कैन्सर की उपसर्ग चिकित्सा :—स्त्री जननेन्द्रिय कैन्सर रोगमें उपसर्ग ही प्रधान हैं। नीचे हम प्रत्येक उपसर्गकी चिकित्सा लिखते हैं।

प्रधान उपसर्ग रक्तस्राव :—(१) "दार्वादि क्वाथ"—जैसे दारुहरिद्रा, रसांजन, चिरायता, वासक छाल, मोथा, रक्तचंदन, बेलसोंठ, आकन्दपुष्प-इनमें प्रत्येक को ¼ तोला लेकर एक साथ आधा सेर जलमें पकावें और आधा पाव बचने पर उसको उतार कर छान ले और उसमें शहद डालकर पीवें। इससे घावयुक्त वेदनान्वित रक्तस्राव शीघ्र बन्द हो जाता है। इसका फल देखा गया है।

(२) शोधित हिंगुल :—नीबू और नीम पत्तेके रससे शोधित हिंगुल २ रत्ती, परवलके पत्तोका रस, मधु और चीनीमें मिलाकर खाना चाहिए।

(३) रामचन्द्र विद्याविनोद द्वारा कथित "शोणितार्गल" लालचन्दन और मौलेठीके कढ़ेके साथ।

(४) गोखरु अथवा अशोकाछालके कढेके साथ पिण्ड हरिताल भस्म २ रत्तीकी मात्रामें देना चाहिए।

(५) रसचिकित्सामें कथित "प्रवाह निवर्त्तक" गेंदाका पत्ता या दूब का रस आदि कोई भी रक्तरोधक अनुपानके साथ खाना चाहिए।

(६) रक्तस्रावके कारण शरीर दुर्बल हो जानेसे रक्तपित्त रोगाधिकारमें कहे हुए "कुष्माण्ड खण्ड" खिलानेसे रक्तस्राव दूर होता है और शरीर पुष्ट होता है।

(७) "हरीतक्यादि कषाय" अथवा त्रिफलाके कढेसे जरायु को धोना चाहिए।

श्वेतस्रावकी चिकित्सा:—"गोदन्त हरिताल भस्म" २ रत्ती १० बूंद गर्म गायके घी के साथ खाना चाहिए।

(२) सारिवाद्यासव:—दोनों समय भोजनके बाद शीतल जलके साथ सेवनीय।

(३) प्रवाल भस्म २ रत्तीकी मात्रामें—दूध और मधुके साथ।

(४) फलकल्याण घृत—गुनगुने दूधके साथ।

जलस्राव की चिकित्सा

(१) वसन्तकुसुमाकर रस—घी, मधु और चीनी अथवा आँवलाके रस और मधुके साथ खाना चाहिए।

(२) आँवलेके बीजको पीसकर चीनी और मधु मिलाकर शीतल जलके साथ पीना चाहिए।

(३) सोमनाथ रस—जामुन बीजके चूर्णके साथ।

(४) हेमनाथ रस—उडूम्बरके रसके साथ।

(५) त्रिफलाके कढेसे योनिद्वारको धोना चाहिए।

पीवस्राव की चिकित्सा

(१) त्रिफलाके कढेमें १ आनाकी मात्रामे "हेमसार" मिलाकर उससे योनिके भोतरको धोना चाहिए।

(२) वंशपत्रहरिताल भस्म ½ रत्ती मात्रामें गर्म गायके घी के साथ खाना चाहिए।

(३) पुराना पहननेका वस्त्र विष्णुतैल अथवा मध्यमनारायण तैल या बृहद् गुड़ूच्यादितैल द्वारा लेप करके योनिके भीतर धारण करना चाहिए।

(बत्ती धारण)

(४) पंचतिक्तघृत गुग्गुल :—गर्म गाय के घी के साथ।

अंगों की पीड़ा की चिकित्सा :—गाय के घृत के अनुपान के साथ ½ रत्ती मात्रामे वशपत्रहरितालभष्म ही इस रोग की सर्वश्रेष्ठ दवा है।

रक्तहीनता और पाण्डुरोग की दवा :—(१) 'नवायसलौह' या 'नवायस मण्डूर' कूलेखाड़ा पत्तेके रस और मधु के साथ।

(२) धात्र्यरिष्ट :—दोनों समय भोजन के बाद शीतल जल के साथ सेवनीय है। इस औषधि का सुपरिणाम देखा गया है।

(३) अशोकारिष्ट :—दोनों समय आहार के बाद शीतल जलके साथ सेवनीय है। इसका भी सुपरिणाम देखा गया है।

(४) रत्नगर्भरस —घी और मधु के साथ सेव्य है।

अजीर्ण और शोथ की चिकित्सा :—(१) इसके लिये रसपर्पटी सर्वश्रेष्ठ औषधि है। पर्पटी के सेवनविधि के अनुसार सेवन करने से उप-व्याधियों सहित मूल रोग शीघ्रता से निवारित हो जाती है। रोगी के अधिक दुर्बल होने पर स्वर्णपर्पटी अथवा विजयपर्पटी के प्रयोग से अधिक फायदा होता है।

अरूचि की चिकित्सा :—(१) धान्यरिष्ट (२) आयामकांजिक (३) रसाला (४) सुधानिधि रस—ये सभी विशेष फलदायक हैं।

पेशाबकष्ट की चिकित्सा :—(१) तृणपंचमूल का कढ़ा (२) वरूणादि कढा (३) बज्रछाल (४) सारिवाद्यासव आदि के प्रयोग से अच्छा फायदा होता है।

कोष्ठबद्धता की चिकित्सा :—हरीतकी १ तोला, किसमिस आधा तोला, सोनपत्ती आधा तोला आधा सेर जलमें पकावे, जब यह आधा पाव रह जाय तब उतार कर छान ले और तब इस्तेमाल करे।

तीव्र कोष्टबद्धता की चिकित्सा :—हर्रा, आंवला, बहेड़ा, सोंठ, सोंदाल, एरण्डमूल, सोनपत्ती, किसमिस, तेउडी, दन्ती, कुटकी—इन सबको बराबर मिलाकर २ तोला लेकर उपरोक्त नियमानुसार पाचन प्रस्तुत कर सेवन करना चाहिए।

अर्बुदों की उत्पत्ति की चिकित्सा :—अर्बुदों की प्रथम उत्पत्ति में पचकर्म द्वारा देह शुद्ध करके निम्नलिखित औषधियों का प्रयोग करना चाहिए।

१. रौद्ररस :—सफेद पुनर्नवा के रस और शहद के साथ

२. सोमनाथ ताम्र :—अदरक के रस और शहद के साथ।

३. त्रिगुनाख्य रस:— ,, ,,

४. त्रिनेत्राख्य रस:— ,, ,,

अर्बुद के क्षय में :—

१. सुबह "हरिताल भस्म"।

२. दोपहर में "आदित्यरस"।

३. सन्ध्या में "रसताल्क"।

वमन में—

१. "प्रबाल भस्म" ४ रत्ती मात्रा में दूध और मधु या नीबू के रस और मधु के साथ।

२. अभ्रखक्षार :—शीतल जल व डाब के पानी के साथ।

३. ताम्रभस्म :—अदरक के रस और शहद के साथ।

४. स्वर्णसिन्दूर :—गुरुच के शीतकशाय और मधु के साथ।

निर्दिष्ट समय में उत्कट पीडा व सर्वाङ्ग में वेदना :—रोगिणी की शक्ति व मांस क्षय न होने पर "रस पर्पटी" इस रोग की श्रेष्ठ दवा है। बलमांस क्षय होने पर "हरिताल भस्म" गाय के घी के अनुपान से देना होगा एव रोगिणी को प्रचुर परिमाण में दूध, घी और मांस सेवन कराना होगा। स्वर्णपर्पटी और विजयपर्पटी भी प्रयोग की जाती है। "स्वर्णग्रासित मकरध्वज" घृत और मधु के अनुपान से इस तरह की अवस्था में अन्यतम श्रेष्ठ दवा है।

विशुद्ध वंगभस्म, सीसाभस्म, दस्ताभस्म और शिलाजीत को समान

भाग में लेकर मिश्रित कर ४ रत्ती मात्रा में दिन में दो वार पान के रस और मधु के साथ सेवन करें और बाद में गोरक्षचाकूल, अर्जुनछाल, अश्वगन्धा और बढ़ैला इनका कढा सेवनीय।

विशुद्ध स्वर्णभस्म १ रत्ती और रौप्यभस्म १ रत्ती मिश्रित करके घी और मधु के साथ सेव्य एव घृत, दूध और मांसरस पथ्य हैं।

'वेदनानाशक गोली' .—इसे अत्यधिक वेदना होने पर सेवन करने से अति शीघ्र वेदना कम हो जाती है। किन्तु रोगी अथवा रोगिणी का हृद्पिण्ड खराब होने से इसका प्रयोग करना उचित नहीं। चिकित्सक की राय के अनुसार इसे सेवन करना चाहिए। इसे गरम जल के साथ सेवन करना चाहिए।

वेदनानाशक गोली प्रस्तुतकरने की प्रणाली :—पारद, गन्धक, हीरा, मीठाविष, गोलमिर्च, कूचिला, लहसन, आलकुशो बीज, मुसब्बर, सोंठ, निसिन्दापत्र, एरण्डमूल, ताम्र, हरिताल, मनशिल और सेंधानमक को एक एक भाग लेकर सर्वसमान अफीम मिला हुआ गांजा के भिगाए हुए जल में पीसकर २ रत्ती की मात्रा की गोलियाँ बनाकर छाया में सुखा लें।

जरायु कैन्सर की प्रतिषेधक चिकित्सा :—वर्तमान प्रचलित चाल-चलन के अनुसार जरायु कैन्सरवालों की सख्या दिन दिन बढ रही है। जिससे श्वेत प्रदर, रक्तप्रदर प्रभृति नाना प्रकार के योनिव्यापित रोगाधिकारों के अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के रोगों के पाश मे पडकर रमणीगण, शेषमें कैन्सर रोगग्रस्ता न होवें, इसके लिये नीचे अवश्यपालनीय कुछ क्रियाओं का उल्लेख किया है।

१ जरायु रोगग्रस्ता रमणियों से अनुरोध किया जाता है कि वे

ऋतुकाल मे पालनीय नियमों का पालन करें। यथा—ऋतुकाल में अधिक परिश्रम, स्नान, गरिष्ठ भोजन, शर्दी लगना, सहवास, जर्दा डालकर पान खाना, द्रुतयान मे भ्रमण आदि शरीर और मन के लिये ग्लानिकर सब प्रकार के कार्य वर्जित हैं।

२. ऋतुस्राव अधिक परिमाण मे होने पर या अधिक समय तक रहने पर किसी दक्ष चिकित्सक से परामर्श लेना चाहिए।

३. जरायुग्रीवा मे किसी प्रकार की चोट लगने से घाव होने या किसी प्रकार के दर्द होने पर, उस घाव या वेदना को सब प्रयत्नों से दूर करना चाहिए।

"त्रिफला क्वाथ" या "न्यग्रोधादि क्वाथ" द्वारा जरायु की ग्रीवा और अभ्यान्तर भागों को धो डालने से इस प्रकार का क्षत या वेदना निवारित होता है।

निम्नलिखित द्रव्यों के अनुवासन या डूस लेने से जरायुग्रीवा का क्षत, वेदना और रक्तस्राव निवारित हो जाते हैं।

(क) बकुल और बबुल छालको सिझा (उबाल) कर उस जल के द्वारा।

(ख) त्रिफला, दारुहरिद्रा और हलदीको सिझाकर जलके द्वारा।

(ग) शोधित और भस्मीकृत तूतियामें त्रिफलाका जल घोलकर उसके साथ।

(घ) फिटकिरीके चूर्णको त्रिफलाके जलमे मिलाकर उसके द्वारा।

(ङ) आम, जामुन, बडफल, अश्वत्थ और कटहलकी छालको उबालकर उसके द्वारा।

(च) एव वायुकालमें "मध्यमनरायण तैल" से ग्रीवामुखका प्रलेपन करना चाहिए।

निम्नलिखित औषधियोंके सेवनसे साधारण जरायु का रोग कैन्सरमें परिणित नहीं हो सकता है।

प्रातः —प्रवालभस्म, मधु, दूध और चीनीके साथ।

दोनों वक्त भोजनके बादः—अशोकारिष्ट या पत्रांगासव या लक्षणारिष्ट शीतल जलके साथ। तीसरे पहरमें:—फलकल्याण घृत, गुनगुने दूधके साथ।

संध्या समय :—रत्नप्रभा, घी और मधु के साथ।

सब समय जिससे रोगिणीकी दस्त, पेशाब साफ रहे एवं अग्निमान्द्य न हो, इस पर ध्यान रखना होगा। ऐसा होनेपर जरायु कैन्सर होनेकी सम्भावना नहीं रहती।

इति :—स्त्रीजनेन्द्रिय की कैन्सर चिकित्सा समाप्त।

पुरुष जनेन्द्रियका कैन्सर

पुरुष जनेन्द्रियका कैन्सर अत्यन्त भयानक व मर्मान्तिक होता है, किन्तु सुखकी बात यह है कि स्त्रीजनेन्द्रियके कैन्सरकी तरह पुरुषजनेन्द्रिय के कैन्सरकी सख्या अधिक नहीं है। विगत २५ वर्षोंसे मानव शरीरके विभिन्न अंग प्रत्यगोंमें उत्पन्न नाना प्रकारके कैन्सरका पूर्वरूप, रूप, उपशय और सम्प्राप्ति विषयोंको आलोचना करनेके बाद निम्नलिखित पुरुष जननेन्द्रिय कैन्सरके कारण ज्ञात हुए हैं।

१. जन्मावधि फाइमोसिस रोग। इसकी चिकित्सा न कराकर रोग सहित विवाह करना और अतिशय सभोग करनेके कारण लिंगमणिका

चमड़ा फटकर जो घाव होता है, वह घाव ही बादमें कैन्सरमें परिवर्त्तित हो जाता है।

२. छोटी उम्रमें सिफलिस या गर्मी रोगसे उत्पीड़ित होकर अच्छी तरह इलाज न करवाकर साधारण इलाजसे सामयिक आरोग्य प्राप्त करने के बाद बीच बीचमें उस रोगके बीजाणुजनित घावोंकी उत्पत्ति।

३. दीर्घकालतक लिगमणिमें Hard Chancre या Soft Chancre रोगों का होना और उनकी सुचिकित्सा न कराना।

४. बहुत समय तक अयोनि या पशुयोनिमें मैथुन।

५ इन्द्रियजनित सुखके प्रलोभनमें नानाप्रकार उत्कट द्रव्योंसे तैयार लिंगलेप या मालिशका व्यवहार।

६. गर्भनिरोधके लिये नाना प्रकारके अस्वाभाविक मैथुन करना। बहुतोंकी धारणा है कि सिफिलिस अथवा गनोरिया रोगोंसे पीड़ित व्यक्तियों के लिगमें भविष्यमें कैन्सर होता है। किन्तु ऐसी बात नहीं है। बिना सिफिलिस या गनोरियाके हुए, बिलकुल शुद्ध और दोषरहित रक्तयुक्त, किसी भी तरहके मूत्र रोग हुए बिना, अच्छी पाचन शक्तिवाले एव अतिशय स्वास्थ्यसम्पन्न व्यक्तियोंको ४० से ५० वर्षकी अवस्थाके बीच दुजय पुरुष जननेन्द्रियके कैन्सर रोगसे आक्रान्त होते देखा गया है। इन व्यक्तियों से मैं पहले ही से परिचित था। उनकी व्यक्तिगत सभी बातोंसे मैं परिचित था। वे प्रत्येक ही धर्म कर्ममें रत रहनेवाले थे और प्रत्येकको ४-५ करके सन्तान थी। एव प्रत्येक ही दैनिक जीवन में सयमशील थे।

आयुर्वेदके अनुसार व्याधि दो प्रकार की होती हैं, दोषज एव कर्मज। वायु, पित्त एव कफकी विकृति जनित जो व्याधियां उत्पन्न होती हैं उन्हे

दोषज एवं पूर्वजन्मकृत दोषोंके फलस्वरूप जो व्याधि उत्पन्न हो उसे कर्मज कहते हैं। इस जन्म अथवा पूर्वजन्मकी उत्कट दुष्कृतियोंके फलस्वरूप मनुष्य उत्कट कर्मज व्याधिमें आक्रान्त होते हैं। उपरोक्त मेरे पूर्व परिचित लोगोंके लिंगकैंन्सरको मैं पूर्व जन्ममें किये गये अत्यन्त खराब काम का फल मानता हूं इसलिये आयुर्वेदीय चिकित्साके साथ साथ 'कर्मक्षय' (पूर्वजन्ममें किये हुए कुकर्मका प्रायश्चित) के लिये वेदवर्णित प्रक्रियाओंका अनुसरण करनेका आदेश भी मैंने उन्हे दिया था। ये व्यक्ति रेडियम व डीप-एक्सरे चिकित्साओंके बाद मेरे पास आये थे।

पुरुष जननेन्द्रियके कैन्सरकी प्रथम अवस्था :—

(१) पुरुष जननेन्द्रियके कैन्सरके प्रारम्भमें हम देखते हैं कि लिंगमणिके किसी एक भागमें एक छोटी सी फुन्सी या घाव होता है। साधारणतः पहले इस पर ध्यान नहीं दिया जाता। क्रमशः यह फुन्सी बढ़कर फूलगोभीका आकार धारण कर लेती है। शुरूमें इस फुन्सीमें किसी तरह का दर्द नहीं होता किन्तु इसके बढनेके साथ साथ दर्द होने लगता है एव दिन प्रतिदिन कष्ट बढता जाता है।

(२) कभी कभी लिंगमणिके किसी भागमें फेनकी तरह सफेद फुंसी या घावोंकी उत्पत्ति होती है। क्रमशः यह घाव बढने लगता है और धीरे धीरे अन्त.प्रविष्ट हो जाता है एव इस घावको जरा भी दबा देनेसे खून बहने लगता है।

द्वितीय अवस्था .—इस अवस्थामें फूलगोभीकी तरहसे बढकर घाव इस तरहका हो जाता है कि लिंगमणिके चमड़ेको खोला या बन्द नहीं किया जा सकता। क्रमशः इस घावया फोड़ेका क्षय होने लगता है और

इसके साथ साथ लिंगमणि विगलित होने लगती है और इसके सड़ने (गलने) के साथ साथ रक्तस्राव होने लगता है। अन्तमें लिंगमणि का क्षय होते होते लिंग कटे हुए जिमिकांदेकी तरह दिखाई देने लगता है। इस तरह एक वर्षसे दो वर्षके भीतर सम्पूर्ण लिंगका क्षय हो जाता है।

लिंगक्षयके समय उपसर्ग :—(१) रक्तस्राव (२) जरा से स्पर्शसे ही रक्तस्राव (३) फोड़े या घावका सड़ना (गलना) (४) घाव पर सफेद पपडी जमना (५) निश्चित समयमें यंत्रणा (६) क्रमशः कष्टभोग अधिक समय तक होना एव अधिक कष्ट होना ।

तृतीय अवस्था :—इस अवस्थामें रोगीको साधारणतः यक्ष्मा रोगी की तरह नियमित रूपसे ज्वर होने लगता है। क्रमशः रोगी क्षीण और दुर्बल होता जाता है (Cachexia)। इस अवस्थाकी विशेष पहचान यह है कि इस समय रोगीका सम्पूर्ण लिंग नष्ट हो जाता है। पेशाब निकलनेके लिये केवल अत्यल्प मार्ग खुला रहता है। क्रमसे रोगीकी चलने फिरनेकी शक्ति जाती रहती है।

चतुर्थावस्था :—सम्पूर्णरूपसे लिंग नष्ट हो जानेपर भी रोगी ज्यादा तर जीवित रहते हैं। इस दशामें रोगीके अण्डकोषमें घाव हो जाता है और क्रमशः बढ़कर नीचे पेटके मांसपेशीको भी घेर लेता है। क्रमशः बस्ति (मूत्राशय) के दोनों पार्श्व आक्रान्त हो जाते हैं। इस अवस्थामें रोगीको पेशाब करते समय अत्यन्त यन्त्रणा होती है। नीचे पेटकी मांस-पेशी नष्ट हो जानेके बाद जीवित रोगी भी मृतक जैसा जीवन बिताता है। घाव होनेके बाद दुर्गन्धका होना स्वाभाविक है एव घाव सड़ने पर नीचे पेटके अन्दरकी सारी क्रियाएँ जीवित अवस्थामें दीख पड़ती हैं।

इस तरह धीरे धीरे रोगी असह्य यन्त्रणा भोग करता हुआ संज्ञाहीन हो जाता है।

चिकित्सा —रोग प्रारम्भ होनेके साथ ही यदि अच्छी चिकित्सा की जाय तो पुरुष जननेन्द्रिय कैन्सर आरोग्य हो जाता है।

त्रिफलादि कषाय या हरीतक्यादि कषाय द्वारा प्रतिदिन दो तीन बार घावके स्थानको अच्छी तरह धोकर "वृहत् व्रणराक्षस तैल" लगाना चाहिये।

खानेके लिये सवेरे "माणिक्यरस" या "रसमाणिक्य", दोनों समय खानेके बाद 'सारिवाद्यासव" या "खदिरारिष्ट" और तीसरे पहर "पचतिक्तघृत गुग्गुल" और रातमें "महाभल्लातक" सेवनीय हैं।

रोगके-आरम्भमें रोग निर्णीत हो जानेके बाद उक्त प्रकारकी चिकित्सा से रोग आरोग्य हो जाता है। और यह भी देखा गया है कि बहुतसे रोगी इसी चिकित्सासे पुनर्जीवन वापस पाये हैं।

रोगकी वृद्धि होनेकी अवस्थामें अथवा क्रमश: लिंगका घाव बढ़ने पर :-

(१) सवेरे :—भावप्रकाशोक्त "खदिरादि महाव्रणारिवटिका" अनन्तमूल और तोपचीनीके कढ़ेके साथ सेवनीय।

(२) १० बजे :—"गलत कुष्ठारिरस"—घी और मधुके साथ।

(३) दोनों समय खानेके बाद—"खदिरारिष्ट"—शीतल जलके साथ।

(४) तीसरे पहरमें :—"महातिक्तघृत" गुनगुने दूधके साथ।

(५) सन्ध्या समय :—"उदयभास्कर रस"—अदरकके रस और

मधुके साथ सेव्य और लगानेके लिए "मधुघृत" या 'तान्त्रिक घृत" या "मूलताद्य घृत" व्यवहारके अनुकूल है।

रोगीके दोनों ओरकी ग्रन्थि बढ जाने पर "कंचनार गुग्गुल" या "बृहत् योगराज गुग्गुल" या "कैशोर गुग्गुल" थोड़े गर्म दूधके साथ सेवनीय है।

घाव शीघ्रतासे बढ़नेपर और रक्तस्राव होने पर :—

(१) "रस तालक"—रक्तचन्दन और मौल्ठीके क्वाथके साथ।

(२) पारद और गन्धकसे प्रस्तुत "ताम्र भस्म"—घी और मधु या अदरक रस और मधु सह सेव्य है एव लगानेके लिये "बृहत् मरिचादितैल" या "सोमराजी तैल" या "गुडूच्यादि तैल" या "महारुद्र गुडूच्यादि तैल" व्यवहार्य है। इससे भी घाव न सूखने पर "कृष्णसर्पतैल" से अवश्य लाभ होगा। रोगकी प्रथम अवस्थामें "महातालेश्वर रस" या "महातालकेश्वर रस" या "तालकेश्वररस" या "हरिताल भस्म" इनमे किसी एक में मधु या घी मिलाकर प्रातः व्यवहार करनेके बाद "महामंजिष्ठादि पाचन" व्यवहार्य है। और लगाने के लिये "कुष्ठराक्षसतैल" या "महासिन्दूराद्य तैल" प्रयोज्य है। शामको खानेके लिये "महाखदिराद्यघृत" लाभप्रद है।

पथ्यः—प्रचुर मात्रामें दूध, घी, अन्न व्यंजनादि, मिष्टान्न एवं पका और खूब मीठा फल। अण्डा, मांस, मछली आदि परहेज हैं।

पुरुष जननेन्द्रिय कैन्सरकी शस्त्र चिकित्साः—

लिंगके अग्र भागमें कैन्सर हो गया है ऐसा जान लेनेपर उसी समय आक्रान्त भागको काटकर निकाल देना ही सर्वश्रेष्ठ चिकित्सा माना गया है। इस तरह शस्त्रप्रयोग करके बहुतसे रोगीको प्राथमिक अवस्थामे

आसानीसे स्वस्थ होते देखा गया है किन्तु रोगके मेलिगनेन्ट होनेपर शस्त्रोपचारसे कोई विशेष सुविधा नहीं होती।

रेडियम या डीप-एक्सरेका प्रयोगः-

ग्रन्थिके चारों तरफसे फूल जानेपर और अन्यान्य अंग आक्रान्त होनेपर रेडियम या डीप-एक्सरेके प्रयोग द्वारा ग्रन्थिका फूलन घटाकर आयुर्वेदिक चिकित्सा करना उचित है। रेडियम या डीप-एक्सरे द्वारा पुरुष जननेन्द्रियका कैन्सर आराम होते हमने नहीं देखा है।

इति—पुरुष जननेन्द्रिय की कैन्सर चिकित्सा समाप्त

अण्डकोषका कैन्सर

अधिकांशतः अर्बुदके रूपमें अन्डकोषका कैन्सर दीख पडता है। अण्डकोषके किसी एक भागमें घावकी उत्पत्ति होती है और क्रमशः घाव बढता हुआ समस्त अण्डकोषको कडा कर देती है। किसी किसी क्षेत्रमें अर्बुदके बदलेमें अन्तःप्रविष्ट घावकी उत्पत्ति होती है और अण्डकोष सुखकर अन्दर घुस जाती है। कभी कभी पहले से ही फूलगोभीके आकारकी तरह घाव उत्पन्न होता है और दाना दाना सा सारे अण्डकोषमें फैल जाता है। बादमें यह क्रमशः बढती जाती है और तब अण्डकोषमें तीव्र यन्त्रणा होने लगती है। यह बहुत दिनों तक धीरे धीरे बढता ही रहता है।

चिकित्सा :—अति प्रथम अवस्थामें रोग निर्णीत होने पर शस्त्र-प्रयोग ही श्रेष्ठ चिकित्सा है और तब देहशुद्धि करके आयुर्वेद मतसे चिकित्सा करनी चाहिये जिससे उक्त रोग शरीरके दूसरे भागोंमें फैल न सके।

अर्बुद प्रधान अण्डकोपके कैन्सरमे अण्डकोप कडा हो जाने पर डीप-एक्सरेका प्रयोग करना चाहिए एव उसके बाद रोगी पर शोधनि एवं सशमणि औषध प्रयोगकरके आयुर्वेदिक चिकित्सा करनी चाहिए।

अन्तःप्रविष्ट अण्डकोपके कैन्सरमें "पचामृत पर्पटी' प्रयोग कर हम लोग अतिशय सफलता प्राप्त किये हैं। गत महायुद्धके पूर्व बर्माके एक मन्त्रीको इस प्रकार अण्डकोषके कैन्सरमे पर्पटी चिकित्सा द्वारा अच्छाकर हमने आशातीत सफलता प्राप्त किया है।

इति—अण्डकोषकी कैन्सर चिकित्सा समाप्त।

षोड़ष अध्याय

गुह्य प्रदेशका कैन्सर (Rectum Cancer)

"प्रज्ञापराधाद्ध्यहितानर्थान् पञ्च निषेवते।
सन्धारयति वेगांश्च सेवते साहसानि च॥
तदात्वसुखसंज्ञेषु भावेष्वज्ञोऽनुरज्यते।
रज्यते न तु विज्ञाता विज्ञाने ह्यमलीकृते॥"

इति चरके सूत्रस्थाने।

गुह्यप्रदेशका कैन्सर बड़ा हो भयावह और दीर्घकालीन यन्त्रणादायक होता है। लेकिन खुशीकी बात है कि यह चलनशील नहीं होता है। बहुत कम ही लोगोंको यह रोग होता है। पुरुषोंकी अपेक्षा औरतोंको यह विशेष करके होता है। अनेक तरहसे यह रोग पैदा होता है। अधिकांश क्षेत्रोंमे वृहदन्त्रके शेष भागमें ही इसकी उत्पत्ति होती है।

जो बहुत दिनों तक अजीर्ण रोगसे भोगते हैं और जो मलमूत्रका

वेग धारण करते हैं या जिनके खाद्यद्रव्य अनेक देर बाद हजम होता है, पेटमें वायु होता है, दस्त साफ नहीं होता है, खाया हुआ भोजन ठीक तरहसे परिपाक न होकर अन्नरस सम्पूर्णरूपसे रक्तमें परिणत होनेके बदले आम (आंव) में परिणत होता है एव इस प्रकार क्रमशः आम जमा होता जाता है और इसके कारण कई बार दस्त होता है, पाखानेमें बहुत देर तक बैठना पडता है एव जोर देकर दस्त करना पडता है, दिनमें ५-६ मरतबे पाखाना जाना पडता है, फिर भी दस्त साफ नहीं होता है, गुह्यद्वारमें क्टक्ट् करके दर्द होता है, सब समय ही दस्त करनेकी इच्छा रहती है और दस्त करनेपर भी शान्ति नहीं मिलती है, उन्हे ही घोर गुह्यप्रदेश का कैन्सर घेर लेता है।

गुह्यप्रदेशके कॅन्सरकी प्रथमावस्था :—इस रोगकी प्रथमावस्थामें वृहदन्त्रके शेष भागसे आरम्भ कर मलद्वार तक के भीतरी मास का पर्दा मोटा होता जाता है। इसी तरह क्रमशः मांस बढते जानेके कारण मलद्वारका मुंह एकदम बन्द हो जाता है। यह एक प्रकारका गुह्यनाली का कैन्सर है।

दूसरे प्रकार का भी गुह्यनाली का कैन्सर होता है जिसमें वृहदन्त्रके आखिरी भागमें एक अर्बुदकी उत्पत्ति होती है और वही अर्बुद क्रमशः बढ-कर शेपमें गुह्यनालीके भीतरी भागको पूर्णरूपमें घेर लेता है।

और एक प्रकारके गुह्य प्रदेशका कॅन्सर होता है, जिसमें अर्बुद न होकर वृहदन्त्रके शेष भागसे आरम्भ कर समस्त गुह्यनाली मे फूलगोभीकी तरह दाना-दाना मांसाङ्कुर उत्पन्न होता है एव यही मांसाङ्कुर गुह्यनाली के मुंह तक घेर लेता है। एवं क्रमशः दोनों नितम्ब प्रदेश (चूतड) में भी यह फैल जाता है।

मध्यावस्था:—उपरोक्त तीनों प्रकारके गुह्य कैन्सरकी प्रथमावस्थामें ही चिकित्सा नहीं होनेपर धीरे धीरे बढ़ने लगता है एवं रोगीको दस्त करते समय तकलीफ, पेट फूल जाना, पेटमें वायु होना, पेट फांफना एवं पेटमें भारीपन महसूस होना, गुह्यद्वार में किटीकिटी जैसा हमेशा दर्द रहना, बडी मुश्किलसे थोडा थोड़ा पैखाना होना और उसके साथ रक्त पीव मिला हुआ रहना इत्यादि उपव्याधियां होती हैं। इसके बाद आसपासके दूसरे भागोंमें फैल जाता है।

तृतीय अवस्था:—इस अवस्थामें गुह्यनालीका मुंह नष्ट होना आरम्भ होती है और उसके साथ चूतड भी क्षय होने लगता है। टट्टीके समय असह्य पीडा होती है। क्रमशः समस्त गुह्य मुख नष्ट हो जाता है, घावमें मुर्देकी तरह कीड़ा पड़ जाता है और अत्यन्त दुर्गन्ध निकलने लगता है। इस समय रोगी के बस्ती, कोहनी इत्यादि अन्यान्य अग भो इससे आक्रान्त हो जाते हैं। इस तरह क्रमसे रोगीका पखाना-पेशाव एकदम बन्द हो जाते हैं और अन्त में दस्त-पेशाब बन्द हो जानेके कारण असह्य यंत्रणा भोग करते करते रोगी मृत्युकी गोदमें सो जाता है।

गुह्य कैन्सरकी चिकित्सा:—प्रारम्भ में इस रोगके पकड़े जानेपर शस्त्रोपचार ही इसका सर्वश्रेष्ठ इलाज है। शस्त्रोपचार द्वारा कैन्सरके कोषोंको सम्पूर्णरूपसे नष्ट कर दे सकनेसे फिर इस रोगका आक्रमण रोगीपर नहीं हो सकता। वृद्धि प्राप्त होनेपर भी शस्त्र चिकित्साका आश्रय लेनेसे रोगी कुछ समय के लिये रोगकी पीड़ासे मुक्त हो सकता है। जब मलद्वार बन्द होकर दस्त नहीं कर सकता है, तब Colostomy छोड़कर और कोई उपाय नहीं रहता। Colostomy करनेका अर्थ—बृहदन्त्रके

मुख काटकर बाहर कर देना और उसके साथ एक कटोरी रख देना ताकि रोगीको टट्टी हो सके—एव बादमें अन्दरके अंशका मुह सिलाई कर देना चाहिये। Colostomy कर देने पर रोगी कुछ दिनोंके लिये शान्ति पाता है। रोगके आरम्भमें शस्त्रोपचार न कर, दस्त-पेशाब बन्द हो जानेके बाद Colstomy करने पर भी रोगी कुछ दिनके लिये आराम पा सकता है लेकिन कुछ दिनके भीतर ही वह मृत्युग्रसित हो जाता है। रोगके आरम्भमें डिप-एक्सरे या रेडियमका प्रयोग करनेपर भी रोग अच्छा हो जाता है। डिप एक्सरे या रेडियम प्रयोगके साथ साथ आयुर्वेदीय चिकित्सा करनेपर यह रोग अधिकांश क्षेत्रमें आरोग्य हो जाता है। इस रोगके आरम्भमें डिप-एक्सरे और रेडियम प्रयोगके साथ साथ आयुर्वेदीय चिकित्सा करके हमने अनेक गुह्यके कैन्सर रोग आरोग्य किये हैं।

गुह्य प्रदेशके कैन्सरकी आयुर्वेदीय चिकित्सा

शस्त्रचिकित्सा या डिप-एक्सरे या रेडियम चिकित्साके बाद अथवा किसी प्रकारकी चिकित्सा होनेके आगे अर्थात् रोगकी शुरुआतमें पर्पटी सेवनके नियमानुसार "रसपर्पटी', "स्वर्णपर्पटी", "विजयपर्पटी", आदि में से कोई भी एक सेवन करनेपर इस रोगसे ८० प्रतिशत आरोग्य हो सकते हैं।

अर्बुद प्रधान और मासवृद्धिजनित कैन्सरमें "ताम्र पर्पटी", घाव प्रधान कैन्सरमे "रस पर्पटी", क्षय प्रधान कैन्सरमें "स्वर्ण पर्पटी' एवं फुलगोभीके आकारकी तरह अर्बुद प्रधान कैन्सरमें "विजय पर्पटी" विशेप कार्यकारी होते हैं।

मलद्वारकी जलनको दूर करनेके लिये ताम्रभस्म सेवन और गुरुच एवं मलैठी के कढे द्वारा अथवा शक्कर मिला हुआ बकरीकी दूधसे गुह्यद्वारको धोना चाहिये।

विभिन्न सहायक औषधि जैसे,—महाभल्लातक या अमृतभल्लातक—शक्कर और दूधके साथ; बृहत् योगराज गुग्गुल—गरम दूधके साथ. एव पंचतिक्तघृत गुग्गुल, महातालेश्वर रस, तालकेश्वर रस, मानिक्य रस इत्यादि उपयुक्त अनुपानके साथ सेव्य।

लगानेके लिये :—बृहत् काशीसाद्य तैल, बृहत् व्रणराक्षस तैल, बृहत्-गुडूच्यादि तैल और महाराजप्रसारिणी तैल लाभदायक हैं।

घाव धोनेके लिये:—पथ्यादि कषाय और हरीतक्यादि कषाय।

पथ्यापथ्य:—घी, दूध, शक्कर, मधु और ताजे, सुमिष्ट, पके हुए फल।

इति:—गुह्यकी कैन्सर चिकित्सा समाप्त।

सप्तदश अध्याय

जानुसन्धिका कैन्सर या सारकोमा (Sarcoma)

"संचयञ्च प्रकोपञ्च प्रसरं स्थानसंश्रयम्।
व्यक्ति भेदञ्च यो वेत्ति दोषाणांस भवेद्भिषक्॥
सञ्चयेऽपहृता दोषा लभन्ते नोत्तरा गतीः।
ते तूत्तरासु गतिषु भवन्ति बलवत्तराः॥
सर्वैर्भावैस्त्रिभिर्वापि द्वाभ्यामेकेन वा पुनः।
संसर्गे कुपितः क्रुद्धं दोषं दोषोऽनुधावति॥
संसर्गे यो गरीयान् स्यादुपक्रम्यः स वै भवेत्।
शेषदोषाविरोधेन सन्निपाते तथैव च॥"

इति सुश्रुते सूत्रस्थाने

बहुत दिनोंसे अनेक प्रकारके कैन्सर रोगियोंकी चिकित्सा करके मेरी यह धारणा हुई है कि अपक्वरसजनित सचित आमरससे दुर्ज्जय अर्बुद और सब प्रकारके वृद्धिरोग होते हैं। सारकोमा कैन्सर रोगका केवल एक दूसरा रूप है। यह मानव शरीरके विभिन्न सन्धिस्थलोंको आश्रय करके होता है। जानुसद्धि, ऊरुसंद्धि, नितम्बसंद्धि आदि विभिन्न सन्धियोंसे सारकोमा जातीय कैन्सरकी उत्पत्ति होती है। दीर्घकाल तक अजीर्ण और आमवात रोग भोगनेके कारण शरीरमें आमरस इकट्ठा होता है। यह आमरस परिपाक प्राप्त होकर शरीरके बाहर न निकलने पर शरीरके किसी भी सद्धिको आश्रय करके मांसवृद्धि उत्पन्न कर देता है। समय बीतनेपर यही बढ़ा हुआ मांस त्रिदोषयुक्त होकर कठिन सारकोमा या कैन्सर रोगको उत्पत्ति करता है। अजीर्ण और आमवातग्रस्त रोगीका यह आमरस जितने दिन तक मल, मूत्र, कफ आदि के साथ शरीरके बाहर निकलता रहता है, उतने दिन तक इस रोगकी उत्पत्ति नहीं होती है। आमरस शरीरके भीतर आवद्ध होने से ही इस रोगकी उत्पत्ति होती है। आमरसके अपाक और अनिवृत्ति के कारण किसी देहसंद्धिमें आमरसके स्थानसंश्रयजनित तन्तु लसिका सयुक्त मांसपिन्डकी अभिवृद्धि को सारकोमा कहते हैं। सारकोमा पूरा मांसार्बुद नहीं है। कारण सारकोमामें जो वृद्धि उत्पन्न होता है, वह शरीरके विभिन्न अग-प्रत्यंगसे रस रक्तादि आहरण करके स्वीय अग पुष्ट करता रहता है और यही अग पुष्टि बादमें भयावह हो जाती है।

जानुसंद्धिमें जो कैन्सर या सारकोमा उत्पन्न होता है वह आयुर्वेदके वातव्याधिके अन्तर्गत कथित "शिवामूण्ड वातव्याधि" के सदृश वृद्धिविशेष

होता है। यह व्याधि जानुसंद्धि से उत्पन्न होकर समस्त जंघेपर आक्रमण कर नितम्ब प्रदेश तक प्रसारित हो जाता है। जंघा फूलकर केले वृक्षके डठलकी तरह हो जाता है। एवं सारा शरीर क्षीण से क्षीणतर होता जाता है। इसमें पहले यन्त्रणा नहीं होती। किन्तु कुछ दिन बीतनेपर यंत्रणा आरम्भ होती है और नोना फल की तरह सिन्दूर जैसा लाल चिकनाहट आ जाती है। देखनेसे यह प्रतीत होता है कि यह जल्दी ही पक जायगा, किन्तु सहजमें किसी प्रकार भी नहीं पकता है। बहुत दिन बाद यह पकता है। भूलचिकित्सावशतः इसके पकानेके लिये दवाई का प्रयोग करनेपर ऊपरका चमड़ा फटकर पिचकारीके समान रक्त निकलता है। बहुत दिन बीतनेपर ऐसे कैन्सरके कोप पचना शुरू होते हैं। तब घावसे बहुत दुर्गन्ध आने लगती है और सड़ा हुआ मांस कटकटकर गिरने लगता है। इस समय ध्यान न देनेसे घावमें मुरेंके समान कीड़ा उत्पन्न होता है। इस घावकी वजहसे रोगीको यक्ष्मा रोगीकी तरह प्रतिदिन तीसरे पहर ज्वर होना आरम्भ होता है एवं समस्त शरीर क्षीण हो जाता है। लेकिन घाववाली जगह क्रमशः बढ़ने लगती है। फुसफुस् की यक्ष्मामें जिस तरह रोग फुसफुसको नष्ट कर देनेके बाद रोगीके पेटको आक्रमण करनेसे उसको आवयुक्त पतला दस्त होने लगता है, उसी प्रकार सारकोमाकी भी अन्तिम अवस्थामें रोगीको अविराम ज्वर होनेके बाद अत्यधिक पतला दस्त होता है। रोगी कम भोजन करता है लेकिन पैखाना अधिक होता है। इस प्रकार कुछ दिन पतला दस्त होते होते क्रमशः कमजोर होकर रोगी मृत्युमुखमें गिर जाता है।

सारकोमाके स्वरूप की आलोचना :—मानव शरीरके विभिन्न

सद्धि और प्रत्यंगमें उत्पन्न सब प्रकारके सारकोमा एक तरहके नहीं होते हैं। किसी किसी क्षेत्रमें माँसवृद्धि होती है और किसी किसी स्थलमें संद्धि प्रदेशमें मांसवृद्धि न होकर अस्थिवृद्धि होती है। अस्थिवृद्धि होते समय रक्त और मांस संचय कम होते हैं। इस अस्थिवृद्धिको देखकर बहुत लोग इसे अस्थि यक्ष्मा समझकर उसी की चिकित्सा करते हैं। किन्तु इस प्रकार की चिकित्सासे जब आरोग्य न होकर उत्तरोत्तर रोग बढता ही रहता है तब इस बढतीको देखकर चिकित्सक सारकोमा होनेकी धारणा करनेमें समर्थ हो सकते हैं एव उसको चिकित्सा करने लगते हैं। किन्तु तब तक अधिक विलम्ब हो जाता है और इस बीचमें रोग अच्छी तरह अपना जड जया लेता है। उस समय चिकित्सा करके कोई फल नहीं होता है।

सन्धिस्थलको छोडकर यकृत, प्लीहा, मस्तिष्क आदि मर्मस्थलोंमें भी सारकोमा रोगकी उत्पत्ति होती है। सन्धिज सारकोमा से ये और भी अधिक भयंकर होती हैं।

चिकित्सा:—अति प्रारम्भसे रोग निर्णीत होनेपर शस्त्रोपचार ही श्रेष्ठ चिकित्सा है। शस्त्रोपचार न कर सकनेपर प्रथमावस्थामें डिप-एक्सरे और रेडियम भी दिया जा सकता है। किन्तु उसके बाद औषध प्रयोग द्वारा आभ्यन्तरिक चिकित्सा करना होगा, वरना इस रोगसे छुटकारा पाना असम्भव है। पहले अपक्व (कच्चा) संचित आवरसको पकाना होगा। इसके लिये:—

(१) भावप्रकाशोक्त "वातारि रस"—सोंठ और एरण्डमूलके क्वाथ के साथ।

(२) "योगराज गुग्गुल"—महारास्नादि क्वाथ के साथ। एवं (३) रसरत्न समुच्चयोक्त "सर्ववातारि"—दशमूल के कढेके साथ सेवनीय है।

कैन्सरके कोषसंघातकको अलग करनेके लिये—"महातालेश्वर रस" मध्यम मंजिष्ठादि क्वाथके साथ सेवनीय है।

रोगीके किडनी आक्रान्त होनेपर—"सारिवाद्यासव" और "वंगजतु" प्रयोग करना होगा।

वृहत् खदिरारिष्ट, पंचतिक्तघृत गुग्गुल और महाभल्लातक, इस रोगके लिये ये तीन रामबाण औषधि हैं।

वृहत् सैन्धवादि तैल और प्रसारिणी तैल के संयोग से "शंकरस्वेद" और "शाल्वनस्वेद" प्रयोग करना उचित है।

शरीर पुष्टि के लिये—चन्द्रोदयमकरध्वज, बसन्तकुसुमाकररस, सुवर्ण-समीरपन्नगरस, मल्लसिन्दूर, रसतालक, राजमृगांकरस, ये सब फायदेमन्द हैं।

ये सभी औषधियाँ आमरसका पाचक, मेद और कफ का निवारक, नष्ट कोषों का पुनः पूर्तिकारक और मांसवृद्धिनाशक होते हैं। इन तमाम औषधियों का यथासमय प्रयोग करने पर सैकड़ेमें पचास सारकोमा के रोगीको आरोग्यलाभ अवश्यसम्भावी है।

इति—जानुसंद्धिकी कैन्सर चिकित्सा समाप्त।

पदांगुली का कैन्सर

हम पदांगुलीमें भी कैन्सर होते हुए देखे हैं। दो अंगुलियोंके बीचमें एव नाखून के ऊपरी चमड़े पर फूलगोभी की तरह दाना दाना अंकुर स्वरूप कैन्सर उत्पन्न होता है। इससे अल्प आघात से ही रक्तस्राव होता है। यह क्रमशः बढ़कर सारे अंगुली पर छा जाता है एवं उसके लिये समस्त पैर फूल जाता है। कुछ दिन बाद ये अर्बुद गलकर घावकी सृष्टि कर डालते हैं। यह घाव क्रमशः बढता रहता है एवं उससे बदबू आने लगती है।

चिकित्सा—पूर्ववर्णित हरीतक्यादि कषाय द्वारा घावको धोकर "व्रणराक्षस तैल" लगाना होगा। घाव में लगानेके लिये "महारुद्र गुडूच्यादि तैल" भी व्यवहार किया जा सकता है।

खानेके लिये पंचतिक्तघृतगुग्गुल, अमृतभल्लातक, हरितालभस्म, महाभल्लातक, मानिक्यरस, रसमानिक्य, आदित्यरस दिया जा सकता है। कृष्णरस और रसताल्लक प्रयोग करनेसे भी अच्छा फल मिलता है।

वे सब रोग जो कैन्सर न होने पर भी कैन्सरकी तरह जान पड़ते हैं।

(१) गण्डमाला, ग्रन्थि और अजीर्ण:—गण्डमाला कैन्सरकी प्रथम अवस्थामें उत्पन्न अर्बुद जैसा ही जान पडता है। वहुत दिनों तक इसीरूप में रहकर वहुत देरीसे पकता है और तब कहीं फटता है। इस प्रकार गण्डमालाका अर्बुद एक एक करके पकता है और फटता है। उस समय ये कैन्सरकी तरह प्रतीत होते हैं लेकिन वास्तव में ये कैन्सर नहीं हैं। वल्कि ये बाद में क्षयरोग में परिणत हो सकते हैं लेकिन कैन्सरमें नहीं।

ग्रन्थि और अजीर्ण की भी प्रकृति इसी तरह है। ये भी समयमें चिकित्सित न होनेपर यक्ष्मा रोगमें परिणत होते हैं लेकिन कैन्सरमें नहीं।

चर्म का कैन्सर

शरीरके किसी भी स्थानके चमड़ेको आश्रय वनाकर फूलगोभीके आकारकी तरह चर्मका कैन्सररोग उत्पन्न होता है। अनेक समय वकुल और वावुल वृक्षके छालकी तरह फटा-फटा एक प्रकारका चर्म घाव होते दीख पडता है। यह कैन्सर रोगकी तरह दिखलाई देता है पर यह केन्सर नहीं है। यह समयमें चिकित्सित न होनेपर कुछ दिनोंके बाद चर्मके यक्ष्मामें

परिणत हो जाता है। चर्मका कैन्सर साधारणतः मुंहमें, गालमें, आंख के चारों ओर हुआ करता है। रोडेन्ट अलसर, हजकिन्स डिज़िज, लिऊ-पारा, केलयेड प्रभृति रोग तालिका, कैन्सर रोगकी तरह दीख पड़ने पर भी वास्तवमें कैन्सर रोग नहीं हैं।

चिकित्सा :—पदांगुली की कैन्सरचिकित्साके अनुसार ही।

इति—चर्मके कैन्सरकी चिकित्सा समाप्त।

पाश्चात्य मतोंके अनुसार मानव शरीर के विभिन्न अंगों में उत्पन्न होनेवाले सब तरहके कैन्सरको एक ही तरहका कैन्सर बताया जाता है। किन्तु आयुर्वेदके मतानुसार ऐसी बात नहीं। आयुर्वेदके अनुसार मानव शरीरके विभिन्न अंग प्रत्यगोंके कैन्सरको विभिन्न नामोंसे पूकारा जाता है। यथा—गलेके कैन्सरको शतघ्नी, गिलायु, मांसतान प्रभृति विभिन्न नामों से अभिहित किया जाता है। स्कन्ध में उत्पन्न हुए कैन्सरको वल्मीक कहा जाता है। आयुर्वेद के मतसे कोई एक नाम कैन्सरका बतलानेके लये चिकित्सकगणको रक्तार्बुद बतलाना ज्यादा समीचीन होगा। क्योंकि कैन्सरके प्रत्येक क्षेत्रमें पहले अर्बुदकी उत्पत्ति होती है और यही अर्बुद शरीरके विभिन्न स्थानोंसे रक्त शोषणकर बढने लगता है एवं कुछ दिनके पश्चात् इसकी चिकित्सा मुश्किल हो जाती है। यह बात अवश्य है कि आयुर्वेद-शास्त्रमें सभी रोगोंका नाम निर्दिष्ट नहीं है, इसलिये सभी रोगोंका नाम हर समय न बतला सकनेपर चिकित्सकको लज्जित नहीं होना चाहिये। कारण चरकके मतानुसार वायु, पित्त, कफ इन तीनों दोषोंकी विकृति ही सब रोगों का कारण एवं सुश्रुत के मतानुसार वायु, पित्त और कफ इन त्रिदोषोंके साथ रक्तका दूषित हो जाना भी सब रोगोंका कारण बनती है।

"विकाराणामकुशलो न जिह्रीयात कदाचन।
नही सर्व्व विकाराणां नामतोऽस्ति ध्रुवास्थिति॥
नास्ति रोगा विना द्रौषैर्यस्मात्तस्माच्चिकित्सकः।
अनुत्तमपिदोषाणां लिङ्गैर्व्याधिमुपाचरेत्॥"

अर्थात् सब रोगोंके नामानुसार रोग निर्णय नहीं कर सकनेपर चिकित्सक लज्जित नहीं होंगे। क्योंकि सब रोगोंका कोई निश्चित नाम नहीं है। दोषके प्रकोपके बिना कोई रोग नहीं होता है। अतएव जिन सब रोगोंका कोई विशेष नाम निर्धारित नहीं हुआ है उनकी चिकित्सा वायु, पित्त, कफ इस त्रिदोषका लक्षण विशेषरूप से जानकर करेंगे।

आयुर्वेद रोग बीजाणुतत्त्व की अपेक्षा क्षेत्रतत्त्व पर अधिक विश्वास करता है। चेतनासंयुक्त पंचभूतात्मक जीवदेहमें दोष, धातु और मलकी विकृति होनेपर ही पीडा उत्पन्न होती है।

रोगोत्पत्तिके आरम्भमें दोषधातुमलके निराकरणके लिये दवाई, पथ्य और अपेक्षाकृत अच्छी आबहवावाले जगहमे वायु परिवर्तन आदि चिकित्सा के आगेके कर्म और पश्चात् कर्मोंको ठीक तरह नियमानुसार पालन करने पर रोग बढ़ने नहीं सकता है और क्रमशः ही आरोग्य हो जाता है।

"क्रमेणपाचित द्रोपाः क्रमेणोपचिता गुणाः।
अपुनर्भवमायान्ति अप्रकम्पा भवन्ति हि॥"

—चरक संहिता।

इति—केन्सर रोगकी चिकित्सा समाप्त।

एतद् धर्मफलं श्रीकृष्णाय अर्पणमस्तु।

ग्रन्थकार प्रणीत—"रस चिकित्सा"

इस पुस्तक में धारावाहिकरूप से प्रत्येक धातु, उपधातु, रस, उपरस, रत्न, उपरत्न, विष, उपविष आदि का शोधन, जारण, मारण, सत्त्वपातन, प्रत्येक क्षेत्र में आमयिक प्रयोग, रस रत्नादि धातुओं के मिलने का स्थान, शोधन, जारण, मारणादि के लिए यन्त्रादि का परिचय, रसशास्त्रीय स्वतन्त्र परिभाषा का परिचय, कूपीपक्व रस निर्माण विज्ञानादि का स्वतंत्र परिचय, मकरध्वज निर्माण में स्वर्णग्रासन का विशेष विवरण, पारद के अठारह संस्कार, पारद की बुभुक्षा सम्पादन, पारद के विभिन्न धातुभोजन, पारद की अनेक प्रकार की मूर्छा, धातुभस्मों की सहज प्रक्रिया, रसभस्म योग में धातु भस्म की सहज प्रक्रिया, पारद भस्म, हरिताल भस्म, अभ्र भस्म, बङ्ग भस्म, लोह भस्म और ताम्र भस्म निर्माण की अभिनव सहज-प्रणाली, लोह शास्त्र का विशेष विज्ञान, लोह निर्माण प्रणाली, विषतन्त्र की विशेष विज्ञान विधि, स्थावर जङ्गम विषादि का विशेष विज्ञान एव उनके आमयिक प्रयोग के मूल सूत्रों की यथायथ वर्णना आदि महत्त्वपूर्ण विषयों का विस्तृतभाव से वर्णन किया गया है। इस पुस्तक मे इनका जैसा सुललित वर्णन है वैसा किसी ग्रथ में नही है। इस पुस्तक में केवल रसौषधि द्वारा हेमाद्रि के पर्य्यानुसार और माधव द्वारा रोग त्रिनिश्चय वर्णित प्रत्येक रोग की दोषानुग चिकित्सा-विधि लिखित है। रसविद्या विषय में इस प्रकार का सर्वाङ्गसुन्दर और सुवृहत् पुस्तक हिन्दी भाषा में यह केवल एक ही है। "रसेन्द्रसार संग्रह" में संगृहीत औषध उत्तम हैं लेकिन इसकी जारण-मारण-सत्त्व पातनादि की प्रक्रियाएं हिन्दू रसायन शास्त्र के मूल तत्त्व को समझने के लिए पर्याप्त नहीं हैं। इसके अतिरिक्त इसमें रस परिभाषा भी नहीं है। किन्तु "रस चिकित्सा" में उक्त सब

विषएं एक साथ सन्निवेशित हुई हैं। यह हिन्दी और उड़िया भाषा में भी अनुवादित हुआ है। यह पुस्तक चिकित्सक तथा विद्यार्थी दोनों के लिए समान उपयोगी है। मूल्य १०) —'आयुर्वेद'

"राजयक्ष्मा चिकित्सा"

इस पुस्तक में मानव शरीर में उत्पन्न होने वाले ४२ प्रकार के यक्ष्मा रोगों का निदान, पूर्वरूप, रूप, उपशय, सम्प्राप्ति आदि विषय अति सहज और सरल भाषा में लिपिबद्ध हुआ है। प्रत्येक प्रकार के यक्ष्मारोग की चिकित्सा-विधि भी अति सहज सरल भाषा में लिखी गई है। यक्ष्मारोग का चरक वर्णित ग्यारह प्रकार के एवं सुश्रुत वर्णित सब प्रकार के उपसर्गों की पृथक पृथक चिकित्साविधि भी सुललित भाषामें वर्णित हुआ है। यक्ष्मारोग की उत्पत्ति विषयक सामाजिक, राष्ट्रीय, व्यक्तिगत और समष्टिगत सब कारणों का भी विस्तारपूर्वक आलोचना किया गया है। यक्ष्मारोग की बीजाणु के सम्बन्ध में प्राच्य और पाश्चात्य व्यक्तियों के मतवाद की भी समालोचना इसमें की गयी है। यक्ष्मा के विस्तार का कारण, यक्ष्मा निवारण का उपाय, यक्ष्मारोग का पुनराक्रमण और उसके प्रतिकार का उपाय, यक्ष्मारोग में पथ्यापथ्य और सुश्रुषा विधि आदि विषयों का इसमें समावेश किया गया हैं। यक्ष्मारोग में सेनाटोरियम चिकित्साविधि, स्वास्थ्यकर स्थानों में सेनाटोरियम समूह का विशद विवरण एवं पाश्चात्य चिकित्सा विधियों को बहुत ही स्पष्ट शैली में अभिव्यक्त किया गया है। इस पुस्तक से सर्वसाधारण भी लाभ उठा सकते हैं यह इसकी विशेष महत्ता है। यक्ष्मा चिकित्सक के कर्त्तव्याकर्त्तव्य निर्णय प्रसङ्ग में पाश्चात्य चिकित्सकगण की राय के सम्बन्ध में विस्तार से आलोचना की गई है।

मूल्य १०)